अबलाओं का इन्साफ़

सत्य घटनाओं के आधार पर लिखित

क्रान्तिकारी पुस्तक

लेखिका

श्रीमती स्फुरना देवी

प्रकाशक—

'चाँद' कार्यालय

इलाहाबाद

जुलाई, १९२७ ई०

पहिली बार] [मूल्य दो रुपया

प्रकाशक—

"चाँद" कार्यालय,

२८ एल्गिन रोड, इलाहाबाद



मुद्रक—

आर० सहगल,

फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज,

इलाहाबाद


उपहार

प्रस्तावना

—:o:—



च्च वर्ण के हिन्दू, ख़ासकर राजपूताने के ब्राह्मण एवं वैश्य-स्त्रियों के आपस के व्यवहारों के विषय में अपने अनुभव को प्रकाशित करने का बहुत समय से मेरा विचार था; क्योंकि मैं ने स्वयं अपने ऊपर बीती हुई बातों के अनुभव से तथा दूसरों पर बीती हुई बातें देख-सुन कर निश्चय किया है कि इस समाज के पुरुषों का व्यवहार स्त्रियों के साथ बहुत ही अनुचित और स्वार्थपूर्ण, अन्याय एवं अत्याचार से युक्त है, जो कि सदा और सर्वथा अनुपयुक्त है! यदि यह अत्याचार इसी तरह चलता रहा, तो इस समाज का बहुत शीघ्र अधःपतन ही नहीं; किन्तु सर्वनाश हो जायगा। अतएव इस विषय की चर्चा करना, मैं ने अपना मुख्य कर्त्तव्य समझा।

यद्यपि स्त्री-जाति की हीन दशा को दिखाने वाले बहुत से सामाजिक उपन्यास, निबन्ध, ट्रैक्ट, नाटक आदि कुछ काल से प्रकाशित हो रहे हैं, जिनसे समाज में कुछ जागृति होकर इस विषय पर लोगों का थोड़ा-बहुत ध्यान आकर्षित हुआ है; परन्तु ये उपन्यास आदि प्रायः पुरुषों के ही लिखे हुए होते हैं और उनको इस विषय का स्वयं किया हुआ अनुभव न होने के कारण वे परदे के भीतर का असली मार्मिक रहस्य कुछ भी प्रकाशित नहीं कर सकते; क्योंकि "जाके पैर न फटी बिवाई, सो क्या

जाने पीर पराई।' साथ ही यह भी स्वाभाविक बात है कि अपने दोष एवं त्रुटियाँ किसी को दीखती भी नहीं, और यदि दीखें भी तो उन्हें छिपाने की ही चेष्टा की जाती है। इसके अतिरिक्त लेखक अपनी पुस्तक की रोचकता के लिए शृङ्गार आदि रसों के वर्णन तथा भाषा की सुन्दरता आदि पर जितना ध्यान रखते हैं, उतना सामाजिक दुर्दशा के मर्म को अङ्कित करने पर नहीं रखते। किसी लेखक का उद्देश भाषा की उन्नति करने का होता है, तो किसी का ख्याति प्राप्त करने का और किसी का उद्देश अर्थ-लाभ तथा लोक-हित का होता है, तो किसी का समाज-सेवा का; परन्तु मेरा उद्देश केवल अपना अनुभव प्रकाशित कर, परदे की ओट में होने वाले घोर अत्याचारों पर कुछ रोशनी डालने के साथ ही साथ इस विषय पर अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार विचार प्रकट करने का था; परन्तु यह काम हो कैसे? मैं यद्यपि मुँह से तो सब बातें कह सकती हूँ; परन्तु उन्हें लेख-बद्ध कर, निबन्ध बनाने की मुझमें बिलकुल योग्यता नहीं; इससे मेरे मन के भाव इतने दिन मन में ही बने रहे; परन्तु जब से "चाँद" मासिक पत्र में अनेक स्त्रियों के लेखों में अपने ऊपर बीती हुई बातें में खुले तौर से प्रकाशित होने लगीं, तो उन्हें देख कर मेरे चित्त में फिर से उत्कण्ठा जाग्रत हो गई और साहस भी बढ़ गया। तब उद्योग करने पर एक सहृदय महाशय ने मेरे भाव लेख-बद्ध करने में सहायक होना स्वीकार किया। अस्तु, इस लेख द्वारा मुझे अपने अनुभव एवं विचार प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

पाठक महाशयो! यह कोई धर्म की गाथा नहीं है, न कोई अपने पूर्वजों का पवित्र इतिहास; न यह कोई मनोरञ्जक उपन्यास या नाटक है; और न यह शृङ्गार रस, नायिका भेद तथा उपमालङ्कार से परिपूर्ण कोई काव्य ही है; न यह कोई राजनैतिक पुस्तक है, न कोई वैज्ञानिक

निबन्ध; न इसमें भाषा की शुद्धता एवं सुन्दरता पर ही कोई ख्याल रक्खा गया है और न कोई कविता ही की गई है ; बल्कि यह है अत्याचार से आतुर अबलाओं की आत्म-कथा; और है उनकी करुणाभरी अपील ! अतः सम्भव है कि आपको रुचिकर न हो। परन्तु यदि आपके हृदय में इन्साफ़ का ज़रा भी असर है तथा सहृदयता का थोड़ा भी समावेश है—यदि करुणा से आपका हृदय कुछ कोमल हो सकता है और दया उसे द्रवीभूत कर सकती है, तो अपने मनुष्यत्व के नाते आप मेरे इस तुच्छ लेख को एक बार पढ़ने का कष्ट अवश्य करें। जब आप पशु-पक्षियों तक की करुणाभरी अपील सुन लेते हैं, तो मेरी इस अपील को सुनने के लिए विनयपूर्वक आपके मूल्यवान् समय एवं सहनशक्ति पर आक्रमण करना सम्भवतः अनुचित न होगा।

इन आत्म-कथाओं में जिन घटनाओं का वर्णन आया है, वे मिथ्या कल्पनाएँ नहीं हैं। इनमें वर्णित सब घटनाएँ यद्यपि उसी क्रम से नहीं घटी हैं, जैसा कि इसमें वर्णन है; परन्तु अनेक व्यक्तियों पर ये ही एवं इसी प्रकार की घटनाएँ रूपान्तर से सदा इस समाज में घटती रहती हैं। ये आत्म-कथाएँ अधिकतर अबलाओं की सच्ची जीवनियों के आधार पर लिखी गई हैं; परन्तु इस छोटे से लेख में अगणित व्यक्तियों पर होने वाली अनेक प्रकार की वारदातें अलग-अलग क्रमबद्धतया स्पष्टतया अङ्कित करना असम्भव है। यदि मेरा ही पूरा अनुभव लेख-बद्ध किया जाय, तो न मालूम वह कितनी जिल्दों में पूरा हो। इसलिए मैं ने थोड़े से नामों की कल्पना करके, उनके वर्णनों में अनेक अत्याचार-पीड़ित व्यक्तियों की आत्म-कथाओं का संक्षेप में समावेश करते हुए, समाज की दुर्दशा का दिग्दर्शन-मात्र करा दिया है। इस तरह की आत्म-कथाएँ सच्ची हों, तो भी

उनके सम्बन्ध के व्यक्तियों के सच्चे नाम लिखना अनेक कारणों से ठीक नहीं। अतः इस लेख में व्यक्तियों के नाम यद्यपि बदले गए हैं और कहीं-कहीं कल्पित भी किए गए हैं; परन्तु अत्याचार कल्पित नहीं है। उन वर्णनों का एक-एक अक्षर सत्य घटनाओं के आधार पर लिखा गया है; इनमें अत्युक्ति कहीं भी नहीं आने पाई। जब सच्ची आत्म-कथा लिखनी है, तो उसमें अत्युक्ति का लेश भी न होना चाहिए; इसी बात पर बहुत ही सावधानी रक्खी गई है। घटनाएँ प्रायः आम-तौर पर होने वाली ही लिखी गई हैं। ख़ास तौर पर होने वाली घटनाएँ, जो बहुत भयङ्कर होती हैं, छोड़ दी गई हैं; क्योंकि वे विरली ही हुआ करती हैं; और उनके लिखने से पाठकों को अत्युक्ति का भी सन्देह हो सकता है। इसमें धर्मराज की कचहरी में मुक़द्दमे का जो दृश्य दिखाया है, वह मेरी कल्पना है; परन्तु यदि जीवों के पाप-पुण्य का फ़ैसला करने वाला ईश्वर के घर का न्यायाधीश धर्मराज के होने की शास्त्रों की बात सत्य है, तो मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार, हमारे समाज के स्त्री-पुरुषों का इन्साफ़ धर्मराज के सामने इसी तरह का होना चाहिए। इसलिए मेरी यह कल्पना भी सत्य ही के विश्वास पर है। यथाशक्ति इसको अश्लीलता से बचाए रखने का भी पूरा प्रयत्न किया गया है; क्योंकि यह कोई शृङ्गार-रस का काव्य नहीं है, जिसमें अश्लील बातें आने की आवश्यकता हो। यह तो करुणा-कलाप है, जिसमें अश्लीलता का प्रसङ्ग ही क्या? करुणा के साथ इसमें प्रसङ्गवश बीभत्स-काण्ड का अनेक स्थानों पर ज़िक्र अवश्य करना पड़ा है, जिससे सम्भव है कि पाठकों को ग्लानि उत्पन्न होकर, इसके भावों में उन्हें दुःशीलता प्रतीत हो; परन्तु यदि इसमें दुःशीलता की कोई बात है, तो आप ही की करतूतों का फल है;

और इसके दिखाने का दुःसाहस (यदि आप इसे दुःसाहस समझें तो) भी मुझे आपही की करतूतों से पीड़ित होकर हुआ है ।

जिस समय इस समाज की स्त्री-जाति आपकी कृपा से घोर अन्धकार में पड़ी हुई अपने आपका और अपने स्वाभाविक अधिकारों का कुछ भी ज्ञान नहीं रखती थी, उस समय आपके अत्याचारों पर पूरी तरह से परदा पड़ा हुआ था, जिससे समाज को अकथनीय हानि पहुँची ; परन्तु अब वह समय नहीं रहा । पश्चिमीय लोगों के सहवास से स्त्रियों को भी आपने साक्षर बनाना शुरू कर दिया है, जिससे हम में से अनेकों को अपने आपे का तथा अपने अधिकारों एवं हानि-लाभ का ज्ञान होने लगा। तब आप लोगों के अप्रकट अत्याचार बढ़ते-बढ़ते असह्य होने लगे ; और पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इस विषय को कुछ-कुछ प्रकट करके उस पर प्रकाश डालने लगीं, और अपनी जाति के उद्धार के लिए छटपटाने लगीं । उनके इस प्रयत्न में कहीं से भी सहायता मिलने का ढङ्ग उन्हें नहीं दीखता थाः—

"सभी सहायक सबल के, कोऊ न निबल सहाय ।
पवन जगावत आगि को, दीपहिं देत बुझाय ॥"

के अनुसार हमारी मदद कौन करता ? हिन्दू-जाति में सबसे उच्च तथा सबको समान दृष्टि से देखने वाला संन्यास-आश्रम है, सो वह भी केवल अपने ही कल्याण-साधन के स्वार्थ में इतना लीन है कि उसकी तरफ़ से कोई सुखी हो या दुखी, समाज डूबे या तरे, कोई स्वतन्त्र हो या परतन्त्र, कोई न्यायी या हो अन्यायी—उनकी जाने बला ! गद्दी-नशीन महन्तों तथा धर्माचारियों को हमारी सहायता करने से अपने स्वार्थ में हानि होने का भय है; क्योंकि हमारी उन्नति होकर उद्धार हो जाने से जाल में फँसी हुई चिड़ियाँ सब निकल कर भाग सकती हैं । अतएव वे लोग हमारी सहायता के बदले,

उलटे हमारे विरुद्ध खड़े होकर और भी अधिक दुखाने को कमर कसे हुए हैं; और हममें अपने जन्म-सिद्ध एवं धर्म-सम्मत उचित अधिकारों को प्राप्त करने के भाव पैदा होने तक को घोर पाप बतलाते हैं। फिर उनकी चर्चा करने की तो कथा ही कैसी? लकीर के फ़क़ीर पण्डित और विद्वान् प्रचलित प्रथाओं को शास्त्र-सम्मत ठहराने के लिए प्रमाण ढूँढ़ निकालने ही में अपनी पण्डिताई की पराकाष्ठा समझते हैं। हमारे राजा-महाराजा ऐश-आराम करने; और अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को सुरक्षित रखने के प्रयत्न में इतने लीन हैं कि समाज की भलाई-बुराई की तरफ़ ध्यान देने की उन्हें फ़ुरसत ही नहीं। समाज के नेता भी अधिकतर हमारी दुर्दशा के लिए विचार करना यदि महा अनर्थ नहीं, तो अनावश्यक तो अवश्य ही समझते हैं; और यदि उनमें से कोई सज्जन इस विषय को मन में आवश्यक भी समझता हो, तो उसमें इतना आत्मबल नहीं कि बड़े-बड़े महन्तों, धर्माचार्यों एवं अन्य अज्ञ जन-समुदाय के विरुद्ध अपने मन के भाव बाहर निकाल सके। साधारण जन-समुदाय का यह हाल है कि जो व्यवस्थाएँ वे अपने सामने पूर्वकाल से प्रचलित देखते हैं, उन्हीं को ईश्वर की आज्ञा समझते हैं, और जिन व्यवहारों को वे अपने पिताओं के समय से करते आए हैं, उनमें उनका ऐसा व्यसन हो गया है कि उनमें ज़रा भी परिवर्तन करना सरासर अधर्म, अन्याय एवं दुखदायक समझते हैं। वे अन्ध-विश्वास में पड़े हुए उन धर्म के ठेकेदारों के पञ्जों में यहाँ तक जकड़े हुए हैं कि उनकी आज्ञा के बिना अपनी बुद्धि से अपनी भलाई-बुराई का विचार करने की भी योग्यता नहीं रखते। ऐसी स्थिति में हम लोगों को यदि कहीं से सहायता एवं सहानुभूति प्राप्त करने की आशा थी, तो केवल देशोद्धार के लिए उद्योग करने वाले राजनैतिक नेताओं से; क्योंकि जो

देश का उद्धार करने का प्रयत्न करें, वे हमारा भी उद्धार अवश्य करेंगे; यही हमारा विश्वास था; परन्तु हमारे दुर्भाग्य से भगवान् तिलक तो अपने "जन्मसिद्ध अधिकार" प्राप्त करने के कार्य में इतने व्यस्त रहे कि उनको "हमारे जन्मसिद्ध अधिकार" अपनी ही जाति के लोगों से दिलवाने की फ़ुरसत नहीं मिली। महात्मा गाँधी जी जो किसी काल में परमात्मा कृष्ण महाराज के अवतार समझे जाते थे (जिन कृष्ण भगवान् ने सोलह हज़ार स्त्रियों को, समाचार मिलते ही तुरन्त बन्दीगृह से छुड़ाया था) असहयोग को स्वीकार कर हमारे साथ सहयोग करना भी अनावश्यक समझ, हमसे उदासीन रहे। तब हमको पूज्य पं० मदनमोहन मालवीय जी की आशा रही; और जब मुसलमानों से हिन्दुओं के सताए जाने पर आपने हिन्दू-सङ्गठन करके अछूत-जातियों के उद्धार का बीड़ा उठाया, तब हमको भी विश्वास हो गया कि आफ़त आने पर हमारे सनातन-धर्मावलम्बी हिन्दू-नेताओं में कम से कम एक को तो अपना अत्याचार सूझने लगा, तभी तो अछूत-जातियों को गले लगाकर अपने अत्याचारों का प्रायश्चित्त करके समाज को मज़बूत बनाने की चेष्टा करते हैं। इस सङ्गठन में हमारा भी नम्बर शीघ्र आएगा; क्योंकि हम पर गुज़रने वाले अत्याचारों को मिटाए बिना सङ्गठन कभी दृढ़ नहीं हो सकता। आख़िर हम भी समाज का बायाँ अङ्ग हैं; और जब एक अङ्ग को लक़वा मार जाता है, तब उसको अच्छा किए बिना दूसरा अङ्ग कुछ भी करने योग्य नहीं रहता! परन्तु अत्यन्त दुख की बात है कि हमारा यह विश्वास केवल भ्रम निकला, और समाज का भला-चङ्गा दाहिना अङ्ग भी लक़वा वाले बाएँ अङ्ग के संसर्ग से इतना संज्ञा-हीन हो गया कि उसको इस बात का ज्ञान ही न रहा कि अपने दूसरे अङ्ग को तन्दुरुस्त किए

विना हम अकेले उस निकम्मे आधे अङ्ग का बोझ लादे हुए कुछ नहीं कर सकेंगे। समाज-सङ्गठन के लिए हिन्दू-महासभा सङ्गठित हुई; परन्तु उसमें अछूतों के उद्धार कर लेने मात्र को ही, अपना मतलब सिद्ध करने के लिए काफ़ी समझा गया; और हमारे उद्धार के लिए विचार करना अनावश्यक समझ कर टालमटोल कर दिया गया। हमारा विश्वास टूट गया, आशाएँ निराशा में परिणत हो गईं; और अपने पुरुष-समाज से सिवाय अत्याचार के और किसी प्रकार की भलाई की कभी उम्मीद करने के लिए भी स्थान न रहा। अस्तु, मुझे इस लेख के प्रकाशित करने की और भी उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई; और इस काम में विलम्ब करना घोर पाप करने के समान प्रतीत होने लगा; अतएव यह निबन्ध प्रकाशित करने का प्रयत्न किया।

अब मैं अपने पुरुष पाठकों को विशेष रूप से सम्बोधन कर कहती हूँ कि आप लोगों ने अभी तक समय के प्रभाव पर पूरी तरह ध्यान नहीं दिया। एक तरफ़ विधर्मी और विदेशी लोग आपको ख़ूब दबाते और तङ्ग कर रहे हैं, जिनसे छुटकारा पाने और बचने के लिए आप छटपटा कर उद्योग कर रहे हैं; और दूसरी तरफ़ अपने ही समाज के आधे अङ्ग पर अत्याचार करके उसको निकम्मा बना रहे हैं। भला इस बोझ को सँभालते हुए क्या आप इस बीसवीं सदी में उन प्रबल एवं सुसङ्गठित समाज के लोगों की प्रतिद्वन्द्विता में ठहर सकेंगे? दूसरों के जन्मसिद्ध अधिकारों को मार कर अपना उद्धार करने में कोई समर्थ नहीं हो सकता। अपना उद्धार वही कर सकेगा, जो दूसरों को भी उनके उचित अधिकार देगा।

इस कथन से मेरा यह मतलब नहीं कि आप लोग जान-बूझ कर

स्त्री-जाति पर अत्याचार करते हैं या हमसे दुश्मनी रखते हैं; यह बात बिलकुल नहीं है; किन्तु उसके विपरीत आप हमारे साथ बहुत प्यार एवं दुलार का बर्ताव करते हैं; और भोजन, वस्त्र, आभूषणों द्वारा हमारा सत्कार भी भले प्रकार करते हैं; तथा हमारी, गहने, कपड़ों तथा अन्य फ़रमाइशों को पूरा करने के लिए आप बहुत कष्ट उठा कर धन कमाते हैं और हमारे लिए खर्च करते हैं; परन्तु इतना करने पर भी वास्तव में आप हमें सुखी नहीं कर सकते; किन्तु दुखी ही रखते हैं। इसका कारण यह है कि न मालूम किस ज़माने में और किस कारण से स्त्रियों के अधिकार कम करने की आवश्यकता पड़ी। पुरुषों द्वारा उनके अधिकार कम होते-होते "अति" को पहुँच गए; और इस समय यह हालत हो गई कि उनके शरीर के प्राकृतिक वेग शान्त करने तक के जन्मसिद्ध अधिकार भी न रहे—जो अधिकार पशु-पक्षियों तक को प्राप्त हैं। सम्भव है कि किसी ज़माने में कारण विशेष से स्त्रियों के अधिकार कम करने की आवश्यकता उचित प्रतीत हुई हो; और ऐसा करने से समाज का हित-साधन हुआ हो; एवं यही बढ़ते-बढ़ते अब इस दर्जे तक पहुँच गया हो। फिर यह व्यवस्था बहुत मुद्दत से चली आने के कारण पुरुष-समाज में इसकी इतनी आदत पड़ गई कि यह उनको खाने-पीने की तरह साधारण व्यवहार प्रतीत होने लगा; और उसमें स्त्रियों को उतना कष्ट होने का उन्हें ध्यान न रहा, जितना कि वास्तव में होता है। उदाहरणार्थ लोगों को शराब, अफ़ीम, भाँग, सुलफ़ा, गाँजा, कोकेन, तम्बाकू, सुरती आदि खाने की आदत पड़ जाती है, जिससे उनके शरीर को बड़ी हानि पहुँचती है; परन्तु व्यसन पड़ जाने के कारण वे काम छूटते नहीं; और अधिकांश लोगों को तो शरीर की हानि भी प्रतीत नहीं होती। यदि किसी

बुद्धिमान् मनुष्य को हानि सूझती भी हो, तो आदत के वश हो जाने से वे व्यसन उससे भी नहीं छूट सकते। यद्यपि अपना शरीर सब को प्रिय होता है, और उसको हानि कोई भी पहुँचाना नहीं चाहता; परन्तु आदत या व्यसन पड़ जाने के कारण लोग शरीर को रोगी तथा दुखी बना डालते हैं—खाने को अन्न न मिलने पर भी नशे का प्रयोग अवश्य करते हैं! यही हाल समाज के पुरुषों और स्त्रियों के सम्बन्ध में है। यद्यपि अपनी अर्द्धाङ्गिनियों पर जान-बूझ कर अत्याचार आप नहीं करते, और न करना चाहते हैं; परन्तु लम्बी मुद्दत से आपको ऐसी आदत पड़ गई है कि आपकी करतूतों से हमको घोर दुख ही नहीं; किन्तु हमारा मनुष्य-जन्म ही नरक की यातना के तुल्य होकर नष्ट हो गया है, और आपको इस बात का तनिक ख़याल तक नहीं होता। यदि आप में से किसी को ख़याल होता भी होगा, तो वह अपनी आदत का क़ायल होने से कुछ कर-धर नहीं सकता। शरीर रोगी होने पर यदि वैद्य-डॉक्टर नशे को छुड़वाने की चेष्टा करते हैं, तो यह भी व्यसनी को नागवार गुज़रता है; और वह उसे सर्वथा नहीं छोड़ता। यद्यपि आपकी अनजान में, अप्रतीति में या भ्रम से ही हम पर आपकी तरफ़ से उक्त अत्याचार होते हैं; परन्तु उसका कष्ट तो हमको होता ही है। बालक अपनी माता की आँख में प्रेम से ही अँगुली घुसेड़ दे; परन्तु उसकी पीड़ा तो माता को होती ही है। विष चाहे अमृत समझ कर भी खाया जाय; परन्तु मृत्यु तो अवश्य होती ही है। अतएव आपकी बुद्धि चाहे द्वेषयुक्त न भी हो, तो भी आपकी करतूतों से हमारा सर्वनाश होता ही है। आप ज्ञानवान् प्राणी हैं; अतः यदि उचित प्रयत्न करें, तो अपनी विपरीत आदतों को मिटाने में समर्थ भी हैं, इसलिए आपको सम्बोधन कर यह अपील की गई है।

देखिए, समय क्या कह रहा है! वर्तमान में अन्य धर्म और अन्य समाज के लोग स्त्री-जाति का कितना आदर करते हैं। कुछ वर्ष हुए सीमा-प्रान्त से एक पाश्चात्य रमणी को कोई दुष्ट ले भगा था। उसके लिए भारत और इङ्गलैण्ड में इतना आन्दोलन मचा कि ज़मीन-आसमान गूँज उठा। फिर एक दूसरी रमणी ने वीरतापूर्वक उसको छुड़ाया, जिसकी बड़ी पूजा हुई। इसके विपरीत हमारे समाज में सैकड़ों-हज़ारों रमणियों को प्रतिवर्ष दुष्ट लोग ले भागते हैं, जिसकी किसी को ख़बर तक नहीं पड़ती; और समाज के लोगों के कान तक नहीं खड़े होते। कहाँ तो वह समाज; जिसमें स्त्री-जाति के लिए इतना आदर; और जिस आदर के प्रताप से उन स्त्रियों में इतनी शक्ति उत्पन्न हो रही है कि अपनी एक बहिन को छुड़ाने के लिए दूसरी दुश्मनों के घर में बेधड़क प्रवेश करके उसे छुड़ा लाती है; और कहाँ हमारा समाज, जिसमें स्त्री का पशु-तुल्य भी आदर नहीं! (यदि पशु को कोई ले भागता है, तो उसके लिए "वार" पड़ती है; परन्तु स्त्री के लिए कुछ भी नहीं) जिसका नतीजा यह होता है कि स्त्रियों का आत्मबल नष्ट हो जाता है; और वे स्वयं अपनी रक्षा के लिए भी कुछ नहीं कर सकतीं, दूसरों के छुड़ाने की तो बात ही क्या!

जब विधर्मी लोगों के हमले अपनी जाति पर होते हैं, तो उनकी स्त्रियाँ अपने को सँभालती हुईं हमलों में पुरुषों का साथ देती हैं; परन्तु आपको उन हमलों के समय अपने बचाव के पहले हमारा बचाव करने की आवश्यकता पड़ती है; अर्थात् हम लोग उस विकट समय में आप की सहायता करना तो दूर रहा, उलटा बोझ रूप हो जाती हैं। इसका कारण यही है कि आपकी चिर-अभ्यस्त आदतों से होने वाले अत्याचारों

ने हमको भेड़ों से भी गई-गुज़री बना दिया कि हमको कोई काट डाले तो रोने की आवाज़ निकालने तक का हमें साहस नहीं होता ; अस्तु—

समय पुकार-पुकार कर कह रहा है कि वर्तमान काल में जिस जाति में, पुरुष-स्त्री अपने-अपने अधिकारों को बराबर निभाते हैं और स्त्रियों का यथोचित आदर होता है, वही संसार में ठहर सकती है, वही सब पर अपना अधिकार जमा सकती है, वही शासन कर सकती हैं। और जो जाति स्त्रियों को पद-दलित रखती है, वह दूसरों का शिकार बनती है।

आप केवल समय के ही नहीं, किन्तु प्रकृति के भी विरुद्ध चल रहे हैं, और प्रकृति के विरुद्ध चलने वाला संसार में कभी नहीं ठहर सकता; क्योंकि प्रकृति सबसे बलवती होती है। सांसारिक जनों को उसके अनुसार चलने ही में सफलता होती है, उसके विरुद्ध चलने से वे बर्बाद हो जाते हैं। अगर आप हठ से उसके विरुद्ध ही चलते रहेंगे, तो याद रखिए कि प्रकृति अपना बदला लिए बिना न रहेगी। आप हम को प्रकृति-जन्य वेगों को शान्त करने से वञ्चित रक्खे रहेंगे; और हमारे जन्मसिद्ध अधिकारों को न देकर अत्याचार करते रहेंगे, तो हम लोग दुखों से तङ्ग होकर, जिस समाज में हमको सुख मिलेगा, उसमें शनैः-शनैः चली जायँगी; क्योंकि दुखों में अधिक समय तक कोई नहीं रह सकता। जहाँ सुख दीखता है, वहीं जाने की सबकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हुआ करती है। आपके अत्याचार हद्-दर्जे तक पहुँच गए, अब वे इस स्वतन्त्रता के ज़माने में अधिक समय तक बरदाश्त नहीं हो सकेंगे। दूसरी ओर विधर्मी आपको नष्ट करने के लिए कमर कसे तैयार हैं। हम लोगों को अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर वे अपने में मिला लेंगे, और उनके सहवास से जो हमारी सन्तान होंगी, वे ही आपके सम्मुख होकर हमारे दुखों का बदला आप से चुकायेंगी।

इसलिए आपको चेतना चाहिए। अब भी चेतने से इस प्राचीन पवित्र समाज का बचाव हो सकता है; नहीं तो इस सर्वनाश से बचने का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

मेरी इस चेतावनी का आप उलटा अर्थ न लगावें और न इसको आप कोई धमकी ही समझें। मैं ने जो कुछ कहा है, वह समाज के सच्चे हित-साधन के लिए; अपना कर्त्तव्य समझ कर, जो कुछ मेरी समझ में समाज के लिए श्रेयस्कर प्रतीत हुआ, वही कहा है; और उसके न करने से समाज का जो अनिष्ट होने वाला है, वह दिखाया है। आप मेरे कथन पर उसी शुद्ध भावना से विचार करें।

सम्भव है कि अनेक लोगों को इस पुस्तक के पूर्वार्द्ध में वर्णन किए हुए समाज के गन्दे और घृणित रहस्य को इस तरह प्रकाशित करना नागवार गुज़रे; परन्तु किया क्या जाय? लाचारी है। जब किसी के शरीर में एक महा भयङ्कर नाड़ी-व्रण (Cancer) हो जाय और उसे छिपाते-छिपाते इतना बढ़ जाय कि उससे शरीर के नाश होने की सम्भावना हो, फिर भी उसको इस भय से छिपाया जाय कि इसमें बहुत गन्दा मवाद भरा हुआ है, इसको प्रकट करना बहुत लज्जा-जनक एवं ग्लानि-उत्पादक होगा; तो फिर उस शरीर का शीघ्र ही नाश होने में क्या कोई सन्देह रहता है? यहाँ प्रश्न यह उठेगा कि ऐसे व्रण को वैद्य-डॉक्टर को बताना चाहिए, जो इसका इलाज करे। संसार में ढौंड़ी पीट कर हँसी कराने से क्या फ़ायदा? इसका उत्तर यह है कि जब हकीम-डॉक्टर इतने स्वार्थी, लालची और अदूरदर्शी हों कि इस फोड़े के बने रहने ही से अपना फ़ायदा समझते हों—फ़ीस मिलेगी, रोगी हमारे क़ब्ज़े में रहेगा, आराम होने से हमको कौन पूछेगा? इत्यादि जिनके विचार हों, और रोगी के मर जाने

का जिनकी कुछ भी फ़िक्र न हो, ऐसे हकीम-डॉक्टरों के भरोसे पर फोड़े के गुप्त रखने से शरीर का सर्वनाश के सिवाय और क्या होगा ?

दूसरा सवाल यह उठता है कि स्त्रियों को दुख है, उसका कारण समाज से छिपा नहीं है। उसके लिए आन्दोलन हो रहा है; और उसके मिटाने के लिए उपाय भी सोचे जा रहे हैं। फिर समाज के गुप्त छिद्र प्रकाशित करने से क्या लाभ ? इसका उत्तर यह है कि स्त्री-जाति को जो दुख हैं, बहुत से लोग तो उन्हें दुःख ही नहीं मानते। जो दुख मानते हैं, उनमें भी ऐसे सज्जन थोड़े हैं, जिनको पूरी तरह से उनका अनुभव हो; और जिनको अनुभव है, वे उन दुखों के केवल आदि कारणों का निश्चय करके उन्हीं को निवारण करने मात्र की चेष्टा भर करते हैं; परन्तु उन आदि कारणों के बाद जो उपद्रव पीछे से हुए हैं, उन पर कुछ भी ध्यान नहीं देते। इसी कारण दुख मिटाने के लिए उनसे कुछ फल नहीं हो सकता। जैसे किसी को सर्दी लग कर बुख़ार और खाँसी हो गई, उस पर ठण्डी हवा में फिरता रहा, ठण्डे कफोत्पादक पदार्थ खाता रहा, इलाज कुछ भी न कराया, बदपरहेज़ी सब तरह से होती रही; ऐसा करने से ज्वर मुद्दत का होकर जीर्ण हो गया, खाँसी से फेफड़े पर आघात पहुँच कर यक्ष्मा हो गई, साथ में मन्दाग्नि और कमज़ोरी हद-दर्जे तक पहुँच गई। अब वैद्य उसके पीछे से होने वाली सहायक बीमारियों पर ध्यान न देकर, और उसके पथ्य-परहेज़ आदि का यथोचित प्रबन्ध हो सकेगा कि नहीं, इसका विचार न कर, केवल बीमारी के आदि कारण सर्दी का ही इलाज करेगा, तो क्या वह उस रोग को मिटा सकेगा ? कदापि नहीं। इसी तरह संग्रहणी अजीर्ण से उत्पन्न होती है, फिर अन्य कारण सम्मिलित होकर रोग बढ़ जाता है; और उससे अनेक प्रकार के दूसरे उपद्रव हो जाते हैं। क्या उस

रोगी को केवल पाचक-चूर्ण देने से ही काम चल जायगा? चाहे रोगी को पथ्य से रखने वाला कोई भी न हो। आमवात और वदगाँठ का आदि कारण उपदंश है, तो क्या वदगाँठ का ऑपरेशन न करवा कर केवल उपदंश का इलाज करते रहने से रोगी चङ्गा हो जायगा? इन सबका उत्तर "नहीं" के सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता। ठीक यही हालत हमारे दुखों को मिटाने का उद्योग करने वाले महाशयों की है, जो दुखों के आदि कारणों में से कुछ को समझ कर उनका इलाज करते हैं और निश्चय कर बैठते हैं कि आदि कारणों के मिट जाने मात्र से सब दुःख मिट जायँगे। अतः वे उन्हीं का साधारण उपाय करते हैं। एक रोग में अनेक रोगों के सम्मिलित हो जाने से जितनी भयङ्करता बढ़ जाती है, उसका पूरा अनुभव उनको भी नहीं है। इसलिए रोग का वर्तमान स्वरूप, उसका आदि कारण और उसको पीछे से मदद देने वाले साधन और उपचार-व्यवहारों के मिल जाने से भयङ्करता जितनी बढ़ गई है, वह सब खोल कर संक्षेप से दिखाने का उद्योग इस निबन्ध में किया है; ताकि उनको पूरी-पूरी वाक़फ़ियत हो जाने से वे उसका ऐसा-वैसा इलाज करके ही निश्चिन्त न हो जायँ; किन्तु यथार्थ उपाय करें।

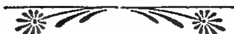
पुरुष-समाज के सामने इतनी अपील करने के पश्चात् थोड़ी सी प्रार्थना मैं अपनी पढ़ी-लिखी प्यारी बहिन पाठिकाओं से भी कर देना चाहती हूँ कि, आप निडर होकर अपना सच्चा अनुभव प्रकाशित करें; और साथ ही साथ अपने विचार भी प्रकट करें, ताकि पुरुष-समाज की आँखें खुलें और वे समाज को सर्वनाश से बचाने के लिए स्वार्थ की नीच वृत्तियों को त्याग कर उदार भाव से हमारे साथ सद्व्यवहार करके हमको अपने जन्मसिद्ध अधिकार देकर गृहस्थी को सुव्यवस्थित करते हुए जाति के सङ्गठन को सुदृढ़ बनावें।

प्रस्तावना समाप्त करने के पूर्व मैं उन सहृदय महाशयों को धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझती हूँ कि जिन्होंने मुझे इस कार्य में सहायता दी है। यद्यपि उनको धन्यवाद आवश्यक नहीं है; क्योंकि उन्हीं के अत्याचारों को रोकने के लिए उन पर प्रकाश डालने में सहायक होना उनका भी कर्त्तव्य था; परन्तु स्त्री का यह प्राकृतिक स्वभाव होता है कि थोड़ी सी सहानुभूति से भी प्रसन्न हो जाती है। पति से ख़ूब पीटी जाकर फिर उसी समय उसके थोड़े से प्यार करने पर वह गद्गद् हो जाती; और उस मार-पीट को भूल जाती है। उसी स्वभाव के वश होकर मैं यह कृतज्ञता प्रकाशित करती हूँ।

इस लेख में प्रसङ्गवश पुरुषों की करतूतों की कड़ी, परन्तु उचित समालोचना ही प्रधानता से की गई है; इसलिए इसमें कटु और अप्रिय शब्दों का प्रयोग होना अनिवार्य है। यद्यपि ऐसा करने में शिष्टता की सीमा उल्लङ्घन न करने के लिए बहुत ही सावधानी रक्खी गई है, अतः पाठकों को यदि इसके शब्दों से चोट पहुँचे, तो वे उदार भाव को अङ्गीकार करके इस विचार से क्षमा करें कि यह लेख हमारे ही अत्याचार से पीड़ित एक अबला का लिखा हुआ है, और अबला सदा क्षमा की पात्र होती है।

जिन महाशयों को समाज के परदे के भीतर के रहस्य को देखने की इच्छा न हो और जो केवल इस लेख का मार्मिक तत्त्व ही पढ़ना चाहें, वे सिर्फ़ सहनशीलता देवी का व्याख्यान ही आदि से अन्त तक पढ़ें, और जो महाशय समाज की वास्तविक दशा से भली-भाँति परिचित होना चाहें, वे पुस्तक को आदि से अन्त तक अवश्य पढ़ें।

—स्फुरना




पूर्वार्द्ध

अबलाओं का इन्साफ़



प्रिय पाठक-पाठिकाओ ! सब से प्रथम मैं अपने निरूपण के घटनास्थल का परिचय आपको देना चाहती हूँ। इस निरूपण का नाम है "अबलाओं का इन्साफ़" और इसके नाम के अनुसार ही इसमें विषय भी "अबलाओं का इन्साफ़" ही है। इस इन्साफ़ के होने का स्थान कौन सा होना चाहिए ? इन्साफ़ का स्थान वही हो सकता है, जहाँ पक्षपात किञ्चित भी न हो। संसार में इन्साफ़ के इतने स्थान देखने में आते हैं—प्राचीन काल में इन्साफ़ या तो राजा स्वयं करता था या धर्म के आचार्य ब्राह्मण करते थे। गाँव तथा जाति के पञ्च भी इन्साफ़ करते थे; और वे इस समय भी कहीं-कहीं करते हैं। वर्तमान समय में अधिकतर इन्साफ़-कार्य के लिए राजकीय न्याय-विभाग ही अलग स्थापित है। सब प्रकार के रगड़ों-झगड़ों के फ़ैसले ये ही इन्साफ़ की संस्थाएँ करती हैं; परन्तु बहुत ही खेद का विषय है कि हमारा इन्साफ़ इनमें से किसी भी संस्था से हमको नहीं मिल सकता; क्योंकि

हमारा झगड़ा है पुरुष जाति से, जो स्वयं तो हम पर अत्याचार करती है; और उसका दोष उलटे हमारे सिर मढ़ती है। उपरोक्त न्यायकारी संस्थाएँ सब पुरुषों ही की स्थापित की हुई हैं; और उनमें पुरुष ही इन्साफ़ करने वाले हाकिम हैं। धर्माचार्य, राजा, मन्त्री, पुरोहित, पण्डित, पञ्च, हाकिम, न्यायाधीश—सब पुरुष ही पुरुष हैं। यहाँ तक कि वर्तमान समय की सर्वोच्च न्यायालय पार्लामेण्ट की प्रिवी-काउन्सिल और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयों (International Tribunal of Justice) पर भी पुरुष ही विराजमान हैं। जो फ़रीक़ हो, वही न्यायाधीश नहीं हो सकता; अतएव पुरुषों और हमारे झगड़े का इन्साफ़ लौकिक अदालत में नहीं हो सकता। हमारा इन्साफ़ तो परमात्मा के घर की उस अदालत में होगा, जहाँ किसी का पक्षपात नहीं चल सकता, किसी गवाही-साखी की जरूरत नहीं, जिससे कोई किसी बात को छिपा नहीं सकता, जहाँ कोई ऊँच-नीच नहीं, जहाँ कभी कोई ग़लती या मुलाहिज़ा होना सम्भव नहीं, जिसको कोई वकील धोखा नहीं दे सकता, जहाँ क़ानून के शब्दों में भ्रम नहीं हो सकता; और जहाँ अपनी-अपनी करनी का फल सब को तोल कर मिलता है। वह स्थान कौन सा है? वह है ईश्वर के न्यायाधीश धर्मराज का भवन! जहाँ अपनी-अपनी करनी का हिसाब चुकाने के लिए राजा-बादशाह साधु-महात्मा और धर्माचार्य से लेकर छोटे से छोटे प्राणी को जाना पड़ता है; और वहाँ सब का इन्साफ़ उनकी करनी के अनुसार यथायोग्य होता है। उसमें एक बाल का भी फ़र्क़ नहीं आ सकता।

अतएव इस अभियोग का निर्णय-स्थल वैवस्वत धर्मराज की अदालत है।

पाठक-पाठिकाओ! ज़रा एकाग्र चित्त होकर अपनी मनोवृत्ति को मेरे साथ धर्मराज की कचहरी की शोभा देखने के लिए भेजिए। धर्मराज के मन्दिर में एक बहुत ऊँचे स्टेज पर रत्न-जटित सिंहासन पर धर्मराज विराज रहे हैं। पास ही दाहिनी ओर एक गद्दे पर चित्रगुप्त जी अपना दफ़्तर लिए बैठे हैं; और उनसे सट कर अनेक छोटे-छोटे सिंहासनों पर देवता एवं देवियाँ बैठी हैं, जिनमें मुख्य ये हैं—ज्ञान, अस्तेय, भक्ति, आस्तिकता, सत्य, परोपकार, अहिंसा, शम (मनोनिग्रह), दम (इन्द्रिय-निग्रह), यज्ञ, तप, दान, अभय, स्वाध्याय (सत्-शास्त्रों का अध्ययन), सत्सङ्ग, आर्जव (सरलता), शौच (पवित्रता), अक्रोध, वैराग्य, सन्तोष, शील, अपैशुन्य (निन्दा व चुग़ली न करना), प्रेम, शिष्टाचार, गम्भीरता, तेज, क्षमा (सहनशीलता), धैर्य, निर्वैर, साम्यभाव, आचार्योपासना (गुरु-पूजन), वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, जाति-धर्म, कुल-धर्म, कर्त्तव्य-परायणता और कृतज्ञता! बाईं तरफ़ एक कटघरे के अन्दर पुण्यात्मा और पापी अपने-अपने इन्साफ़ की बाट देखते हैं। पुण्यात्मा जीव कुर्सियों पर बैठे हैं; और पापी खड़े हैं। धर्मराज के पीछे दाहिनी तरफ़ पारिषद और बाईं तरफ़ यमदूत क़तार बाँधे खड़े हैं।

भगवान् धर्मराज ने कटघरे की तरफ़ निगाह करके चित्रगुप्त से पूछा कि आज कचहरी में इतनी असाधारण भीड़ एक ही

तरह के प्राणियों की क्यों देखने में आती है ? चित्रगुप्त ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—महाराज, भूलोक में भारतखण्ड का कञ्चनपुर नामक नगर भू-कम्प से धरातल में दब गया। उसमें रहने वाले प्राणी इन्साफ़ के लिए उपस्थित किए गए हैं। धर्मराज ने कहा—अच्छा, सबसे पहले स्त्रियों के मुक़दमे लिए जाएँ; क्योंकि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिए विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। इनको हवालत में रखना उचित नहीं!

चित्रगुप्त—जैसी आज्ञा! स्त्रियों की फ़ाइल में पहला नम्बर "राधा" नाम की एक वैश्य-स्त्री का है।

धर्मराज—इसके पुण्य-पाप किस तरह हैं ?

चित्रगुप्त—महाराज, इसने पुण्य कुछ भी नहीं किया, सब पाप ही किए हैं। असत्य, हिंसा, चोरी, छल, व्यभिचार, पर-निन्दा, द्वेष-भाव इतने बड़े अपराध; और इन्द्रिय-लोलुपता, निर्लज्जता, लोभ, ईर्ष्या, कुसङ्ग, अपवित्रता तथा अपव्यय ये साधारण अपराध इसके जिम्मे हैं।

धर्मराज ने बैठे हुए देवी और देवताओं को लक्ष्य करके कहा—क्यों महाराज, आप लोगों में से कौन इसके विपक्ष और कौन पक्ष में बोलेंगे। इस पर ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, आस्तिकता, परोपकार, शम, यज्ञ, तप, दान, स्वाध्याय, शिष्टाचार, तेज, धैर्य, साम्यभाव, आचार्योपासना, प्रेम, वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, कर्त्तव्य-परायणता, कृतज्ञता और गम्भीरता ने विनय की कि हम लोगों का इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं।

धर्मराज ने भक्ति की ओर लक्ष्य करके कहा—देवी, स्त्री-जाति से आपका विशेष सम्बन्ध रहता है। भक्ति ने कहा—भगवन्! आपका कहना सत्य है; परन्तु इन लोगों की भक्ति प्रायः निःस्वार्थ नहीं होती; या तो ये लोग किसी कामना की पूर्ति या पापों के छिपाने अथवा भक्ति की ओट में विषयों का सेवन करने किंवा कीर्ति और मान प्राप्त करने आदि के लिए दम्भ से भक्ति करती हैं। अगर इनमें से कोई हेतु न होकर श्रद्धा से करती हैं, तो प्रायः अन्ध-विश्वास से; भक्ति का तत्व कुछ नहीं समझतीं। गुरु ने जिस देवी-देवता का अर्चन-पूजन बता दिया, उसको करती चली जाती हैं। पूजन के पदार्थ और सामग्रियों में ही चित्त लगाए रहती हैं; और इसी में भक्ति की पराकाष्ठा समझती हैं। ईश्वर का सर्वव्यापी भाव न समझ कर, जिस इष्ट की आप भक्ति करती हैं, उससे अन्य सब देवताओं से द्वेष करती हैं। चोरी, झूठ, पर-पीड़न, हिंसा, व्यभिचार, ईर्ष्या, निन्दा आदि दुर्गुणों को छोड़ने की आवश्यकता नहीं समझतीं। बाहरी पवित्रता के लिए, दूसरों से घृणा करती हैं। पति, पिता-माता तथा अन्य पूजने और भक्ति करने योग्य प्रत्यक्ष देवताओं का तिरस्कार करती हैं। फिर भी अपनी बनावटी दिखावे की भक्ति का बहुत अभिमान करती हैं। भला ऐसी भक्ति करने वाली स्त्रियों से मेरा सम्बन्ध किस तरह रह सकता है?

धर्मराज ने तप की ओर देख कर पूछा—महाराज, ये तीर्थ, व्रत, स्नानादि करके तप तो बहुत सा करती हैं, आप इनका पक्ष लेंगे? तप ने उत्तर दिया कि भगवन्! ये तप भी उसी प्रकार का

करती हैं, जैसी कि भक्ति के विषय में उक्त देवी जी ने वर्णन किया है। इनका तप परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् के श्री मद्भगवद्गीता में कहे हुए आसुरी, राजसी एवं तामसी होते हैं, अतएव मैं इनका पक्ष नहीं ले सकता।

धर्मराज ने दान से कहा—महाराज, ये दान तो बहुत दिया करती हैं; कहिए आपकी क्या राय है? दान ने कहा—भगवन्! इनका दान भी राजसी और तामसी होता है, जो आसुरी वृत्ति से किया जाता है।

धर्मराज ने आचार्योपासना से कहा—देवी, गुरुओं की उपासना तो ये खूब ही करती हैं, आप इन्हें भला क्यों छोड़ती हैं?

आचार्योपासना ने विनय की कि महाराज, हिन्दू-धर्म ने स्त्रियों के लिए पति से अन्य कोई दूसरा गुरु प्रतिपादन ही नहीं किया। सो पति की उपासना तो ये कुछ नहीं करतीं; बल्कि शास्त्रों के विरुद्ध अन्य गुरुओं की उपासना जाति-धर्म तथा कुल-धर्म के विरुद्ध करती हैं। गुरु की सच्ची पूजा इसी में है कि उसके उपदेश किए हुए सद्गुणों को धारण कर, अपने धर्मानुसार आचरें; परन्तु ये इसके विपरीत घर में चोरी करके या घर वालों को सता कर गुरु को द्रव्य देती हैं; और स्त्री-जाति के एक-मात्र पातिव्रत्य-धर्म की कुछ भी परवाह न करके, गुरु के साथ अनुचित व्यवहार करती हैं। जैसे वे दम्भ से भरे हुए कलियुग के गुरु होते हैं, वैसे ही इनकी पूजा! अब कहिए, मैं इनकी सहायता किस तरह करूँ?

धर्मराज ने प्रेम से पूछा—महाराज, आपका आदर तो स्त्री-जाति ही में अधिक होता है। प्रेम ने उत्तर दिया—महाराज, ये सार्वजनिक प्रेम को तो कुछ जानतीं ही नहीं; केवल अपने आत्मीयों से प्रेम करती हैं। सो भी प्रायः अस्थायी होता है। तब धर्मराज ने शेष देवताओं से क्रमशः पूछा कि आप में से इस के विपक्ष में कौन हैं? सत्य, आस्तेय, अहिंसा, दम, अभय, सत्सङ्ग, आर्जव, शौच, अक्रोध, सन्तोष, शील, अपैशुन्य, निर्वैर, जाति-धर्म तथा कुल-धर्म ने कहा कि हम सब इसके विरुद्ध हैं; क्योंकि इसने हम सब की हानि की है।

धर्मराज ने सहनशीलता से पूछा—देवी, अब शेष केवल आप ही रहीं। आप तो इसके पक्ष में हैं न?

सहनशीलता ने उत्तर दिया—भगवन्! मैं केवल इसके पक्ष में ही नहीं; किन्तु इसके बचाव के लिए बहुत-कुछ निवेदन भी करूँगी। केवल इसके लिए ही क्यों, हिन्दू-स्त्री मात्र के लिए मैं खड़ी होऊँगी। महाराज, हिन्दू-जाति में पुरुषों की तरफ़ से स्त्रियों पर जो-जो घोरातिघोर अत्याचार होते हैं, उनको इस तरह चुपचाप सहन करना, उनके चित्त में उनका कुछ भी बदला लेने का विचार तक पैदा न होकर, पुरुषों के साथ उलटा प्रेम करना, उनकी सेवा करना, यह महान् सद्गुण, यह अलौकिक सहनशीलता एवं क्षमा-धर्म जितना हिन्दू स्त्री-जाति में है, उतना और किसी में नहीं।

धर्मराज—हिन्दू-पुरुषों की तरफ़ से स्त्रियों पर घोर अत्याचार होते हैं?

क्षमा—जी हाँ, घोर ही नहीं ; किन्तु घोरातिघोर ! अभी उन अत्याचारों का कुछ ब्योरा महाराज के सम्मुख उपस्थित हो जायगा। इस समय मैं केवल इतना ही निवेदन करती हूँ कि हिन्दू के घर जिस समय कन्या का जन्म होता है, उसी समय से उससे घृणा होनी आरम्भ हो जाती है; यद्यपि उस बेचारी ने उस समय उस घर की कुछ भी हानि नहीं की; परन्तु घर के सब लोगों में शोक छा जाता है। घर वाले सब उस नवागत बालिका को गाली देते हैं—"राँड कहाँ से आ गई !" लोग उनके शोक की आश्वासना करते हैं—"इस वार पत्थर आ पड़ा तो क्या हुआ ? अब की बार बधाई होगी। आँधी के बाद वर्षा आती है" इत्यादि। कहीं-कहीं तो उस नवजात बालिका के घात का भी उद्योग होता है (कचहरी में सब ओर से 'राम-राम' शब्द होता है) यह तो अत्याचार का मङ्गलाचरण है। बालिका के पालन-पोषण के लिए इतनी बेपरवाही की जाती है कि शिष्ट लोग पशुओं के पालन में भी नहीं करते। अगर लड़का होता है, तो बड़ा आनन्द मनाया जाता है, और वह बहुत हिफ़ाज़त के साथ पाला-पोसा जाता है। बालिका जब बाल-रोगों से पीड़ित होती है, तब उसके इलाज की तरफ़ कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता ; क्योंकि इच्छा तो यह रहती है कि किसी तरह यह मर जाय, तो पीछा छूटे; परन्तु लड़के की बीमारी में घर वालों के होश उड़ जाते हैं। इलाज में बहुत धन खर्च किया जाता है । नींद उड़ जाती है; और भूख बन्द हो जाती है। देवी-देवता और कब्रों-पीरों को मनाते नाकों

दम आ जाता है। जिस घर में लड़के-लड़की साथ-साथ रहते हैं, वहाँ लड़के के खान-पान की तो पूरी तरह तवज्जह होती है; और उसकी रुचि के माफ़िक मिष्टान्न बनाए जाते हैं। अगर एक समय वह कुछ कम खाए, तो सब परेशान हो जाते हैं; परन्तु लड़की को रूखा-सूखा या लड़के का जूँठा भोजन मिलता है। अगर वह एक-दो दिन कुछ न खाय, तो कोई पूछता नहीं। इन अत्याचारों को सह कर भी वह कभी किसी से नाराज़ नहीं होती; किन्तु माता-पिता, भाई आदि से बहुत प्यार करती है। "राँड" शब्द से इनका सम्मान होता है। मानो राँड होना कोई साधारण बात है। इसके बाद लड़की की शिक्षा तथा उसके विवाह आदि के विषय में बहुत-कुछ आपके सामने आगे वर्णन हो जायगा, इसलिए मैं इस समय यहीं पर ठहरती हूँ।

धर्मराज—तो अब मुक़दमा शुरू करना चाहिए। कहिए सत्यदेव, आपको इस राधा के विरुद्ध क्या कहना है?

सत्य—भगवन्! जब से इसने होश सँभाला, झूठ बोलती रही है। एक बार नहीं, दो बार नहीं, हज़ारों नहीं, अगणित बार इसने झूठ बोला है—प्रतिज्ञाएँ झूठी की हैं।

अस्तेय—महाराज, इसने कई बार चोरियाँ की हैं। अपने घर की चीज़ें चुराईं; और कई बार अन्य लोगों की भी! यह अनेक बार चोरी से घर से बाहर निकल कर अनुचित स्थानों में गई और वहाँ छिप कर रही।

अहिंसा—महाराज, इसने कई बार भ्रूण-हत्या की है; और

कटुभाषण एवं निन्दा आदि से अपने घर वालों तथा अन्य लोगों का जी दुखाया है।

दम—भगवन्! इन्द्रिय-विषयों के अधीन होकर यह खान-पान तथा अन्य भोगों में सदा व्यग्र रही। इन भोगों में धर्माधर्म का कुछ भी विचार नहीं किया।

अभय—मिथ्या-भय से इसने अनेक अधर्म किए और अपने कुकर्मों से अपने घर वालों को इज़्ज़त जाने का भय दिया।

सत्सङ्ग—सदाचारी स्त्री-पुरुषों का सङ्ग इसे कभी अच्छा नहीं लगा; बल्कि कुसङ्ग में इसकी बहुत प्रीति थी।

आर्जव—छल और अभिमान करने की इसकी बड़ी आदत पड़ गई थी; और बोलने में वक्र-भाव तथा व्यङ्ग की बातों से लोगों को बहुत दुखी किया करती थी।

शौच—इसका मन सदा मैला रहता था, और शरीर की ऊपरी सफ़ाई रखने पर भी अछूत वस्तुओं को शरीर के व्यवहार में लाने और विशेष प्रसङ्गों पर ग्लानि उत्पन्न करने वाले काम करने में यह कुछ भी परहेज़ नहीं करती थी।

अक्रोध—क्रोध की मात्रा इसमें बहुत ज्यादा थी। बात-बात में इसको क्रोध आ जाता था, जिससे लोग सदा तङ्ग रहते थे।

सन्तोष—धन और भोग-विलास के पदार्थों का लोभ इतना था कि इनसे यह कभी सन्तुष्ट ही नहीं होती थी।

शील—जिनसे लज्जा करनी चाहिए, उनसे यह लज्जा कुछ भी नहीं करती, और जिनके सामने लज्जा की आवश्यकता नहीं, उनके

सामने लज्जा करके शीलवन्त बनने का ढोंग करती थी। वेश्याओं के समान भेष और शृङ्गार करके लोगों के सम्मुख होने में इसे कुछ भी सङ्कोच नहीं होता था; और अयोग्य शब्द बोल कर बड़ी प्रसन्न होती थी। पर-पुरुषों और स्त्रियों के सामने हँसी-ठट्ठा करने में यह अपनी होशियारी समझती थी; और बड़ों के सामने मुँहफट होकर बातें करने में अपनी बड़ाई समझती थी।

अपैशुन्य—औरों की निन्दा करना और एक दूसरे की चुग़ली करना इसका नित्य का नियम था।

निर्वैर—ईर्ष्या और द्वेष इसके शरीर में कूट-कूट कर भरे थे। भावज, ननद, दिवरानी और जेठानी तो इसकी ईर्ष्या-द्वेष की प्रधान पात्र थीं।

जाति-धर्म—स्त्री-जाति के पातिव्रत्य-धर्म की कुछ परवाह न कर इसने व्यभिचार बहुत ही किया। कुमारी-अवस्था में ही इसने कुकर्म किया और विवाह होने के बाद पति की उपस्थिति में भी इसने व्यभिचार किया; और विधवा होने के बाद तो इतनी बार किया कि जिसकी गणना ही नहीं।

कुल-धर्म—व्यभिचार करने में इसने जाति-पाँति या नाते-रिश्ते का कुछ भी ख्याल नहीं किया; और प्रसिद्ध होकर कुल की मर्यादा नष्ट की। अन्य स्त्रियों के धर्म-भ्रष्ट करवाने में भी यह सहायक हुई।

जब देवी-देवता राधा के विपरीत उपर्युक्त वर्णन कर चुके, तब धर्मराज ने राधा के सामने नज़र करके कहा—क्यों राधे! तुम पर

जो दोष लगाए गए हैं, उनकी निस्वत तुम क्या कहती हो ? राधा ने कुछ भी जवाब न दिया। मिट्टी के पुतले की तरह खड़ी रही। धर्मराज ने फिर कहा—राधा, यहाँ पर चुप रहने से काम नहीं चलेगा; और न तुम इन अपराधों से इन्कार कर सकती हो; क्योंकि इस न्यायालय में किसी के जिम्मे फ़र्ज़ी अपराध नहीं लगाए जाते कि जिनके खण्डन-मण्डन करने के लिए किसी सुबूत की ज़रूरत हो। यह परमात्मा के घर की अदालत है; और वह सर्व-व्यापक है। संसार के कोने-कोने और घट-घट की कोई भी बात अथवा कामना छिपी नहीं रहती। अतएव इस अदालत के सम्मुख कोई असत्य बात उपस्थित नहीं हो सकती। अस्तु, तुम्हारे ज़िम्मे जो दोष लगाए गए हैं, वे बिलकुल सत्य हैं। अब तुम्हें बचाव के लिए जो कुछ कहना हो, उसके वास्ते यह अवसर दिया जाता है। यदि इस समय तुम कुछ न कहोगी, तो समझा जायगा कि तुम इन सब अपराधों को स्वीकार करती हो; और तुम्हारे लिए यथोचित दण्ड का विधान किया जायगा।

धर्मराज की यह बात सुन कर राधा बहुत डरी और उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। लज्जा से सिर नीचा कर हाथ जोड़ बहुत कातर स्वर से करुणा-भरी आवाज़ में कहने लगी—

महाराज ! मैं दीन, अभागी, अबला आपके सामने हूँ। आप धर्मराज हैं, न्याय और करुणा के सागर हैं, मुझ पापिनी पर आप

दया कीजिए। मैंने ये सब अपराध किए हैं; परन्तु भगवन् ! अपनी इच्छा से इनमें से बहुत ही थोड़े किए हैं। अधिकांश अपराध मुझे विवश होकर करने पड़े हैं।

धर्मराज—क्या ? अपराध करने के लिए तुम किसी से विवश की गई थी; और उनका दोष तुम पर लगाया जा रहा है ?

राधा—हाँ, भगवन् ! धृष्टता की क्षमा !

धर्म०—तुम किस तरह विवश की गई—इसका सब वृत्तान्त कहो।

राधा—महाराज, मेरा वृतान्त ऐसा लज्जाजनक और घृणित है कि उसे वर्णन करने का इस भरी अदालत में मुझे साहस नहीं होता।

धर्म०—राधा ! यह कोई लौकिक अदालत नहीं है कि जिसमें किसी प्रकार का भय, शङ्का या लज्जा आदि की जाय। ये सब तो पाञ्चभौतिक देहधारियों के सामने किए जाने योग्य हैं। यहाँ तो तुम देखती हो कि सब देवी-देवता विराज रहे हैं—जिनसे किसी भी प्राणी की अच्छी या बुरी कुछ भी बात छिपी नहीं है। अतएव इनके सामने लज्जा या भय करना निरर्थक है। शेष रहे ये जीव, जो यहाँ इन्साफ़ कराने के लिए उपस्थित हैं। ये भी अपनी पञ्चभूतात्मक देह को छोड़ कर अपने पाप-पुण्यों का फ़ैसला कराने के लिए सूक्ष्म देहों में उपस्थित हैं; अतः इनसे लज्जा या भय करने की कोई आवश्यकता नहीं। इनके भी तो सब पाप-पुण्यों का खुलासा यहाँ होगा ही। अच्छे और बुरे कर्मों का

जो दोष लगाए गए हैं, उनकी निस्बत तुम क्या कहती हो? राधा ने कुछ भी जवाब न दिया। मिट्टी के पुतले की तरह खड़ी रही। धर्मराज ने फिर कहा—राधा, यहाँ पर चुप रहने से काम नहीं चलेगा; और न तुम इन अपराधों से इन्कार कर सकती हो; क्योंकि इस न्यायालय में किसी के ज़िम्मे फ़र्ज़ी अपराध नहीं लगाए जाते कि जिनके खण्डन-मण्डन करने के लिए किसी सुबूत की ज़रूरत हो। यह परमात्मा के घर की अदालत है; और वह सर्व-व्यापक है। संसार के कोने-कोने और घट-घट की कोई भी बात अथवा कामना छिपी नहीं रहती। अतएव इस अदालत के सम्मुख कोई असत्य बात उपस्थित नहीं हो सकती। अस्तु, तुम्हारे ज़िम्मे जो दोष लगाए गए हैं, वे बिलकुल सत्य हैं। अब तुम्हें बचाव के लिए जो कुछ कहना हो, उसके वास्ते यह अवसर दिया जाता है। यदि इस समय तुम कुछ न कहोगी, तो समझा जायगा कि तुम इन सब अपराधों को स्वीकार करती हो; और तुम्हारे लिए यथोचित दण्ड का विधान किया जायगा।

धर्मराज की यह बात सुन कर राधा बहुत डरी और उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। लज्जा से सिर नीचा कर हाथ जोड़ बहुत कातर स्वर से करुणा-भरी आवाज़ में कहने लगी—

महाराज! मैं दीन, अभागी, अबला आपके सामने हूँ। आप धर्मराज हैं, न्याय और करुणा के सागर हैं, मुझ पापिनी पर आप

दया कीजिए। मैंने ये सब अपराध किए हैं; परन्तु भगवन् ! अपनी इच्छा से इनमें से बहुत ही थोड़े किए हैं। अधिकांश अपराध मुझे विवश होकर करने पड़े हैं।

धर्मराज—क्या ? अपराध करने के लिए तुम किसी से विवश की गई थी; और उनका दोष तुम पर लगाया जा रहा है ?

राधा—हाँ, भगवन् ! धृष्टता की क्षमा !

धर्म०—तुम किस तरह विवश की गई—इसका सब वृत्तान्त कहो।

राधा—महाराज, मेरा वृतान्त ऐसा लज्जाजनक और घृणित है कि उसे वर्णन करने का इस भरी अदालत में मुझे साहस नहीं होता।

धर्म०—राधा ! यह कोई लौकिक अदालत नहीं है कि जिसमें किसी प्रकार का भय, शङ्का या लज्जा आदि की जाय। ये सब तो पाञ्चभौतिक देहधारियों के सामने किए जाने योग्य हैं। यहाँ तो तुम देखती हो कि सब देवी-देवता विराज रहे हैं—जिनसे किसी भी प्राणी की अच्छी या बुरी कुछ भी बात छिपी नहीं है। अतएव इनके सामने लज्जा या भय करना निरर्थक है। शेष रहे ये जीव, जो यहाँ इन्साफ़ कराने के लिए उपस्थित हैं। ये भी अपनी पञ्चभूतात्मक देह को छोड़ कर अपने पाप-पुण्यों का फ़ैसला कराने के लिए सूक्ष्म देहों में उपस्थित हैं; अतः इनसे लज्जा या भय करने की कोई आवश्यकता नहीं। इनके भी तो सब पाप-पुण्यों का खुलासा यहाँ होगा ही। अच्छे और बुरे कर्मों

विवेचन सबके सामने ही होना आवश्यक है; ताकि सबको मालूम हो जाय कि वास्तव में अच्छे कर्म कौन से और बुरे कौन से हैं; और यथार्थ में उनका अन्तिम फल कैसा होता है! अतएव तुम निस्सङ्कोच होकर अपना सब वृत्तान्त अच्छी तरह से कहो।

राधा—महाराज! जब देवता लोग घट-घट की जानते हैं, तो फिर मेरे सम्बन्ध की भी भीतरी बातों को जानते ही होंगे। तब मेरे मुँह से पुनः कहलाने की क्या आवश्यकता है?

धर्म०—देखो राधे! इस संसार में असंख्य प्राणी हैं; और उनके कर्म भी असंख्य हैं। प्रत्येक प्राणी के प्रतिक्षण के व्यवहार को देवता कहाँ तक ध्यान में रख कर यहाँ वर्णन करते रहेंगे। अस्तु अपने बचाव के लिए अपने सम्बन्ध के व्यवहारों का वृत्तान्त तुम्हीं को कहना होगा। हाँ, यदि उनमें कोई बात असत्य कहोगी, तो देवताओं से छिपी भी न रहेगी।

राधा—भगवन्! मैंने जब से होश सँभाला, तभी से अपना वृत्तान्त मुझे स्मरण है। उसका वर्णन करती हूँ।

धर्म०—तुमने होश कब से सँभाला?

राधा—दस वर्ष की अवस्था में मेरा विवाह हुआ तब से।

धर्म०—परन्तु तुम्हारे जाति-धर्म महाराज का कहना है कि तुमने कुमारी अवस्था में ही कुकर्म किए।

राधा—(कुछ सोचकर) महाराज! बाल्यावस्था में विवाह होने के थोड़े समय पहले हम लोग कभी-कभी लड़कियाँ और लड़के एकत्र होकर पति-पत्नी का खेल खेला करते थे। लड़के पति

बन जाते थे; और लड़कियाँ एक-एक लड़के की पत्नी ! ये पाप तो मेरे अनजाने हुए थे ।

धर्म०—बालकों के खेल तो सब काल्पनिक होते हैं ?

जाति-धर्म—खेल में जो चीजें मौजूद न हों, उनकी तो कल्पना कर ली जाती है या एक के अभाव में दूसरी प्रतीक से काम लिया जाता है, और जो सामने मौजूद हो, उसको स्वरूप से काम में ले लेते हैं ।

धर्म०—कैसी लज्जा और अन्धेर की बात है । अच्छा राधे ! तो यह खेल केवल तुम्हारी मण्डली ही खेलती थी या और बालक भी खेलते थे ?

राधा—महाराज, वहाँ तो यह रिवाज ही है । प्रायः सब बालक-बालिकाओं में इस खेल का खुले तौर से प्रचार है; और उनके माता-पिता इससे अच्छी तरह परिचित हैं ।

धर्म०—अच्छा, तो अब तुम अपने विवाह के बाद का हाल कहो ।

राधा—महाराज, मेरे विवाह के तीन-चार महीने बाद मेरे माता-पिता मुझे तथा मेरे छोटे भाई-बहिन को लेकर देश से विदा होकर कलकत्ते चले गए । वहाँ चाँसतल्ला स्ट्रीट में—एक बाड़ी में कमरा किराये पर लेकर रहने लगे । हमारे यहाँ छोटू ब्राह्मण रसोइया रहता था, जिसकी आयु लगभग अट्ठारह साल की थी । वह छोटे से बड़ा हमारी नौकरी ही में हुआ था । इसके माता-पिता भी हमारे ही यहाँ नौकरी करते थे, अतः मेरी माता जी इसको

अपने पुत्र की तरह समझती थीं। इसके साथ किसी बात का भेद-भाव न था। मैं इसको अपना बड़ा भाई समझती थी। इस के सिवाय एक ग्वाला (नौकर) चौका-बर्तन आदि के लिए, कलकत्ते में ही रख लिया था। पिता जी दिन में अपने काम-काज के लिए दूकान चले जाते। दो वार भोजन करने आते; और रात को बारह बजे के लगभग सोने आते। कमरे में एक खट-छप्पर (लोहे की खाट) बिछा हुआ था, जो पिता जी तथा माता जी के सोने के लिए था। मैं अपने भाई-बहिनों के साथ नीचे ज़मीन पर सो जाती थी। कमरा बहुत तङ्ग था; अतः हम लोगों के बिछौने खट-छप्पर से सटे हुए ही होते थे। पिता जी सोने आते, उससे पहले हम भाई-बहिनों को नींद आ जाती और सबेरे उनके उठने के बाद हम लोग जगते। प्रायः डेढ़ साल तक कोई उल्लेख करने योग्य बात नहीं हुई।

धर्म०—लड़के-लड़कियों का "पति-पत्नी" का खेल वहाँ भी होता था या नहीं?

राधा—वहाँ जाने के बाद, वहाँ के लड़के-लड़कियों से पहचान होने पर एक-दो बार खेलने में भी सम्मिलित हुई; परन्तु स्थानाभाव के कारण वहाँ यह खेल खेलने का अवसर कम होता था, तिस पर मेरी माता ने मुझे मना कर दिया था कि विवाह के बाद यह खेल खेलना उचित नहीं। जब मैं बारह वर्ष के क़रीब पहुँची, तो मेरे चित्त में पुरुष-स्त्री के पारस्परिक व्यवहारों की तरफ़ ध्यान देने की स्फुर्ना उत्पन्न हुई; और बाड़ी में रहने वाले अनेक

स्त्री-पुरुषों के व्यवहारों को बड़े कौतूहल और चाव की दृष्टि से देखने लगी। मेरी इस दृष्टि से मेरे माता-पिता भी बचे हुए न थे। हमारा रसोइया छोटू, जो कुँवारा था, मेरे इस परिवर्तन को जान गया और लोगों का तमाशा देखने में मेरा साथ देने लगा। इन तमाशों को देखते हुए कभी-कभी वह मेरे साथ भी छेड़-छाड़ कर लिया करता था, जो मुझे बहुत ही नागवार गुज़रा करता था; और उसके लिए मैं उससे नाराज़ भी होती थी।

जाति धर्म—क्या तुम उस छेड़-छाड़ को पाप समझ कर नाराज़ होती थी ?

राधा—नहीं, मैं इसको पाप-पुण्य कुछ नहीं समझती थी; क्योंकि उस समाज में इस तरह की छेड़-छाड़ युवा-बालिकाओं के साथ युवक प्रायः करते ही रहते हैं। इसको बदतमीज़ी के सिवाय विशेष पाप नहीं समझा जाता। वहाँ व्यभिचार के आठ भेदों को कोई नहीं जानता। मुझे तो प्रौढ़ा होने पर तथा शास्त्र सुनने पर इन आठ भेदों का पता लगा। मुझे यह छेड़-छाड़ सहन नहीं होती थी, इसलिए मैं उससे नाराज़ होती थी; परन्तु वह नाराज़ी थोड़े ही समय के लिए रहती थी; क्योंकि एक तो मेरा उसके साथ बचपन से ही स्नेह था, दूसरे मुझे उसकी सदा ग़रज़ रहा करती थी।

धर्म०—ग़रज़ किस बात की ?

राधा—मुझे खाने के लिए दाल-रोटी शाक आदि घर की रसोई में होने वाली चीज़ें अच्छी नहीं लगती थीं; और बाज़ार

की मिठाई, नमकीन, खटाई, अचार आदि छोटू के हाथ मँगा कर माता-पिता से छिप कर खाती थी। माता-पिता के पैसे चुरा लिया करती थी; और छोटू की सहायता से इलजाम आने-जाने वालों पर या ग्वाले अथवा छोटे भाई पर लगा देती थी।

धर्म०—तुम पैसा चुराती क्यों थी? क्या तुम्हारे माता-पिता तुमको खर्च के लिए कुछ देते नहीं थे?

राधा—महाराज! लड़कों को पैसे मिलते हैं, लड़कियों को कौन देता है? वे तो निकम्मी आफ़त समझी जाती हैं।

मुझे घूमने-फिरने का भी बहुत शौक़ था। जब माता मुझे ननिहाल की बाड़ी में या और किसी रिश्तेदार के यहाँ भेजतीं, तो छोटू के साथ भेजतीं। फिर वहाँ से लौटते समय उसके साथ चक्कर देकर बाजार की सैर कर आती; और माता को कुछ भी ख़बर न मिलती। रास्ते में खाने-पीने आदि की चीजें ख़रीदती जिसको हम दोनों खाते-पीते। इन कारणों से मुझे उसकी ग़रज़ रहती थी।

धर्म०—क्या उसको किसी के देखने का भय नहीं लगता था?

राधा—छोटू मेरे माता-पिता की दृष्टि से बचने की तो पूरी सावधानी रखता था, दूसरों का उसको डर न था; क्योंकि सभी नौकर-चाकर इस तरह के काम किया ही करते थे। उसकी छेड़-छाड़ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती थी। जब मुझे वह एकान्त में पाता, तो छेड़-छाड़ किए बिना न रहता। एक दिन जब मेरी माता किसी रिश्तेदार से मिलने गईं, तो हम बालकों को घर में छोटू के पास

छोड़ गई। उस दिन पहले तो बाजार से कलेवा, फल-फलहा
पान-सुपारी, खटाई आदि मँगा कर हम सब ने खाया। फिर छो
ने मेरे साथ छेड़-छाड़ शुरू की। उसने मुझे इतना सताया
मैं तङ्ग होकर रोने लगी; और उसे गालियाँ देने लगी। मेरे सा
मेरे भाई-बहिन भी रोने लगे; तब यह बन्द हुआ; परन्तु फिर
मैंने अपनी माता से कुछ भी न कहा; और भाई-बहिन को भी म
कर दिया। अगर मैं अपनी माँ को कुछ कह भी देती, तो व
उलटे मुझे ही डाँटतीं; क्योंकि उस पर उनका बहुत विश्वास था
और वह काम भी इतना करता था कि दूसरा आदमी ऐसा
मिलता। बात यह थी कि मैं अपनी ही बुरी आदतों, चटोरप
आदि से लाचार थी, अतएव उससे दबना पड़ता था। दो-तीन दि
मैं उससे नहीं बोली, फिर झख मार कर मुझे ही उससे बोलना पड़ा

अब रात को बारह बजे जब मेरे पिता जी सोने आते, तब
स्वतः हा नींद से जगने लगी; परन्तु जागती हुई भी बनावटी नीं
का ढोंग करके पड़ी रहती; और अपने माता-पिता की बा
सुनती रहती। मेरे पिता की आदत थी कि पहले मेरी माँ से पूछ
लेते कि बालक सब सोए हुए हैं न ? जब मेरी माँ उत्तर दे देतं
कि ये तो सब गहरी नींद में हैं, तब वे और बातें छेड़ते। भल
उन्हें क्या मालूम था कि मैं नींद का बहाना कर अन्दर से जागती
हूँ; परन्तु यह ढोंग बहुत दिन तक कैसे चल सकता था ? जागते
आदमी से कुछ न कुछ ऐसी हलचल हो ही जाती है कि जिससे
दूसरों को मालूम हो जाय। और नहीं तो खर्राटे तो अवश्य

बन्द हो जाते हैं। एक दिन मेरे पिता को शक हो गया कि मैं जागती हूँ। उन्होंने माँ से कहा—बाई जागती है। माँ ने कहा—भला वह काहे को जागने लगी, वह तो सन्ध्या को सोती और सवेरा होते आँख खोलती है। यह दूसरों की तरह चालाक नहीं है। पिता जी ने कहा—पुकारो तो सही। माँ ने पुकारा—बाई, ये बाई, जागती है क्या ? मैंने कुछ भी उत्तर न दिया। माँ ने कह दिया—यह बेचारी तो भर नींद में है। तुम नाहक वहम करते हो। उस समय तो बात ख़तम हो गई; परन्तु खटका उनके दिल में पैदा हो गया। अतएव उनके चित्त में सदा सङ्कोच बना रहता था; और मैं भी इस तरह ढोंग बना कर माता-पिता के व्यवहारों को छिपे-छिपे देखना उचित नहीं समझती थी; परन्तु क्या किया जाय, दूसरी कोई जगह न थी, जहाँ मैं सोती; न कोई मेरे पास सोने वाली थी।

धर्म०—क्या तुम्हारे पिता इस योग्य न थे कि दूसरा कमरा किराये पर ले लेते; और एक स्त्री तुम्हारे पास सोने को रख लेते ?

राधा—ये क्यों नहीं, मेरे पिता धनाढ्य थे और अनेक क़मरे तथा नौकर-नौकरानियाँ रख कर आराम से रह सकते थे; परन्तु इस समाज में कुछ ऐसी प्रथा सी पड़ गई है कि कष्ट सह कर भी एक ही कमरे में गुज़ारा करना। दूसरे शादी-ग़मी आदि के कामों में चाहे जितना खर्च कर दें और व्यापार-फाटके आदि में चाहे जितना नुक़सान दे दें; परन्तु अपने आराम के लिए और अपने बालकों की रक्षा के लिए धन खर्च करना वे लोग फ़ुज़ूल-खर्ची समझते हैं।

धर्म०—धन्य है, ऐसी समझ को।

राधा—उस वाड़ी के चार मञ्जिल थी। सबसे ऊपर के छत के दो तरफ़ रसोइयों की क़तारें थीं। शेष खुली थी। इन रसोई-घरों में एक रसोई हम लोगों ने किराए पर ली थी। हमारा कमरा वाड़ी की दूसरे मञ्जिल में था। गर्मी के दिनों में कई लोग पहिली रात में छत पर सोने चले जाते थे, और कोई-कोई तो रात भर छत पर ही सोते थे। मेरे कमरे के पड़ोस में एक वैश्य रहता था, जिसकी एक पन्द्रह वर्ष की विधवा बहिन थी। रात को वह वैश्य और उसकी स्त्री कमरे में सोते और वह विधवा बहिन 'गोमती' एक ब्राह्मणी के पास छत पर सोती थी। मैंने विचार किया कि मैं भी छत पर सोने लगूँ तो क्या हर्ज है; परन्तु मेरे पास सोने वाली कोई स्त्री नहीं है, इसलिए मेरे माता-पिता मुझे अकेली छत पर कैसे सोने देंगे। फिर मैंने विचार किया कि विधवा और ब्राह्मणी के पास मैं भी सोती रहूँगी; और छत पर और भी बहुत नर-नारी सोते हैं, सो कोई जोखिम तो है नहीं, परन्तु मेरे कहने से मेरे माता-पिता शायद न मानें, इसलिए उस विधवा और ब्राह्मणी से मैं ने सहायता ली। वे तो चाहती ही थीं कि मेरी जैसी कोई सङ्गिनी मिले। अस्तु, ब्राह्मणी ने मेरी माँ से कहा—जवान बेटी को पास में सुला कर तुम स्त्री-पुरुष को एक साथ सोने में शर्म नहीं आती? मेरी माँ ने कहा—क्या करें, बाई को किसके भरोसे और कहाँ सुलावें? ब्राह्मणी ने कहा—गोमती मेरे पास सोती है, क्या उसे

एकाएक बन्द हो गई और गोमती उस कमरे के अन्दर चली गई। कमरे का दरवाजा बन्द हो गया; और ब्राह्मणी लौट कर ऊपर आने लगी। मैं भी झट अपने बिस्तर पर आकर सो गई। ब्राह्मणी वापस आकर गोमती के बिस्तर पर लम्बा तकिया रख कर उस पर चद्दर ढाँकने लगी, ताकि कोई देखे तो गोमती का बिस्तर खाली न दीखे। अब मुझसे रहा न गया, मैंने झट करवट बदल कर ब्राह्मणी से पूछा कि गोमती कहाँ गई। ब्राह्मणी—राधा, आज तुम इस समय कैसे जग गईं ?

मैं—तुम्हारी हलचल सुन कर आँखें खुल गईं। फिर तुम दोनों को नीचे जाते देख कर मैं अकेली डरने लगी।

ब्राह्मणी—तो क्या तुम उस समय जग गई थीं, जब हम लोग नीचे गईं ?

मैं—हाँ।

ब्राह्मणी—तब तो तुम को मालूम ही होगा कि गोमती कहाँ गई।

मैं—यह तो मैं ने देखा कि वह केशवप्रसाद जी के कमरे में गई; परन्तु इस समय वह वहाँ क्यों गई; यही मेरे पूछने का प्रयोजन है। केशवप्रसाद जी की बहू तो देश गई हुई हैं।

ब्राह्मणी—जरा आहिस्ते से बातें करो। ठण्ढी रात में आवाज दूर तक सुनाई देती है। देखो राधा, तुम अभी तक नादान हो। संसार से बिलकुल अनजान हो। देखो, यह गोमती बाल-विधवा है। विवाह होते ही ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही इसका पति

मर गया। वेचारी ने उसका मुँह भी न देखा। सिर्फ़ "पाणिग्रहण" का पाप लग गया। अव इसकी जवानी आई है। यौवन अङ्गों से फटा पड़ता है। इसका अद्भुत रूप-रङ्ग दुश्मन हो रहा है। अनेक दुष्ट इसको विगाड़ने के लिए पीछे लगे हुए हैं। वाड़ी में सव लोग छेड़-छाड़ करते रहते हैं। गङ्गा-स्नान को जाती है, तो बदमाश लोग इसका पीछा करते हैं; और जहाँ जाती है, वहीं लोग इसे घूरते हैं। नाते-रिश्ते वाले इसको विगाड़ने के लिए आतुर हैं। गुरु-पुरोहित, नौकर-चाकर इसको खाना चाहते हैं। ऐसी दशा में इसको किसी गड्ढे में पड़ने से वचाने के ख्याल से मैंने केशववावू से इसका सम्वन्ध करा दिया है। वह वहुत धनाढ्य, अमीर और शौक़ीन हैं। गोमती के योग्य हैं। इनसे सम्वन्ध करके यह ख़ूव आनन्द भोगेगी। किसी वात की इसको कमी न रहेगी। केशववावू वड़े भलेमानस हैं। वे गोमती को कभी धोखा न देगें। इनमें यह विशेषता है कि यह अपनी स्त्री के आधीन नहीं हैं। इसलिए स्त्री की तरफ़ की वाधा भी नहीं लग सकती। वे गोमती को चाहते भी वहुत हैं। देखो राधा, इस वेचारी के माता-पिता तो हैं नहीं। सिर्फ़ भाई है। सो भाई तो भावज के होते हैं। सास-ससुर भी नहीं हैं। सारांश, यह कि इसके लिए संसार में कोई सहारा नहीं है। इसलिए मैंने इसके लिए यह सहारा कर दिया है; ताकि वह किसी के मुँह की तरफ़ न देखे। जन्म भर चैन से रहे। राधे, अवस्था पशुओं को भी आती है। दुनिया में ऐसा कौन पुरुष या स्त्री है, जो इस अवस्था के वेग को सह कर वचा रह जाय। ऋषि-मुनि भी कामदेव का वेग न सह

उमड़ती हुई दीखने लगी। गोमती तो सदा से कुछ पहले ही चली गई। थोड़ी देर में घटा हमारे सिर पर छागई और साथ में हवा तेज चलने लगी बूँदें शुरू हुईं; और हवा ने तूफ़ान-रूप धारण किया। हाथ को हाथ दीखना बन्द हो गया। छत पर सोना असम्भव हो गया। अन्दर घुसने के लिए ऊपर रसोई के सिवाय कुछ न था। ब्राह्मणी गोमती के भाई की रसोई में घुस गई। वहाँ अधिक स्थान न था। गोमती के लौटने पर उन दोनों के लिए बहुत तङ्ग जगह थी। मैं अपनी रसोई की तरफ भगी। वहाँ छोटू सोया हुआ था। मैंने उसको जगाया और माँ के कमरे में पहुँचा देने को कहा। उसने कहा—अभी वहाँ कहाँ जाओगी, वे अभी ही सोए हैं, उनको जगाने के लिए सारी बाड़ी को जगाना ठीक नहीं। आती हुई नींद से जगाना उनको बड़ा नागवार गुज़रेगा और वे बहुत ख़फ़ा होंगे। उनके आनन्द में विघ्न करना उचित नहीं। मैंने कहा—वे ख़फ़ा होंगे, तो मुझ पर होंगे। तू मेरे साथ चल कर मुझे पहुँचा दे; अकेली जाने में मुझे डर लगता है। छोटू—तुम्हें कहीं भी गत नहीं है; तू जा, मैं तो नही चल सकता। किसी के सुख में विघ्न डाल कर मैं पाप न लूँगा। क्या यहाँ सोने के लिए रसोई नहीं है?

मुझे उस महा भयङ्कर रात में नीचे जाने में अत्यन्त भय होता था। भूत-प्रेतों की बातें बहुत सुनी थी, इसलिए हिम्मत न पड़ी। उस तरफ़ तूफ़ान और वर्षा बढ़ रही थी। जब बहुत ख़ुशामद करने पर भी छोटू नीचे चलने को राज़ी न हुआ, तो मैं लाचार होकर

रसोई के अन्दर घुसी। छोटू भी रसोई के अन्दर हो गया। दो आदमियों के सोने के लिए जगह बहुत तङ्ग थी; इसलिए मैं बैठ गई; परन्तु तूफ़ान का इतना जोर था कि रसोई के केवाड़ खुले न रह सकते थे। हवा के साथ पानी भी अन्दर आता था। रोशनी ठहर नहीं सकती थी। तब अवसर पाकर छोटू ने केवाड़ बन्द कर लिए। अन्दर से सँकली लगा कर केवाड़ के पीछे बैठ गया और मेरे साथ छेड़-छाड़ करने लगा। मेरे लिए कोई भागने का मौक़ा न था और न कोई बचाव का रास्ता। मैंने उससे बहुत लाचारी, आरजू-मिन्नत, गरज-खुशामद की, पाँव पकड़े, परन्तु उसे कुछ भी दया न आई। तब मैंने उसके साथ अपने भाई-बहन के रिश्ते की याद दिला कर शपथ दी। उसका भी उस पर कुछ असर न पड़ा। फिर मैंने अपनी माँ से कह कर उसको निकलवा देने की धमकी दी, उसकी भी उसने कुछ परवाह न की; बल्कि उसकी जबरदस्ती बढ़ती ही गई। मैं लाचार होकर रोने लगी। उसको गालियाँ देती हुई छटपटाने लगी; परन्तु उस दुष्ट के दिल पर कुछ भी असर न हुआ; और उसने मेरे साथ बलात्कार किया।

जातिधर्म—तुमने इतनी आपत्ति की, इसका कारण पाप का भय था या और कुछ?

राधा—यद्यपि यह बात मैं साधारणतया सुनती थी कि कुकर्म से बहुत पाप लगता है। इसलिए इसका मुझे कुछ कुछ भय था; परन्तु उस समय मैं परवश थी, मेरा विश्वास था कि यह पाप मेरे सिर पर नहीं लग सकता। मुझे ज्यादा भय पुरुष के सङ्ग ही का था।

धर्म०—तुमने उस समय ज़ोर से चिल्ला कर पड़ोसियों को सूचना क्यों न दी ?

राधा०—अपनी इज्ज़त जाने के भय से दूसरों को जगाने का मेरा साहस न हुआ। अगर मैं चिल्लाती, तो भी उस तूफ़ान की आवाज़ में कोई न सुनता; और वह दुष्ट मुझ पर और अधिक अत्याचार करता।

इस दुर्घटना से मेरे दिल में घोर दुख हुआ। छोटू की दुष्टता, मेरी असहाय अवस्था और मेरे माता-पिता की मेरी तरफ़ से इस तरह की बेपरवाही को विचार कर मैं सिसक-सिसक कर रोती रही। कभी अपने दुर्भाग्य को, कभी माता-पिता को, कभी उस दुष्ट छोटू को मन ही मन गालियाँ देती—"मेरे कैसे खोटे नसीब हैं कि सोने के लिए स्थान नहीं, मेरा कोई सङ्गी-साथी नहीं, मानो संसार मेरे लिए सूना पड़ा है; और दुष्टों के अत्याचार से मुझे बचाने वाला दुनिया में कोई नहीं है।" इसी तरह रोते-कलपते शेष रात बीत गई।

सवेरा होने पर सदा की तरह उठ कर सब काम किए। अपनी इज्ज़त के भय से तथा लज्जा के कारण रात की दुर्घटना को बहुत ही कोशिश करके छिपा ली। मुँह से भाफ़ तक न निकाली। यद्यपि मैंने यह बात छिपा ली; परन्तु उस दुष्ट ने थोड़े दिनों बाद अपने मित्रों से कह दी; और अपनी नौकरी छूटने पर तो ख़ूब ही प्रसिद्ध कर दी।

मेरी आँखों की सूजन देख कर माँ ने पूछा कि आँखों को

क्या हुआ ? तब मैंने शिकायत की तौर पर कह दिया कि रात को तूफ़ान से मैं बहुत डरी, रात भर नींद नहीं आई और डर से रोती रही। तुमने तो मेरी सुध भी नहीं ली।

माँ—हमको तो तूफ़ान का पता ही नहीं लगा। नीचे के मञ्जिल में कुछ भी मालूम नहीं पड़ता; परन्तु तुम्हीं नीचे क्यों नहीं आ गई ?

मैं—उस भयङ्कर अँधेरी रात में नीचे आते मुझे इतना डर मालूम हुआ कि मैं हिल भी न सकी। कोई भूत खा जाय तब !

माँ—तो छोटू तो वहीं था, उसी को साथ ले आती।

मैं—(क्रोध भरी लज्जा से सिर नीचा करके) वह मेरे कहे से साथ आने वाला था ?

बस, इससे अधिक मैं कुछ न बोल सकी, गला भर आया, वहाँ से उठ कर चली गई। माँ समझ गई कि रात को तूफ़ान से यह बहुत डरी, इसी से दुख उमड़ आया है।

उस दिन मैं भोजन करने ऊपर न गई। क्रोध के कारण मुझे भोजन की कुछ इच्छा ही न हुई। माँ ने बहुत कुछ कहा-सुना; परन्तु मैंने भोजन नहीं किया। शाम को जब माँ ने बहुत तङ्ग किया, तब बाज़ार से मँगा, थोड़ा सा खाकर पीछा छुड़ाया। माँ ने मेरे पिता को इन बातों की कुछ भी ख़बर न पड़ने दी।

रात को माँ ने मुझे अपने पास सुलाने के लिए बहुत खींचा-तानी की; मगर मैंने उसकी कुछ भी न सुनी। सदा की तरह गोमती और ब्राह्मणी के साथ सो रही ; परन्तु शोक के कारण पहले की

तरह मैं उनसे बातें न कर सकी। गोमती के पूछने पर मैंने शिर-दर्द की ओट लेकर पीछा छुड़ाया। वास्तव में पहली रात की दुर्घटना के कारण मेरा शरीर बहुत ही अस्वस्थ हो रहा था। केवल शिर में ही नहीं, सारे शरीर में पीड़ा हो रही थी। अतः मुझे सोते ही नींद आ गई और सुबह होने तक बराबर सोती रही। कुशल हुई कि उस रात को वर्षा-तूफ़ान नहीं हुआ। अगर होता, तो मैं चद्दर ओढ़ कर छत पर ही पड़ी रहती। यह मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया था।

सबेरे उठी, तो मेरा क्रोध शान्त हो गया था। मैं सोचने लगी कि इस तरह की विपत्तियाँ केवल मुझ पर ही नहीं आई हैं; इस समाज में मेरी स्थिति वाली प्रायः समस्त बालिकाओं को रूपान्तर से इस तरह के कष्ट सहने ही पड़ते होंगे; क्योंकि व्यवहार तो सब समाज का एक ही तरह का है। उस भयङ्कर रात को न मालूम कितनी बालिकाओं पर क्या-क्या मुसीबतें आई होंगी। जो होशियार होंगी, ख़ुशी से सहन की होंगी, और जो मेरी तरह डरपोक होंगी, वे घबरा कर दुखी हुई होंगी। गोमती का यदि केशवबाबू से सम्बन्ध न होता, तो न मालूम उस पर क्या गुज़रती। हमारे पड़ोस की बाड़ी में भी मेरी अवस्था की कई सुहागिन तथा विधवा बालिकाएँ रहती थीं। क्या वे सब मुझसे विशेष सुरक्षित हैं? नहीं, उन पर भी आफ़तें आती ही होंगी। मेरे माता-पिता दुष्ट थोड़े ही हैं। जो बात सब समाज में होती है, उससे उन्होंने विशेषता क्या की, इसमें इनका क्या दोष है। इस तरह विचार

करते-करते माता-पिता का प्रेम मेरे हृदय में भर आया; और दुख तथा क्रोध हलका हो गया। सवेरे भोजन करने को माँ ने कहा, तब ऊपर जाकर खा आई; परन्तु उस दुष्ट की तरफ़ नजर उठा कर नहीं देखा। नीची गर्दन किए झट-पट कुछ खा-पीकर नीचे भाग आई।

उस रात से मैं फिर अपने माता-पिता के पास सोने लगी; परन्तु मेरा चित्त सदा उदास रहने लगा। मेरी उदासी का कारण न मालूम मेरी माँ ने क्या समझा; परन्तु इतना अवश्य मालूम पड़ा कि उसने मेरे पिता से मुझे देश ले जाकर मेरी ससुराल भेजने के लिए कह दिया। हमारे यहाँ यह रिवाज था कि जब तक माता-पिता और सास-ससुर जीवित रहें, तब तक शाम को ससुराल जाना और दिन में पीहर चले आना। मेरा विवाह देश ही में हुआ था; और विवाह के बाद मेरा पति काम सीखने के लिए बम्बई चला गया, जहाँ मेरे ससुर की दूकान थी; और मैं अपने माता-पिता के साथ कलकत्ते चली आई थी। जब माता ने पिता से मुझे ससुराल भेजने को कहा, तो उसका मतलब यही था कि वे मुझे लेकर देश आते और मेरा पति बम्बई से वहाँ बुला लिया जाता। निदान, पिता जी ने मेरे पति को बम्बई से देश बुलाने के लिए मेरे ससुर को पत्र दिया, जो उन्होंने स्वीकार किया और पति यथासमय बम्बई से देश आ गया; परन्तु मुझे देश ले जाने के लिए मेरे पिता को कार्यवश अवकाश न मिला; यद्यपि मेरी माता ने बहुत ही कहा-सुनी की; माता भी उन्हें छोड़ कर मेरे साथ देश आना नहीं चाहती थीं, क्योंकि एक तो पिता के स्वास्थ्य के

लिए खान-पान की सुव्यवस्था माता के बिना नहीं हो सकती थी, दूसरे देश में मेरी सौतेली दादी और दादा रहते थे, उनसे माँ की पटती न थी। उस समय सब कुटुम्ब शामिल ही था। अस्तु, लाचार होकर उन्होंने केवल मुझे ही भेजना निश्चित किया; यद्यपि मैं इस बात से सख्त नाराज़ थी। देश में मेरी नानी और मौसी मौजूद थीं, अतएव दिन में उनके पास रहने की व्यवस्था की गई। मुझे देश पहुँचाने के लिए छोटू को साथ भेजने का माता-पिता ने विचार किया। यह सुन कर मैं बहुत घबड़ाई और जाने ही से इन्कार कर दिया। माता के बहुत दबाने पर मैंने साफ़ कह दिया कि छोटू के साथ मैं न जाऊँगी; क्योंकि सफ़र के काम में वह होशियार नहीं है और न मुझे उस पर भरोसा ही है। जब माता ने यह बात पिता जी से कही, तो एक बार वे ख़ूब बिगड़े; परन्तु फिर उनके समझाने पर दूकान के एक तगादगीर रामलाल को साथ भेजना निश्चित किया। गुरुवार की दस बजे की गाड़ी से थर्ड क्लास का टिकिट लेकर हम लोग रवाना हुए। एक ब्राह्मण-युवती को उसके पति ने देश भेजने के लिए हमारे साथ कर दिया। अतएव हम दो स्त्रियाँ रामलाल के साथ रवाना हुईं। बोझ हमारे साथ टिकिटों से अधिक था; परन्तु रेलवे बाबू को कुछ देकर बिना तौलाए ही रख दिया गया। मैंने अपना आसन प्लेट फ़ॉर्म की ओर खिड़की के पास जमाया; और जब स्टेशन पर गाड़ी खड़ी होती, तो मैं खिड़की के बाहर गर्दन निकाल कर तमाशा देखती और लोग मेरे रूप-रङ्ग, वेश और शृङ्गार को देख कर मेरी

खिड़की के पास जमा होते और घूर-घूर कर मुझे देखने लगते। तीन-चार घण्टे चलने के बाद एक स्टेशन पर तीन मुसलमान हमारे कम्पार्टमेण्ट में आ बैठे; और हम लोगों को टकाटकी लगा कर देखने लगे। हम दोनों बारीक मलमल की धोतियाँ पहने हुए थीं और उसके ऊपर मलमल के महीन "अचरवां" ओढ़ रक्खे थे। रेशमी बारीक फुलवर गाछ की अँगिया पहिने थीं तथा सोने और मोतियों के गहने पहने हुए थीं। मुसलमानों को आए एक घण्टा भी व्यतीत न हुआ था कि टिकिट जाँचने वाला हमारे कमरे में आया, और हमारा टिकिट देखने के बाद असबाब की तरफ़ देखा, तो उसे शक हुआ और हाथ के काँटे से उसे तौलने लगा। जब टिकिटों से सामान ज्यादा हुआ, तो रामलाल से सब असबाब का किराया माँगा और रामलाल किराया देने में उससे हुज्जत करने लगा। जब गाड़ी स्टेशन पर ठहरी, तो टिकिट जाँचने वाले ने रामलाल को नीचे उतारा, जिससे वह बहुत घबराया और हम दोनों स्त्रियाँ डर के मारे काँपने लगीं। सिवाय रोने के और कर ही क्या सकती थीं? यह मामला देख कर मुसलमान भी हँसने और खुश होने लगे। रामलाल निरा भोंदू था। सफ़र का काम उसको बहुत ही कम पड़ा था। बात करने की तमीज़ तक न थी, तो भला वह रेल के बाबुओं से क्या सवाल-जवाब कर सकता था? जब गाड़ी छूटने की घण्टी बजी, तो पाँच-सात रुपये बाबू को देकर पीछा छुड़ाया; और गाड़ी चलने के ऐन टाइम पर कमरे में आ गया। अतएव हम दोनों के दिल में शान्ति हुई। मुसलमानों को रामलाल

के भोंदूपन की ख़ातिरी हो गई। अब वे हमारे साथ ख़ूब मस्ख़री-ठट्ठे करने लगे। इश्क़ की अश्लील ग़ज़लें गाने लगे; और हमको सब्ज़ परी और नील परी कह कर पुकारने लगे। उन उद्दण्ड लोगों के सामने बेचारे रामलाल को बोलने की हिम्मत कहाँ? हम तीनों चुपचाप मुँह फेर कर बैठ गए और उनको मन-माना बकने दिया। शाम हो गई। हमारी छाती धड़कने लगी कि न मालूम इन दुष्टों के साथ रात कैसे गुज़रेगी। शराब की बोतलें उनके पास थीं, जिन्हें वे पी रहे थे और अखाद्य चीज़ें खा रहे थे, जिससे हम दोनों का जी घबरा गया और क़ै होने लगीं। यह देख उनका मज़ाक़ और भी बढ़ने लगा। इस समय की हम लोगों की घबराहट का अनुभव हमीं को है या है उनको, जो हमारी जैसी स्थिति में पड़ी होंगी। वे दुष्ट हम दोनों से सट कर बैठने लगे, तब हम दोनों एक कोने में बैठीं और रामलाल को अपनी दूसरी तरफ़ बैठाया। फिर वे लोग हमारे सामने वाली पटरी पर बैठ गए और छेड़-छाड़ करने लगे। उस समय हमारे धर्म और जीवन की रक्षा के लिए सिवाय उस ईश्वर के कोई दूसरा न था, जिसने द्रौपदी की इज्ज़त दुष्ट दुःशासन के हाथ से बचाई थी। इसी तरह की आपत्तियाँ झेलने के कुछ काल पीछे गाड़ी स्टेशन पर ठहरी और एक भला आदमी स्त्री को साथ लिए हमारे कमरे में आ घुसा। हमने समझा कि इतने दुष्ट तो थे ही, यह एक और आ पड़ा; परन्तु हमारा भय ग़लत था, वह नवागत व्यक्ति बहुत ही भलामानस कानपुर का रहने वाला था। अङ्गरेज़ी

जानता था; और बहुत होशियार था। जब गाड़ी स्टेशन से चली और मुसलमान लोगों ने फिर अपनी उद्दण्डता शुरू की, तो उसने उन्हें डाँटा और हम लोगों को घबराई हुई देख कर ढाढ़स दिया। उसने कहा—मैं तुम लोगों की रक्षा करूँगा, डरो मत। इस भलेमानस की बातों ने हमारे सूखे हुए प्राणों को कुछ हरा किया और मुसलमान भी कुछ ठण्ढे हुए। वे लोग आपस में कहने लगे—यह कम्बख़्त कहाँ से आ गया। रङ्ग में भङ्ग डाल दिया। परन्तु इन दुष्टों की बातों की उस सज्जन ने कुछ भी पर्वाह न की; और हमारी रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गया। जब गाड़ी दूसरे स्टेशन पर पहुँची, तब मुसलमानों ने जाल रच कर पुलिस को इत्तला दी कि यह 'रामलाल' इन स्त्रियों (हम) को कहीं से उड़ा कर ले जा रहा है। इस पर पुलिस वाले हमारे कमरे में आ घुसे; और हमारा पहिनावा देखने से उनको भी शक हो गया कि मुसलमानों की बात सच है। वे हम लोगों का पता-ठिकाना और सफ़र करने का कारण आदि पूछने लगे। हम तीनों इतने घबराए कि कुछ जवाब न दे सके। इस पर वे हमें गाड़ी से उतरने को कहने लगे। हम दोनों स्त्रियाँ फूट-फूट कर रोने लगीं; परन्तु इस पर भी मुसलमानों तथा पुलिस वालों को ज़रा भी दया न आई; परन्तु कानपुरी सज्जन से यह अत्याचार देखा न गया। उसने तुरन्त पुलिस वालों से हमारे लिए बहस करनी शुरू कर दी; और पुलीस को अच्छी तरह समझा दिया कि हम लोग भले घर की स्त्रियाँ हैं और एक भले आदमी के साथ सफ़र कर रही हैं; अतः पुलिस

को विना प्रयोजन हमारे साथ ज़्यादती करने का कोई अधिकार नहीं है। इस तरह वहुत मगज़-पच्ची करने के बाद हमारी तरफ़ से उन्होंने स्वयं अपने ऊपर ज़िम्मेवारी लेकर पुलिस से हमारा पीछा छुड़ाया। उनके प्रताप से हमारी रात अच्छी तरह बीत गई; और सवेरे जब गाड़ी 'मुग़लसराय' पहुँची तो हम लोग नहाने-धोने की फ़िक्र करने लगे; क्योंकि नहाए विना हम जल भी नहीं पी सकती थीं। पानी-पाँडे को बुला कर हम दोनों प्लेट-फ़ॉर्म पर ही नहाईं। महीन कपड़े पानी से भीग जाने पर नहीं के वरावर हो जाते हैं; अतएव स्टेशन के लोग और ख़ास कर हमारे कमरे वाले मुसलमान, हमारे इर्द-गिर्द खड़े हो गए और हम को देख-देख कर हँसने और ठट्ठा करने लगे। अनेक तरह की निर्लज्जता की बातें हमें सुना-सुना कर वकने लगे; परन्तु हमने उनकी कुछ भी पर्वाह न की। प्लेट-फ़ॉर्म पर ही धोती पहनी और भीगी धोतियों को निचोड़ कर कमरे में आ गईं। रामलाल नहाने के लिए नल पर गया हुआ था। वहाँ पर मुसाफ़िरों की इतनी भीड़ थी कि उसको नहाने का नम्बर ही न मिला; और वहुत देर तक वहाँ खड़ा रहा। गाड़ी चलने का टाइम हो गया, तब हम लोगों की उत्कण्ठा वढ़ी; पर हम कर ही क्या सकती थीं। नल पर जाकर उसको ले आने का हममें साहस न था। इञ्जन ने सीटी दी और गाड़ी चल पड़ी। रामलाल वहीं रह गया। हम लोग स्टेशन की तरफ़ झाँकती और हाथ मलती रह गईं। अब हमारा एकमात्र आसरा वे अपरिचित कानपुरी

सज्जन ही रह गए। हमारी असहाय अवस्था पर उन्हें तरस आता था। उन्होंने हमसे पूछा—तुम लोगों का दुनिया में कोई वारिस भी है या अकेली ही हो? हमने इसका कुछ भी जवाब न दिया। तब उन्होंने पूछा कि तुम कहाँ से आती हो और कहाँ जाओगी? मैं ने कहा—कलकत्ते से अपने देश को जा रही हूँ। उन्होंने पूछा—कलकत्ते में तुम्हारे कौन हैं? मैं ने कहा—मेरे पिता हैं और मेरे साथ वाली का पति है। उसने कहा—क्या तुमको घर से निकाल दिया है? मैं ने उत्तर दिया—नहीं, उन्होंने इस आदमी के साथ हमें देश भेजा है। उन सज्जन ने अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए कहा—बलिहारी है तुम्हारे घर वालों की बुद्धि की, जिन्होंने तुम जैसी सुकुमार युवतियों को ऐसे वस्त्राभूषण पहना-कर, इतने लम्बे सफ़र के लिए लावारिस माल की तरह, एक निरे भोंदू के साथ भेजते कुछ भी विचार नहीं किया। ऐसे लोग न मालूम किस तरह बड़े-बड़े काम-धन्धे करते हैं! जिनको अपनी बहू-बेटियों की इज्जत और हिफ़ाज़त का ज़रा भी ख़याल नहीं, वे लोग भी मनुष्यों की गिनती में आते हैं—यही अचम्भा है। अगर संयोग से मैं इस कमरे में न आता, तो न मालूम रात को तुम लोगों की क्या दशा होती? पुलीस तुम्हारे साथ क्या सलूक करती? और तुम्हारे आदमी के छूट जाने पर तुम्हारा ठिकाना कहाँ लगता! न मालूम तुम किस स्टेशन पर उतार ली जातीं; और तुम्हारे ग़ायब हो जाने से घर वाले दुनिया के सामने मुँह कैसे दिखलाते—वे ही जानें; परन्तु हमारा तुम्हारा साथ तो

सिर्फ़ कानपुर तक ही है—फिर आगे कैसे जाओगी, मुझे तो फ़िक्र इसी की पड़ी है।

हम दोनों गर्दन नीची किए रोती हुई उन सज्जन की सब बातें सुनती रहीं। इसी सोच-फ़िक्र में कई घण्टे बीत गए; और इलाहाबाद का स्टेशन आ गया। गाड़ी ठहरने के थोड़ी देर बाद प्लेटफ़ॉर्म पर टहलते हुए दो नवयुवक हमारी नजर में आए, हमने उनके भेष से जान लिया कि वे हमारे ही देश के हैं; परन्तु उनसे कुछ कहने की हमारी हिम्मत न पड़ी। हमने अपने रक्षक से कहा कि वे दोनों पुरुष हमारे देश के प्रतीत होते हैं; और सम्भव है कि अपने देश ही को जाते हों। अगर आप इनसे बात कर हमारा बन्दोबस्त कर दें, तो बहुत अच्छा हो। उन सज्जन ने तुरन्त उनके पास जाकर सब हाल कहा। उनमें से एक सेठ था और दूसरा उसका निजी नौकर ब्राह्मण था। वे हाल सुनते ही हमारे कमरे के पास आए। मैंने घूँघट निकाल कर अपना मुँह छिपा लिया। सेठ ने हमारा नाम-धाम पूछा। मैं ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब उसके कहने पर वह ब्राह्मण हमारे कमरे में आकर हाल पूछने लगा। मेरी सहचरी ने मेरा पता बताया। मेरे पिता का नाम सुन कर सेठ कहने लगा—वे तो हमारे बड़े स्नेही हैं, इसलिए आप हमारे घर की हैं। कुछ चिन्ता मत करो। हमारे साथ आपको किसी बात की तकलीफ़ न होगी। वे तीनों मुसलमान इलाहाबाद में उतर गए। सेठ ने उस ब्राह्मण को अलग ले जाकर कुछ समझा-बुझा कर हमारे पास बिठा दिया; और गाड़ी वहाँ से रवाना हुई। कानपुरी सज्जन

हमको उस सेठ तथा ब्राह्मण के सुपुर्द कर निश्चिन्त हुए। गाड़ी चलने के बाद उस ब्राह्मण के साथ हमारी बातचीत होने लगी। हमारे चित्त में अब होशियारी आ गई थी। अतः हम निश्चिन्त होकर बातें करने लगीं। ब्राह्मण ने हमारा समाचार पूछा। हमने कह सुनाया और कानपुरी सज्जन की तरफ़ इशारा करके कहा कि यदि ये सज्जन हमारी रक्षा के लिए न आते, तो न मालूम हम पर क्या बीतती। इन्होंने हमको जीवन-दान दिया है। कानपुरी सज्जन ने ब्राह्मण से पूछा—आप लोगों में यह कैसी रिवाज है कि इस तरह युवतियों को इतने लम्बे सफ़र में एक भोंदू आदमी के साथ भेज देते हैं। ब्राह्मण ने कहा—घर वालों को अपने काम-धन्धों से इतनी फ़ुरसत नहीं मिलती कि स्त्रियों को लाने-लेजाने में स्वयं साथ रहें। हम लोगों में तो स्त्रियाँ सदा इसी तरह आती-जाती हैं; और रेल की मुसाफ़िरी में ऐसा आराम है कि प्रायः वे सब राज़ी-ख़ुशी से ठिकाने पहुँच ही जाती हैं। कभी किसी पर कुछ आफ़त आई भी, तो आप जैसे सहायक मिल जाते हैं; इतने पर भी यदि किसी के नसीब में दुख भोगना लिखा होता है, तो उसे कौन टाल सकता है?

कानपुरी—फिर इस तरह की निर्लज्जता का पहनावा पहिनना तथा स्टेशनों के प्लेटफ़ॉर्मों पर नहाना कैसी मनुष्यता है?

ब्राह्मण—पहनावा तो हम लोगों का यही है। रेल के लिए कोई अलग पोशाक तो हो ही नहीं सकती; और नहाए बिना खाना-पीना करने से धर्म भ्रष्ट होता है। इतने लम्बे सफ़र में खाए-पिए

बिना किस तरह काम चले, इसलिए नहाना ज़रूरी है। जिन लोगों को इनका नहाना देखना बुरा लगे, वे अपनी आँखें मूँद सकते हैं।

कानपुरी—जिनके पास इस तरह गहने-कपड़े पहनने को हैं और जो धर्म के इतने कट्टर हैं, उनको सैकण्ड-क्लास का कम्पार्टमेण्ट रिज़र्व करा कर सफ़र करना चाहिए; ताकि अन्दर ही नहाना-धोना हो जाय और स्त्रियों को इस तरह बेइज्ज़त न होना पड़े। लज्जा स्त्री का सब से बड़ा धर्म है। लज्जा गवाँ कर आचार रखना वास्तविक धर्म नहीं है।

ब्राह्मण—सैकण्ड-क्लास में गद्दे होते हैं, जिनको मेहतर साफ़ करता है, इसलिए उसमें बैठने से धर्म भ्रष्ट होता है; और हरेक आदमी इतना खर्च भी नहीं करना चाहता। सैकण्ड और थर्ड-क्लास में बैठने वाले एक साथ ही पहुँचते हैं। फिर फ़ुज़ूल खर्च क्यों किया जाय? यह तो हमारे बाबू लोग, जो बहुत अमीर और शौक़ीन हैं, जिनको खर्च की कुछ पर्वाह नहीं और न इतनी छूत-छात रखते हैं; वे सैकण्ड-क्लास में सफ़र करते हैं। सब कोई उनकी बराबरी नहीं कर सकते। स्त्री को नहाते हुए नङ्गे शरीर कोई देखे, तो उससे धर्म भ्रष्ट थोड़े ही होता है। धर्म-भ्रष्ट तो खोटा काम करने से होता है।

कानपुरी सज्जन ने उस ब्राह्मण से बात करना बन्द कर दिया, तब वह ब्राह्मण हमको सम्बोधित कर कहने लगा—दुनिया में बड़े-बड़े अद्भुत आदमी हैं। इसकी भी अजब खोपड़ी है। अपने मन

में आप ही बहुत इज्ज़तदार और बड़ा आदमी बना हुआ है। स्त्री के शरीर पर तो सोने का नाम निशान भी नहीं है; और बड़ी-बड़ी डींगें हाँकता है। टट्टी जाकर बिना नहाए ही खाता-पीता है; और दूसरों पर कटाक्ष करता है। हम लोगों की बराबरी तो दूर रही, हमारी स्त्रियों के पैरों की भी बराबरी नहीं कर सकता। आप भ्रष्ट विलायती है, इसलिए हमको भ्रष्ट करना चाहता है। ब्राह्मण इस तरह की ऊटपटाङ्ग बातें करने लगा। मैं अपने दिल में बहुत दुख पाती थी; परन्तु कुछ ज़ोर न चलता था। उसकी बातें सुन कर कानपुरी सज्जन के चेहरे पर क्रोध की झलक सी आ गई; और कुछ कहने की, उनकी इच्छा सी जान पड़ने लगी। परन्तु उनकी स्त्री ने यह कह कर रोक दिया कि ऐसे लोगों के साथ मगज-पच्ची से क्या फ़ायदा है? तुमने इनकी रक्षा की, यही भूल की। इस पर ब्राह्मण फिर बड़बड़ाने लगा—बड़ी रक्षा की! नहीं तो तुम्हारे बिना ये लोग जान से मारी जातीं! गवर्नमेंएट के राज में कोई किसी का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इन औरतों में समझ नहीं थी, इसलिए इन्होंने तुम्हारी ग़रज़-ख़ुशामद की। यदि ये हमको थोड़ी सी सूचना देतीं, तो फ़ौरन हम लोग इनकी हिफ़ाज़त के लिए आ बैठते; फिर किसकी मजाल थी कि इनकी तरफ़ आँख उठा कर देखता; और न तुम से ही इस तरह की बातें सुननी पड़तीं। इस तरह वह बकता ही गया, तब मैंने बीच में पड़ कर उसे शान्त किया; और कहा—तुमको इस प्रकार न बोलना चाहिए। ये भले आदमी हैं, हमारे साथ भलाई ही की

है। हमको और बातें करनी चाहिए। इस चर्चा को छोड़ो। फिर मैं ने उन कानपुरी सज्जन से नम्र-भाव से कहा—आप इन महाराज की बातों पर ध्यान न दें और जो कुछ अपराध हो, क्षमा करें। फिर वह चर्चा बन्द करने के लिए दूसरी बात छेड़ने के विचार से, मैंने ब्राह्मण से पूछा—आप के सेठ का नाम क्या है ? उनकी बाड़ी (मकान) कलकत्ते में किस जगह है ? इस समय वे अकेले देश जा रहे हैं या कुटुम्ब-सहित इत्यादि। तब उसने कानपुरी सज्जन का पीछा छोड़ा और अपने बाबू की तारीफ़ के पुल बाँधने लग गया। मेरे प्रश्नों का उत्तर वह इस तरह देने लगा—मेरे बाबू का नाम कन्हैयालाल जी है। कलकत्ते भर में वे पहले नम्बर के शौक़ीन और शाह-ख़र्च हैं। रुपये को कङ्कड़ समझते हैं। नीबूतल्ला स्ट्रीट में उनकी बाड़ी (मकान) है। वह बहुत ही अमीरी ठाट से बनी तथा सजी हुई है। बाबू के सोने के कमरे की सजावट देख कर बड़े-बड़े शौक़ीन पुरुष और स्त्रियाँ चकित होती हैं। कलकत्ते में ऐसी ख़ूबसूरत स्त्री कोई बिरली ही रही होगी, जो हमारे बाबू के पास न आई हो। सब बड़ी-बड़ी रण्डियाँ हमारे बाबू से मेल रखती हैं। नूरजहाँ रण्डी तो इनकी नौकर ही है। पुलिस हमारे बाबू के क़ब्ज़े में हैं। यदि वे ख़ून भी कर डालें, तो उनका कुछ भी नहीं बिगड़ता। कलकत्ते के सब बदमाश हमारे बाबू से दबते हैं; और दो-चार तो सदा उनकी हाज़िरी में रहते हैं। रेल तो मानो इनके घर की ही है। सब स्टेशन वाले इनकी हाज़िरी में खड़े रहते हैं। बड़े-बड़े आदमी इनकी कृपा के इच्छुक रहते हैं। असल में खाई

सब को प्यारी है। ये ऐसे दाता हैं कि सब को देते-लेते रहते हैं; इसलिए सब इनके वश में रहते हैं। स्त्रियों के लिए तो मानो इनके पास कोई वशीकरण मन्त्र ही सिद्ध है कि जिसको नजर भर देख लेते हैं, वह इनके पास आए बिना नहीं रहती; और जो एक बार आ जाती है, फिर इनका पीछा छोड़ना नहीं चाहती; क्योंकि इनके जैसा रङ्ग-राग ऐशोअशरत दुनिया में भी कहीं नहीं है। ये जी चाहे जिसको बुला सकते हैं। जो कहने-सुनने या लोभ-लालच, भलमनसी से आ जाय, तब तो ठीक ही है; नहीं तो डरा-धमका कर या जबरदस्ती रास्ता चलते गाड़ी-मोटरों में बैठा कर अपने बग़ीचे ले जाते हैं। उस दिन बिशनलाल की लड़की को घर से ग़ायब करके तीन दिन-रात अपने बग़ीचे में रक्खा और उसे ऐसी मौज कराई कि वह याद ही रक्खेगी। वे तुम्हारी तरह बड़ी ही खूबसूरत हैं, तुम्हारी ही उम्र की हैं। न मालूम तुम इतने दिन किस कोने में छिपी हुई हमारे बाबू से बची रह गईं।

मैं—क्या इनके स्त्री नहीं है?

ब्राह्मण—हैं क्यों नहीं। साथ ही तो हैं; परन्तु वह बहुत रूपवती नहीं हैं और उनका स्वभाव भी गरम है। बाबू रात को अबेरे-सबेरे आते हैं, तो नाराज़ होतीं और ताने मारती हैं। इसलिए उनमें प्रेम नहीं है; और आपस में कम मिलते हैं; परन्तु फिर भी गहने-कपड़े, इत्र-फुलेल, सेण्ट-लवेण्डर आदि पदार्थों का उनके पास भी ढेर लगा रहता है।

इस तरह वह अपने बाबू की तारीफ़ करता रहा। इतने में

कानपुर आ गया। हमारी रक्षा करने वाले सज्जन अपना असबाब लेकर अपनी स्त्री-सहित उतर गए। हमसे विदा होते समय उन्होंने ये शब्द कहे—ब्राह्मण की जवानी आप लोगों के समाज की हालत सुन कर मुझे पश्चात्ताप हुआ कि तुम्हारी रक्षा के लिए मैंने नाहक़ अपने ऊपर जोखिम उठाई। उनके वे शब्द अभी तक मेरे दिल में खटकते हैं। इसके उत्तर में ब्राह्मण ने घृणापूर्ण शब्दों में अपने शिष्टाचार की समाप्ति की—जाओ-जाओ, तुम्हारी बहुत बरदाश्त हो गई। अब ज्यादा बकवाद करोगे और हमारे बाबू सुन लेंगे, तो कोई तीसरी ही हो जायगी। इतने में बाबू साहब अपनी सैकिएड-क्लास से उतर कर हमारी गाड़ी के सामने आ खड़े हुए और ब्राह्मण से पूछा—क्या बात है? ब्राह्मण ने उत्तर दिया—न मालूम कहाँ की बला है (हमारी तरफ़ इशारा करके) इनको दबा रहा है। मैंने जब सीधी सुनाई तो चुप हुआ। फ़क़ीर कहीं का।

बाबू साहब—तो तुमने एकाध जमाई क्यों नहीं!

ब्राह्मण—अगर न मानता, तो फिर मुझे देर क्या थी! ब्रह्म-पट्ठों के सामने साले की क्या मजाल कि चूँ भी कर सके।

फिर बाबू साहब हमारे कमरे में घुस आए। खाने-पीने के लिए बहुत बढ़िया सामान, अनेक तरह की मिठाई, पूरी, अचार, मुरब्बे, नमकीन, शरबत, बर्फ़, सोडा-वाटर की बोतलें आदि साथ लाए और मेरे सामने के बाँकड़े पर बैठ गए। मैं लम्बा घूँघट निकाल कर अपना मुँह दूसरी तरफ़ करके, गर्दन नीची किए हुए बैठ गई; क्योंकि वे हमारे दूर के रिश्ते में सगे-सम्बन्धी थे। वे कहने लगे—क्या आप

हमसे नाराज़ हैं, जो इस तरह मुँह फेर कर बैठी हैं। मैं तो बहुत देर से आपके दर्शन करने के लिए उत्सुक हूँ; और आप ने उलटा मुँह छिपा लिया। आपके पिता जी से तो हमारी गहरी दोस्ती है। शेयर बाज़ार में हमारा उनका सदा साथ होता है, फिर आप हमसे इतनी लज्जा किस बात की करती हो। मुँह खोलो और भोजन करो। कल से आपने कुछ खाया-पिया नहीं है। भला इस तरह काम चल सकता है! हमको तो मालूम नहीं था, नहीं तो कल ही हाज़िर होते। मैंने उसका कुछ भी उत्तर न दिया।

गाड़ी के दरवाजे पर चढ़ने वाले मुसाफ़िरों की भीड़ लग गई; परन्तु बाबू साहब और उनके नौकर ने किसी को भी हमारे कमरे के अन्दर न घुसने दिया। गाड़ी चल पड़ी। बाबू साहब हमारे ही पास बैठे रहे और फिर मेरे स्वरूप की शोभा तथा चापलूसी, ग़रज़, ख़ुशामद आदि की अनेक प्रकार की बातें करके मुझे मुँह खोलने तथा भोजन करने को बहुत दबाया; परन्तु मैं मौन ही रही। जब उन्होंने मेरे रोकने पर भी मेरे मुँह से घूँघट दूर कर दिया, तब मुझे लाचार होकर गर्दन नीची किए बोलना ही पड़ा—मुँह खोलने से आपको क्या फ़ायदा है? मुझे लज्जा मालूम होती है। आपसे मुझे बोलने का क्या काम है? सगे-सम्बन्धियों के सामने मुँह खोलना तथा बोलना कैसे बन सकता है? खाने के लिए मैंने इन्कार किया—मुझे भूख नहीं है; रेल में मैं खाती भी नहीं। तब वह बहुत कहा-सुनी करने लगे—मैं सम्बन्धी का नाता नहीं रखता, मैं तो मुहब्बत का नाता रखता हूँ। आप को मुँह खोल कर बातें

करनी होंगी; और भोजन करना पड़ेगा। मैं उनका खाना बिलकुल लेना नहीं चाहती थी; परन्तु परवश थी। उनका कहना मानने के सिवा और क्या कर सकती थी। उनके कहने से ब्राह्मण ने मेरे सामने परोस कर रख दिया और चाँदी के गिलास में पानी भर दिया। वह ख़ुद मेरे सामने बैठ कर अपने हाथ से मिठाई मेरे मुँह के सामने लाकर खाने को बाध्य करने लगे। मैं बिल्कुल परवश थी। छुटकारे का कोई मार्ग न देखा, तो दो-चार ग्रास केवल दूध-मावे को खाकर पीछा छुड़ाया। मेरी साथिन ब्राह्मणी ने भी खाया। फिर वह हमको पान-सुपारी देने के बाद अपनी अय्याशी, फ़ुज़ूल-ख़र्ची और अनीति की बातें करते रहे; और मुझे भी अनेक प्रकार के प्रलोभन देते रहे। टूँडले तक वह हमारी गाड़ी में बैठे रहे। वहाँ पर गाड़ी बदलने के लिए उन्होंने सब से प्रथम हमारा सामान उठवाया और हिफ़ाज़त के साथ आगरे वाली गाड़ी में पहले हमको बैठा कर पीछे अपना सामान और स्त्रियों को चढ़ाया। इसी तरह हमारी ख़ातिर-तवज्जह तथा अपने अन्तःकरण का प्रेम प्रकट करते हुए हमको देश में राज़ी-ख़ुशी पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचने पर मैं अपने ननिहाल में रहने लगी। मेरे नाना नहीं थे, नानी मौजूद थीं। दो मामा और एक बाल-विधवा मौसी थी, जो अपनी माँ के पास ही रहा करती थी। नानी और मौसी मुझे बहुत लाड़-प्यार से रखने लगीं। शाम को मैं अपनी ससुराल गई; और अपने लिए नियत किए हुए कमरे में, पति के पास पहुँची, तो उसे

देख कर मेरा चित्त बहुत खिन्न हुआ; क्योंकि वह एक दुबला-पतला कमजोर बालक था। नौ-दस वर्ष की उम्र में विवाह हो गया था। इस समय वह बारह-तेरह वर्ष के बीच में था। दो वर्ष बम्बई में रहने के कारण कमजोर हो गया था; और अग्निमान्द्य की शिकायत भी हो गई थी। कुछ भी हो, मेरा तो वह पति ही था। रात को मैं ससुराल जाती; और सवेरे वापिस ननिहाल आती।

कन्हैयालाल बाबू का नौकर गैंडा महाराज मेरे पास लुक-छिप कर आया करता; और मुझे अपने बाबू से मिलने के लिए बहुत कहा-सुनी करता रहता; परन्तु मैं टालमटोल ही करती। साफ़ इन्कार मैं इसलिए न करती थी कि उसका मुझ पर अहसान था; और उसकी बदमाशी से डरती भी थी! उससे मिलने की इच्छा न थी, इसलिए टालमटोल ही करना पड़ता था। गैंडे महाराज का मेरे पास आना यद्यपि मेरी मौसी को अच्छा नहीं लगता था; परन्तु उसे मना करने की उनमें भी हिम्मत न थी। सावन की तीज का मेला आ गया। मेरी मौसी ने मुझे खूब सजा कर मेरे मामा की लड़की तथा दो-तीन पड़ोस की ब्राह्मणियों के साथ मेले भेजा। वहाँ मेरे पति आए थे; और कन्हैयालाल बाबू भी अपनी मण्डली सहित वहाँ मौजूद थे। हम लोगों ने कन्हैयालाल को खूब गालियाँ गाईं; और उन्होंने नीबू, अनार, नासपाती आदि हम लोगों को दिये तथा छेड़-छाड़ भी की। मेरे पति ये बातें देख कर बहुत क्रुद्ध हो रहे थे। रात को जब मैं उनके पास पहुँची, तो मुझे खूब पीटा; और उसी दिन से आपस में बहुत अनबन रहने लगी। ऐसी रात शायद

ही बीतती, जब मुझ पर दो-चार थप्पड़ और लातें न पड़ती हों; और गालियों का तो कहना ही क्या था ? मैं चुपचाप यह सब सहन कर अपनी आँखों पर ज़ोर निकाल लिया करती। कभी किसी से कुछ भी न कहा। एक दिन मार के चिह्न मेरे शरीर पर हो गये। उन्हें मेरी मौसी ने देख लिया; और मुझ से उसका कारण पूछा, तो मेरे दुख उमड़ कर आँखों द्वारा प्रकट होने लगे। इससे मेरी मौसी समझ गई; और एक ब्राह्मण, से जो मेरे ननिहाल में रहता था, तथा मेरी मौसी के मुँह लगा था, मेरे पति को मेरे सम्बन्ध का उपालम्भ कहलवाया। उस पर वे इतने बिगड़े कि मुझसे बोलना भी बन्द कर दिया; और कई दिन की मेरी आरजू-मिन्नत करने पर बड़ी मुश्किल से बोले। इसके बाद व्यभिचारी लोगों के सन्देश मेरे पास आने-जाने वाली स्त्रियों द्वारा आने लगे। कोई मुझे सोने और मोतियों के गहनों का प्रलोभन देकर किसी धनी के पास ले जाने को कहती; और कोई पाँच-सात सौ नक़द दिलाने की आवाज़ सुनाती थी। कोई बेशक़ीमती साड़ियों और इत्र-फुलेल दिखा कर मेरा जी लुभाने की कोशिश करती; और कोई किसी शौक़ीन के महलों की सजावट और उसकी छटा से मेरा मन मोहने का उद्योग करती थी; परन्तु मैं अपने पति से इतनी डरती थी कि इनकी बातें सुनने से भी मुझे भय होता था। मैं अपनी ससुराल सवारी पर बैठ कर जाया करती थी; अतएव बहुतों के सन्देश मेरी सवारी हाँकने वाले की मार्फ़त भी आये। हाँकने वाले ने मुझसे कहा—मैं तुम्हें ससुराल ले जाते समय रास्ते में घुमा

कर मिला लाऊँगा; और इसमें किसी को शक भी न होगा; परन्तु मैंने साफ़ इन्कार कर दिया। कन्हैयालाल बाबू ने मेरी मौसी को बहुत भारी लालच देकर मुझे मिलाने के लिए कहलाया, उस पर मेरी मौसी ने उसके आदमी गेंडे महाराज का घर में आना बन्द करवा दिया। तब उसने टीपू ब्राह्मण के साथ मेरी मौसी को मेरे लिए बहुत सा लोभ देने को कहलाया; किन्तु फिर भी मेरी मौसी ने साफ़ इन्कार कर दिया। टीपू के द्वारा कहलाने का प्रयोजन यह था कि मेरी मौसी के साथ उसके अनुचित सम्बन्ध की खबर लोगों में फैल रही थी। यद्यपि मैंने अपनी आँखों से उनका अनुचित सम्बन्ध नहीं देखा; परन्तु उनके परस्पर के व्यवहारों से शक अवश्य पैदा होता था। मेरी मौसी ने पुष्टि-मार्ग की मर्यादा ले ली थी; परन्तु कई अवसरों पर टीपू से वह विशेष छूत-छात न रखती थी; और उससे वह बहुत दबती थी। सदा उसकी ख़ुशामद करती थी। कभी-कभी वह उसको बहुत कुवाक्य एवं बुरी गालियाँ निकालती, तो वह हँसता हुआ सहन कर लेता था। साल-दो साल के बाद वह ब्रज अथवा किसी तीर्थ की यात्रा करती थी, तो टीपू भी उसके साथ जाता था; और वे आपस में हँसी-ठट्ठा भी बहुत किया करते थे। ये सब बातें सब के दिल में बहुत खटकने वाली थीं। मेरी मौसी का कमरा घर के पिछवाड़े एकान्त में था; जिसके दो भाग थे। वह एक भाग में ठाकुर जी की सेवा और उस सम्बन्ध की सब सामग्रियाँ; और दूसरे में अपने कपड़े तथा अन्य सामान रखती थीं। कमरे के आगे बरामदा और उसके आगे खुली

छत थी। टीपू मौसी के साथ जब कमरे में बैठा रहता, तब मैं भ
उनके पास बैठी रहा करती। कई दिनों के बाद टीपू ने मेरे साथ भ
हँसी-ठट्ठा शुरू कर दिया। जब मैं मौसी के पास उसके कमरे
बैठती, तब टीपू मेरे साथ हँसी-ठट्ठा करने लगता। यह देख क
मौसी मुझे किसी काम के बहाने नीचे नानी के पास भे
देती। इसी तरह कितने ही दिन बीत गए—मुझे मासिक ऋतु
धर्म हुआ। उन तीन दिनों में ससुराल न जाकर पीहर में ही रहन
होता है। मैं भी अपनी मौसी के पास सो गई। मौसी ने मुझ
अपने सोने-बैठने वाले कमरे में सुलाया; और आप अपन
बारादरी में सो गई। मुझे नींद आ गई। रात को बारह बजे के
क़रीब एकाएक आँख खुली, तो अपने को टीपू के पञ्जे में फँस
हुई पाई। मैं कुछ न बोल सकी। यद्यपि मौसी को पुकारने के
लिए मैंने चेष्टाएँ कीं; परन्तु टीपू ने मेरा मुँह-हाथ से बन्द कर दिया
तब मैंने समझ लिया कि मौसी की साजिश बग़ैर यह काम हो है
नहीं सकता। जब वह मेरे कमरे से बाहर निकला, तो कमरे के
किवाड़ बाहर से बन्द कर लिए। फिर मौसी और उसकी परस्पर
जो बातें हुईं, वे सब मैं अन्दर से कान लगा कर सुनती रही।

मौसी—क्यों, अब तो पित्त ठण्डे हुए?

टीपू—इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ा?

मौसी—जन्म भर के लिए मेरा मुँह काला हो गया। राध
जब मेरी माँ और बहिन से यह बात कहेगी, तब मैं उनको कौन
सा मुँह दिखाऊँगी?

टीपू—राधा पागल तो है नहीं, जो ऐसी बातें किसी से कहेगी। यह कोई नई बात थोड़े ही है। यह तो सदा से होती ही आई है। राधा तो उलटी खुश ही हुई होगी। उसके पति का हाल तुम से छिपा नहीं है। तुम्हें वह अपने मन में आशीर्वाद देती होगी। आखिर राधा तो किसी न किसी के भेंट चढ़ती ही; लेकिन हाँ, तुम्हारा एहसान मेरे ऊपर इतना चढ़ गया कि मैं उसे कभी भूल नहीं सकता।

मौसी—एहसान मान कर निहाल करेगा? सब धर्म-कर्म से डुबोई। छूत-छात की कुछ भी चिन्ता न रक्खी, अब रहा-सहा यह पाप सिर पर चढ़ाया। तुम को कुछ डर भी नहीं लगता? मेरी तो छाती धक-धक कर रही है।

टीपू—तुम ठाकुर जी की इतनी सेवा, पूजा और नित्य-नेम करती हो, हम तुम्हारा ही पल्ला पकड़ कर पार हो जायँगे। मुझे इस बात की फ़िक्र नहीं; यहाँ तो मौज करलें, आगे की फिर कौन जानता है? वह इस तरह कह मौसी के साथ प्रेम करने लगा। मौसी ने कहा—तुम्हारा काहे का प्रेम? किसी नई औरत को देखा नहीं कि मन चलायमान हो गया। अगर हाथ न आई, तो लड़ाई मुझ से करने को तैयार। इस तरह की बातें हो कर फिर रङ्ग-राग होने लगा।

मैं पड़ी-पड़ी अपनी अवस्था का विचार करने लगी। इस घटना से मेरे चित्त में उतना दुख न हुआ, जितना छोटू के अत्याचार से। वास्तव में मुझे विशेष दुख नहीं हुआ, यह कहना भी अनुचित न होगा। उस समय और इस समय की परिस्थिति में इतना फ़र्क़ पड़ गया था कि जो बात मुझे उस समय

घोर दुख और ग्लानि पैदा करने वाली तथा असह्य थी, वही आज साधारण प्रतीत होने लगी। यही नहीं; किन्तु पीछे से इसी घटना के कारण मेरे मन की वासनाएँ विशेष रूप से जाग्रत हो गई; और यह काम मुझे आनन्ददायक प्रतीत होने लगा। यद्यपि मेरे अन्तःकरण के भाव तो इस तरह के थे; परन्तु ऊपर से अपनी मौसी को सख्त नाराजी दिखाना ही मैंने उचित समझा। इसलिए सवेरे ही उठ कर अपने पिता के घर दादी के पास जाकर रहने का निश्चय कर लिया। सवेरे जल्दी उठ कर मैंने मौसी से कहा—मैं अपनी दादी के पास जाऊँगी। तब वह बहुत डरी; और मुझे रोकने की चेष्टाए करने लगी अभी जाना ठीक नहीं। तीन दिन के बाद नहा-धो कर जाना; परन्तु मैंने उससे कह दिया कि तुम किसी बात का ख्याल मत करो। मैं अपनी ख़ुशी से जाती हूँ। यह कह कर एक औरत को साथ ले चली गई। दिन में मौसी ने चार-पाँच बार औरतों को मेरे पास भेजा। शाम को वापिस लौटाने के लिए बहुत कहा-सुनी की। उधर मेरी दादी भी पिता जी की सौतेली माँ थीं—उनसे और मेरी माँ से पटती न थी। अतएव वहाँ अधिक रहना न चाहती थी; परन्तु एक रात तो वहाँ ही काटना उचित समझा; ताकि मौसी के चित्त पर कुछ आतङ्क जमे। दूसरे दिन सवेरे ननिहाल आगई; परन्तु मौसी के पास न जाकर। नानी के पास रहने लगी। मौसी एकान्त में मेरे सामने रोने लगी; और अपने दुर्भाग्य पर पश्चात्ताप करती हुई कहने लगी—न मालूम पूर्व जन्म में मैंने कितने पाप-कर्म किए थे, जिसके कारण

अनेकानेक बढ़े-चढ़े दुख मुझे भोगने पड़ रहे हैं। सुख की घड़ी मेरे भाग्य में लिखी ही नहीं। विवाह होने के थोड़े ही दिन बाद जब मेरा भाग फूटा, उसी दिन से मेरी नाव दुख-सागर में ग़ोते खा रही है, जिसका कोई ओर-छोर भी दिखाई नहीं देता। जिससे बात करती हूँ, वही अन्त में दुश्मन बन जाता है। छोटी अवस्था में बड़े-बड़े आदमी मेरे चाहने वाले थे; परन्तु काम पड़ने पर सब धोखेबाज़ निकले। दुख के समय कोई सहायक नहीं रहा। यहाँ के लोगों से तङ्ग होकर मथुरा जी गई; और वहाँ ..... लाल जी महाराज से सम्बन्ध हुआ। तब मैंने समझा था कि अब इनके साथ अन्त तक निभेगी; परन्तु उनसे भी बहुत धोखा मिला। दुख पड़ने पर वे अलग होगए; और मैंने बड़ी मुश्किल से अपनी जान बचाई। फिर अब इस दुष्ट टीपू से पाला पड़ा है। यह मुझे बहुत ही दबाता और तङ्ग करता है। उधर ससुराल वाले वैरी बन रहे हैं। पहले दो सौ रुपये मासिक खर्च के लिए देते थे, अब वह भी बन्द कर दिए; और खूब बदनामी करते हैं। अपने घर कभी बुलाते तक नहीं। मैंने खर्च के लिए उनसे कई बार कहलाया; परन्तु उन्होंने एक भी न सुनी। तब अपने एक पुराने परिचित समझदार पुरुष की सलाह से तफ़ज़्ज़ुलहुसेन को वकील कर उनके ऊपर अपने हिस्से के बटवारे का दावा कर दिया। इस मुक़दमे की पैरवी यह टीपू ही करता है। इसलिए मुझे इसकी हर तरह से ग़मख्वारी करनी पड़ती है; और जैसा नाच यह नचाता है, वैसा ही मुझे नाचना पड़ता है। जब दुख पड़ता है,

तब यही बेचारा मेरे साथ व्रज में चलता है; और चुपचाप दुःख से छुटकारा करवा देता है। यहाँ किसी को कुछ शक भी नहीं होने देता। यह आदमी बहुत पक्का है। जबान से हरफ़ भी बाहर नहीं निकालता। अगर यह नाराज होकर चला जाय, तो मेरा सब काम चौपट हो जाय; और दुख-सुख में मुझे कोई पूछने वाला भी न रहे। तुम्हारे लिए यह मेरा बहुत दिन से कान खाता था; मगर मैं टालमटोल ही करती रहती थी। जब तुम मेरे और उसके एकान्त के समय मेरे पास बैठती थीं, तो मैं तुम्हें किसी काम के बहाने से टरका देती थी, उसका यही प्रयोजन था; परन्तु जब वह बहुत ही हठ करने लगा; और उससे मेरी टूटने की नौबत आने लगी, तो लाचार होकर मुझे यह अनर्थ स्वीकार करना पड़ा। अब तुम जो चाहो करो। मैं तुम्हारी दया की पात्र हूँ। तुम्हारी मौसी हूँ, तुम मेरी भानजी हो। बहिन की बेटी और अपनी बेटी में कोई फ़र्क़ नहीं होता। तुमको मुझ ग़रीबिनी दुखिया पर दया करनी चाहिए; और मेरा अपराध क्षमा कर बीती बात को बिसार देना चाहिए। यह कह कर उसने मेरे पैर पकड़ लिए। मुझे मौसी की दुख भरी हालत पर तरस आगया; अतः मैंने उसे कह दिया—"मौसी, तुम कुछ ख्याल मत करो। मेरे दिल में कुछ रञ्ज नहीं है। तुम्हारे दुख से मैं खुद बहुत दुखी हूँ। जहाँ तक बन सकेगा, वहाँ तक मैं तुम्हारी सहायता करूँगी; परन्तु एक बात तो बताओ, ऐसी वैष्णव-मार्यादिक होकर भी तुमको कुछ ग्लानि नहीं होती? उस हालत में मेरे पास से वह तुम्हारे पास आया; फिर भी तुमने उससे पहरेज न किया, यह क्या बात है?

मौसी—बाई क्या कहूँ ! बहुत ही शर्म की बात है । इन कामों में धर्म-कर्म, नित-नेम, छूत-छात कुछ नहीं निभती । उस दुष्ट के चित्त में कोई परहेज और ग्लानि तो है नहीं; और मैं उससे पीछा छुड़ा नहीं सकती, तब किया क्या जाय ? कण्ठी बदल चरणामृत ले और गौ मूत्र-गोबर से शरीर की शुद्धि करती हूँ । बर्तनों में अग्नि डाल कर शुद्ध करती हूँ । इसके सिवाय खर्च से भी बड़ी तङ्ग रहती हूँ । इसका सवाल नित नया बना ही रहता है । वह किसी तरह पूरा करना ही पड़ता है । ठाकुर जी के वस्त्र, प्रसाद, उत्सव-महोत्सवके खर्चे भी महँगी के कारण बहुत बढ़ गए हैं । तिस पर मुक़दमे का खर्चा और भी तबाह किए देता है । अपने अङ्ग का बहुत सा जेवर तो बेच डाला; कुछ गिरवी पड़ा है, जिस पर ब्याज चढ़ता है । जो बाक़ी बचा है, वह थोड़े दिनों में पूरा हो जायगा । फिर न मालूम क्या हाल होगा, ठाकुर जी जानें । मुक़दमा न मालूम कब पूरा होगा । दो कचहरी से तो फ़ैसला हो गया, अब सब से ऊपर की कचहरी में अपील चल रही है । देखें, वहाँ क्या होता है । अपने दुख का हाल मैं ही जानती हूँ । मैं तो कहती हूँ कि परमेश्वर ने मुझे मनुष्य-जन्म ही क्यों दिया ? कोई पशु-पक्षी कर देता, तो ही अच्छा था । ये दुख तो न देखने पड़ते । अब भी जल्दी मौत दे दे, तो पीछा छूटे । यह कहते हुए फूट-फूट कर रोने लगी । मैंने उसको दिलासा दिया; और पहले से भी अधिक प्रेम से रहने लगी । मौसी के दिल बहलाने को दोपहर के वक़्त सवारी पर चढ़ कर हम दोनों घूमने-फिरने जाने लगीं । मौसी के मुक़द्दमे में दो अदालतों ने

सौ रुपया मासिक और एक साधारण मकान रहने के लिए ससुराल वालों से दिलाया था। जिससे सन्तुष्ट न हो उसने फ़ैसले के विरुद्ध अपील की थी। वह चाहती थी कि अपने पति का पूरा हिस्सा बटा कर अपनी इच्छानुसार किसी को गोद ले ले; परन्तु ससुराल वाले मौसी के ऊपर फ़ुजूल-ख़र्ची में धन उड़ाने और बद-चलनी का दोषारोपण कर के कुछ भी न देना चाहते थे। अपील के लिए मौसी हद से ज्यादा कोशिश करती थी; और शाम को प्रायः नित्य ही वकील के घर जाया करती थी। हाकिमों को सिफ़ारिश पहुँचाने के लिए अनेक लोगों की ख़ुशामद करती थीं। नगर का एक धनी पुरुष बहुत चलता-पुर्जा था। बड़े-बड़े हाक़िमों के पास उसकी सिफ़ारिश का बड़ा असर हुआ करता था। उसकी मदद के लिए मौसी ने टीपू को भेजा। उत्तर में उसने मौसी से प्रत्यक्ष मिलने को कहला भेजा! वह बड़ा शौक़ीन, अमीरी ठाठ से रहने वाला और ख़ूब ख़र्चीला था। मौसी मुक़दमे के लिए कहीं भी जाने में सङ्कोच न करती थी। अतः इसके पास जाने में भी कोई आना-कानी न की। मौसी यों तो बहुत ख़ूबसूरत थी; परन्तु प्रौढ़ा हो जाने से तथा तीन-चार बार गर्भपात कराने से उसके शरीर की रौनक़ प्रायः लुप्त हो गई थी। फिर भी उससे जहाँ तक बना टीप-टाप लगा—सज-धज कर शाम को उससे मिलने को गई। दूसरे दिन जब वह मुझ से मिली, तो मालूम हुआ कि उसकी इच्छा के अनुसार उसे सफलता नहीं मिली; यद्यपि उसने उस धनी पुरुष को अपनी बातों से रिझाने के

लिए कोई प्रयत्न उठा न रक्खा; परन्तु उसने दिलोजान से मुक़दमे में कोशिश करने का मौसी को भरोसा न दिया। इसका कारण मौसी ने उस समय तो मुझे कुछ न बताया; परन्तु पीछे कई दिनों बाद मालूम हो गया।

मैं पहले कह आई हूँ कि मेरा पति बम्बई से अग्निमान्द्य की बीमारी ले आया था। अब आहार और व्यवहार की अत्यन्त बदपरहेज़ी से बीमारी ज़ोर पकड़ने लगी; और वैद्यों का इलाज शुरू हो गया। खाने-पीने के परहेज़ और ब्रह्मचर्य रखने के लिए वैद्यों की बहुत कहा-सुनी रहती थी; परन्तु वह परहेज़ कुछ न रख सकता था। इसलिए बीमारी दिन-दिन बढ़ती ही गई; और अन्त में केवल छाछ के आहार पर रहने की नौबत आ गई। मेरे सास-ससुर उसको अपने पास सुलाने लगे; और मेरे पास एक नौकरानी सो जाया करती थी। ऐसी दशा में नित्य ससुराल जाने की भी आवश्यकता न थी; परन्तु मेरा पति मेरे पीहर रहने में विश्वास नहीं करता था, इसलिए मुझे नित्य आना पड़ता था। तो भी कभी-कभी सिर और पेट के दर्द का बहाना कर मैं पीहर में रह ही जाती थी। इस समय मेरी मौसी ने हिचकते-हिचकते उस धनी पुरुष से प्रयोजन सिद्ध न हो सकने का कारण मुझे बताया; अर्थात् वह मुझ से मिले बिना मौसी का कार्य करना न चाहता था। इस बात से मेरे क्रुद्ध होने का मौसी को भय था; इसलिए उसने साथ ही साथ यह भी कह दिया कि मैं तुमको उस काम के लिए कुछ नहीं कहती; 'क्योंकि आगे की बात से मैं अभी तक बहुत

शर्मिन्दा हूँ ; परन्तु मेरे जीवन का सब दारोमदार इसी मुक़द्दमे पर है। इस बात को तुम भी विचार लो । मौसी का जीवन-मरण तुम्हारे ही हाथ है। उसकी यह बात सुन कर मैं गहरे विचार में पड़ गई; और कुछ उत्तर न दिया। तब उसका साहस कुछ बढ़ गया ; और कहने लगी—चुप क्यों हो गई ? मौसी पर कुछ दया आती है कि नहीं ; बेटी ? इस पर मैंने उत्तर दिया—तुमको मैं क्या जवाब दूँ ? मुझे तो तुम जो कहोगी; वही करना होगा; परन्तु इन बातों से मैं बहुत डरती हूँ। बात करने मात्र से मेरा दिल धड़क रहा है। मौसी ने कहा—तुम्हें डर किस बात का है, मैं तो तुम्हारे साथ ही हूँ। बस फिर क्या था, उसने टीपू को बुला कर उस धनी पुरुप के पास उसी रात को मिलने के लिये कहला भेजा; और शाम होते ही देव-दर्शन के बहाने हम दोनों घर से निकल कर उस पुरुप की कोठी में जा पहुँचीं। दस बजे तक उसके पास रह कर लौट आईं। मौसी के मुक़द्दमे में खूब अच्छी तरह सिफ़ारिश करने की उसने तसल्ली दी। मौसी मेरा बहुत एहसान मानने लगी ; और बहुत प्रसन्न हुई। दो दिन के बाद उस पुरुप ने टीपू की मार्फ़त कहला भेजा कि मैंने एक बड़े पदाधिकारी से तुम्हारी सिफ़ारिश अच्छी तरह करदी है। यह पदाधिकारी राज्य में चाहे जो कर सकता है ; परन्तु एक बार उससे तुम दोनों का मिलना बहुत ज़रूरी है। तुम्हारे मिलने से काम अवश्य फ़तह हो जायगा। इस बात से मेरी मौसी विचार में पड़ गई; क्योंकि ऐसे लोगों से मिलने में वह खुद बहुत डरती थी ; और मेरे भय का तो ठिकाना ही क्या

था। लोभ बुरी बला होती है—मुक़दमे के लिए मौसी हिन्दू से मुसलमान तक हो जाने से न डरती थी। उस पर टीपू के हिम्मत बँधाने से उसका साहस और भी बढ़ जाता था। अतएव उक्त पदाधिकारी से मिलने के लिए भी मुझे मजबूर किया; और एक दिन शाम को इक्के पर सवार होकर पदाधिकारी के भवन में हम दोनों जा पहुँचीं। वहाँ रात भर हमारी बड़ी दुर्दशा हुई ! सवेरा होने से पहले ही घर लौट आई। दूसरे ही दिन मुक़दमे की तारीख़ थी। फ़ैसला मेरी मौसी के हक़ में बहुत अच्छा हो गया; अर्थात् एक लाख रुपया नक़द और उसके पति का जेवर तथा रहने के लिए एक आलीशान पक्का मकान, सवारियाँ और बर्तन आदि—एक गृहस्थ के रहने का पूरा सामान दिलाया गया। इतने वैभव की वह स्वतन्त्र स्वामिनी हो गई। मौसी के ससुराल वाले बहुत पुराने धनी ख़ानदान के थे; अतः ऊपर से उनकी इज़्ज़त बहुत बढ़ी-चढ़ी हुई दीखती थी; परन्तु सट्टे-फाटके के धन्धे से भीतर ही भीतर नुक़सान में चूर हो खोखले पड़ गए थे। ऐसे समय में एक लाख नक़द निकल जाने से बड़ा भारी धक्का पहुँचा; और थोड़े ही महीनों बाद उनका दिवाला निकल गया। मौसी ने एक लाख रुपये लेकर कुछ मेरे मामा के पास जमा किया; और कुछ मेरे पिता को कलकत्ते भेज दिए। शेष खाने-ख़र्चने के लिए अपने पास रक्खे। दो महीने का गर्भ उसको हो चुका था। अतः उसे गिराने के लिए मथुरा जी आना जरूरी था। इसलिए उसने मेरी माँ को बुलाने के लिए मेरे पति की सख़्त बीमारी का कारण बता कर

बहुत ताकीद लिखी। चार-पाँच महीने बाद मेरे भाई का विवाह करने के लिए उन्हें आना तो था ही ; अतः मेरे पति की सख्त बीमारी के समाचार पहुँचते ही माता-पिता तुरन्त वहाँ से रवाना हो गए। उनके आने तक मौसी बाट न देख सकी; और टीपू को साथ लेकर मथुरा को रवाना हो गई। अब की बार गर्भपात कराने में उसे बहुत तकलीफ़ हुई ; और वहाँ बहुत बीमार हो गई। बीमारी की हालत में उसने खूब ही धर्म-पुण्य किया। हज़ारों रुपये का दूध जमुना जी में डलवाया। मन्दिरों और गुसाईं-बालकों की भेंटों में तथा चौबों को खिलाने में भी हज़ारों रुपये लगाए। जो नक़द साथ ले गई थी, सब खर्च हो जाने पर मेरे पिता और मामा के पास जो जमा रखे थे, उसमें से भी बहुत सी रकम मँगवा कर खर्च कर डाली। बीमारी का इलाज कराने में भी बहुत खर्च किया गया ; परन्तु गर्भपात होने में शरीर को इतना नुक़सान पहुँचा था कि किसी इलाज से फ़ायदा न हुआ ; और अन्त में वहीं पर उसकी मृत्यु हो गई। उसके पास जो कुछ बचा था, सब टीपू के हाथ लगा। मरने के बाद उसके ससुराल वालों ने मेरे पिता और मामा से उसकी सारी चीज़ें और रकम माँगी। उन्होंने जब रक़म खर्च हो जाने की बात कही, तो उन लोगों ने पिता पर दवा किया, जिसका झगड़ा वर्षों तक चला और उसमें दोनों तरफ़ की खूब बर्बादी हुई।

मेरे माता-पिता देश में आए, तो मेरे पति की हालत देख कर बहुत शोकातुर हुए। मेरे ससुराल वाले इलाज तो अच्छी तरह करवाते थे; परन्तु उससे विशेष लाभ न था। अतः मेरे पिता ने

एक रामस्नेही महन्त जी का इलाज कराने का प्रबन्ध किया। उसके इलाज से एक बार कुछ फ़ायदा प्रतीत होने लगा। यह देख माता-पिता की चिन्ता बहुत कम हो गई।

मैं पहले कह आई हूँ कि माता जी की अपनी सौतेली सास से न बनती थी; अतएव माँ के आने के थोड़े ही दिनों बाद आपस में बहुत खटपट हो गई। विवश हो, पिता को मेरी दादी से अलग रहने का प्रबन्ध करना पड़ा। अब हम लोग स्वतन्त्र मकान में रहने लगे। पति को कुछ आराम मालूम पड़ने पर मैं फिर उनसे मिलने लगी! परन्तु यह आराम थोड़े ही दिन रहा। खाने-पीने और ब्रह्मचर्य की बदपरहेज़ी से बीमारी ने बहुत ज़ोरों से दौरा किया। अब की बार वैद्यों की औषधियों ने कुछ भी असर न किया और बीमारी बढ़ती ही गई। धीरे-धीरे सारे शरीर में सूजन आ गई; और मेरा नसीब फूट गया। यद्यपि पति-पत्नी में जो वास्तविक प्रेम हुआ करता है, उसका अनुभव मुझे न हुआ था; परन्तु एक साल के सहवास से कुछ स्नेह अवश्य उत्पन्न हो गया था; और यह भी मुझे ज्ञान हो गया था कि पति के बिना स्त्री के लिए संसार में घोर अन्धकार है। विधवा स्त्री के लिए संसार में कोई ठिकाना नहीं; और न कोई उसके दुखों में वास्तविक सहायक होता है। उसके दिल की सब बातें दिल ही में रहती हैं। पति के बिना वह हृदय का बोझ हलका नहीं कर सकती। मौसी की दुर्दशा मैं अच्छी तरह देख चुकी थी। अब वही अवस्था मुझ पर आ पड़ी। छोटा-बड़ा, कमज़ोर अथवा क्रूर प्रकृति वाला जो कुछ था, अन्त में था तो

मेरा रक्षक ही; एवं मेरे दुख-सुख में साथ देने वाला और मेरे दिल के भीतरी हाल को सुनने वाला। उसके साथ मेरी सब आशाएँ भस्मसात् हो गईं। मैं संसार में किसी योग्य न रही। खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना और हँसना मेरे लिए कुछ भी न रहा। सुहाग के सब चिह्न तोड़-फोड़ कर फेंक दिए गए। हाय! उस समय अथाह दुख-सागर में डूबती हुई—मुझे कोई ओर-छोर दृष्टि दिखाई न पड़ता था! संसार घोर अन्धकारमय प्रतीत होता था। उसके जीते जी चाहे प्रीति बहुत ही कम रही हो; परन्तु अब उसके वियोग ने मेरे हृदय को विदीर्ण कर दिया; और मेरा कलेजा टूक-टूक होने लगा। उससे एक सन्तान भी न होने पाई कि जिसको देख कर सन्तोष करती; परन्तु उसका उपाय ही क्या? मेरे कर्म ही ऐसे खोटे उदय हुए, तभी इसी तरह की घोर विपत्ति आ पड़ी। मेरे माता-पिता की जो हालत थी, वे ही जानते थे। उनकी तीस वर्ष की उम्र में मैं चौदह वर्ष की लड़की राँड होकर उनकी छाती पर बैठ गई, इससे अधिक सन्ताप माता-पिता के लिए संसार में और क्या हो सकता है? एक तरह से उनका भी जन्म बिगड़ गया!!

एक साल तक तो हम सब शोक-सागर में डूबे रहे। मेरी माँ आठों पहर मुझे अपने पास रखती थी। एक मिनिट के लिए भी दूर न करती थी। अधिकतर रोया ही करती थी। नाते-रिश्ते और मुलाक़ाती औरतें एक के बाद दूसरी बैठक में आती रहती थीं। शनैः-शनैः दुख शान्त होकर विस्मृत होने लगा। मेरे पिता जी ने मुझे

शास्त्र पढ़ाने के लिए अपने घर के पण्डित किशनलाल से कहा। वह वृद्ध था; और पढ़ाने की उसमें योग्यता भी न थी, इसलिए उसने अपने बेटे मोहन की विद्वत्ता की बहुत तारीफ़ करके कहा—बाई जो चाहेगी, सो वह पढ़ाने के योग्य है। विष्णु सहस्रनाम, गोपाल-सहस्रनाम, गीता आदि सब उसको कण्ठ हैं। जिस तरह से उसने अपनी बहिन को थोड़े ही दिनों में पढ़ा दिया है, उसी तरह राधा बाई को शीघ्र सब शास्त्र कण्ठ करवा देगा। राधाबाई को वह अपनी सगी बहिन से भी बढ़ कर समझता है। अस्तु, पिता जी की आज्ञा से मोहन मुझे दोपहर के समय पढ़ाने आने लगा; और मेरी माँ के सामने ही बैठ कर विष्णु-सहस्रनाम का अभ्यास कराने लगा। मोहन की अवस्था क़रीब पच्चीस वर्ष की होगी। रङ्ग गोरा, बदन सुडौल और गठीला था। मैले-कुचैले कपड़े पहने रहता था, जैसे पाठ-पूजा करने वाले प्रायः रहते हैं। सहस्रनाम का एक श्लोक मैं नित्य कण्ठ करती थी। लगभग चार महीने में विष्णु-सहस्रनाम पूरा हो गया। इस बीच में पिता जी को मेरे भाई का विवाह करना पड़ा; क्योंकि उसकी सगाई जिस लड़की के साथ हुई थी, वह ग्यारह वर्ष की हो चुकी थी। इसलिए विवाह करना ज़रूरी हो गया। शोक के सबब से विवाह में हर्ष-उत्सव तो कुछ था ही नहीं, साधारण तौर से रस्म पूरी करनी थी। विवाह के दिनों में घर में सबके सामने मेरा पढ़ना ठीक नहीं हो सकता था; इसलिए मोहन के कहने पर मेरी माँ ने मेरे पढ़ने के लिए ऊपर के मञ्ज़िल का कमरा खोल दिया। वहाँ पर एकान्त

में मैं मोहन के पास पढ़ने लगी। अब पढ़ाने के सिवाय मोहन मेरे साथ अनेक प्रकार की बातें करने लगा। शहर में होने वाली नित्य नई घटनाएँ सुनाता; और लोगों के चरित्रों की समालोचना करता। मुझे भी नई-नई बातें सुनने का बहुत शौक़ हो गया, इसलिए उसकी बातें मैं बड़े चाव से सुनती; और उन पर तर्क-वितर्क भी करती। इस तरह आपस में सब तरह की बातें होने से सङ्कोच मिट गया। एक दिन बातों ही बातों में उसने मेरे रूप-रङ्ग की खूब प्रशंसा की; और एक-दो बड़े आदमियों के नाम भी लिए कि वे भी मेरी बड़ी तारीफ़ करते हैं। स्त्रियाँ अपने रूप की तारीफ़ से बहुत खुश होती हैं, उस पर मुझे तो अपने रूपवती होने का बहुत ही घमण्ड था। अतएव उसकी ये बातें मुझे बहुत ही प्यारी लगीं; परन्तु मैंने अपने भीतरी भाव को छिपा कर उससे यही कहा कि मुझमें कौन सा रूप है? अब परमेश्वर ने मुझे किस लायक़ रक्खा है, जो कोई मेरी तारीफ़ करे। इन बेचारों ने मुझे कहाँ देखा था? मुझे इस हालत में हुए डेढ़ वर्ष हो गए, जिसमें किसी को मुँह देखने का भी काम नहीं, इसलिए मेरी बात कोई क्यों करने लगा। यह सब तुम्हारी ही बनावट है। इस पर उसने परमेश्वर की क़सम खाकर कहा—नहीं बाई, मेरी बनाई हुई बात नहीं है। मैं झूठ नहीं बोलता। उन्होंने तेरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग की शोभा मेरे सामने की है। यह कह कर वह मेरे सर्वाङ्ग की शोभा अलग-अलग करने लगा। मैंने ऊँची साँस लेकर गर्दन नीची कर ली। वह पढ़ा कर चला गया। दूसरे दिन उसने फिर वही चर्चा छेड़ी; और गोकुल-

दास नाम के एक धनी पुरुष का नाम लेकर कहा कि वे मुझसे मिलने को बहुत आतुर हैं।

मैंने कहा—उनसे मेरा क्या मतलब ?

उसने उत्तर दिया—मतलब एक दूसरे से क्या होता है ? योंही आपस में मिलते चले आए हैं। ऐसा कौन सा वृक्ष है, जिसे हवा न लगी हो ! सैकड़ों स्त्रियों के नाम मैं गिना सकता हूँ, जिनका किसी न किसी से ताल्लुक़ है। जिसमें तुम्हारी जैसी अवस्था में और तुम्हारे जैसे रङ्ग-रूप वाली क्या बच सकती है ? यह काम देवी-देवताओं से भी नहीं बचा। शास्त्र सब इन्हीं बातों से भरे पड़े हैं। साक्षात् भगवान् कृष्ण ने भी यही काम किए हैं। अभी गोपाल-सहस्त्रनाम में "चोरजार शिखामणिः" पाठ तुमने पढ़ा ही है। फिर पुराणोक्त इस तरह की बातें कह कर अनेक उदाहरण देने लगा; और वर्त्तमान में मेरी स्थिति की स्त्रियों के वृतान्त सुना कर कहने लगा—विधवाएँ प्रायः छोटे-छोटे आदमियों से ख़राब होती हैं; अतएव कोई अच्छे इज्ज़तदार आदमी के गले बँधना कितना अच्छा है ? मैं तो तुम्हारा शुभचिन्तक हूँ, इसलिए तुमसे इतना कहता हूँ; नहीं तो तुम्हें जो अच्छा लगे, सो करो।

मैंने गर्दन नीची कर के उत्तर दिया—मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। उस दिन भी फिर वह उसी तरह चला गया; और पाँच-सात रोज़ फिर चर्चा न चलाई।

हमारे घर में कई ब्राह्मणियाँ और एक-दो नाइनें भी आया-जाया करती थीं, जिनका काम शहर भर के स्त्री-पुरुषों की निन्दा स्तुति

और उनके चरित्रों की चर्चा करना ही था। मैं उन लोगों की बातें बड़े शौक़ से सुना करती। उनमें से एक नाइन एकान्त का अवसर पाकर मेरे दुख में हमदर्दी दिखाती हुई, इस तरह कहने लगीः—

राधाबाई, तुमको जब मैं देखती हूँ, मेरा जी भर आता है; और मन में कहती हूँ कि परमेश्वर के घर में न्याय नहीं है; क्योंकि तुम्हारी जैसी साक्षात् लक्ष्मी को इस तरह के दुख में डाल दिया। तुम्हारे रूप-रङ्ग पर भी उसे तरस न आया। अगर उसे यही करना था, तो फिर इतना रूप ही क्यों दिया! इस तरह कहते हुए उसकी आँखों में पानी भर आया, जिससे मेरे हृदय पर भी बड़ा असर पड़ा। फिर वह आँसू पोंछ कर कहने लगी—एक मैं ही क्या, नगर भर के स्त्री-पुरुष तुम्हारे लिए बहुत अफ़सोस करते हैं। कल ही का ज़िक्र है, सेठ नथूलाल जी से बातें हो रही थीं, जिसमें तुम्हारा प्रसङ्ग आते ही वे बड़ा अफ़सोस करने लगे। तुम्हारे रूप-रङ्ग की तारीफ़ करते ही रहे; और यह भी कहा कि ऐसी अप्सरा-तुल्य स्त्री को उस ईश्वर ने ऐसा कठोर दुःख क्यों दिया!

मैं—नथूलाल जी कौन हैं?

नाइन—नथूलाल जी बसुमतीबाई के ससुर हैं। वे बड़े ही शौक़ीन और रँगीले आदमी हैं। मेरे साथ वे अपने दिल की बातें ख़ूब करते हैं। कुछ भी छिपा नहीं रखते। जिन-जिनसे उनका ताल्लुक़ है, वह सब मुझे मालूम है।

मैं—वे इतने बड़े आदमी होकर भी यह काम करते हैं?

नाइन—उम्र तथा इज़्ज़त में बड़े होने से क्या शौक़ छूट जाता

है ? जिसके एक-दो आशना नहीं, वह बड़ा आदमी ही क्या ? तीस-पैंतीस वर्ष के मर्द का क्या बिगड़ता है ? उस पर नथूलाल जी का शरीर तो बहुत हृष्ट-पुष्ट है। अभी तक तो नित्य नए सौन्दय का उपभोग करते हैं।

मैं—वसुमती बाई की सास भी तो अच्छी रूपवती है ? फिर जवान बेटों के सामने ये काम करते उन्हें शर्म नहीं आती ?

नाइन—चार-पाँच बालक होने के बाद स्त्री इस लायक़ नहीं रहती कि रसिक पुरुष उसे पसन्द कर सकें ; और ऐसे काम करने वाले बेटे-बेटियों को थोड़े ही दिखाते हैं ? परोक्ष-रूप से उन्हें मालूम भी पड़ जाय, तो उस बात की वे पर्वाह नहीं करते। उस दिन नानूराम की बेटी सोनाबाई को मैं उनके पास उनकी बैठक में ले गई थी। ऊपर से किसी काम के लिए घर से नौकर आ गया ; और सब दृश्य देख गया। उसने वापिस लौट कर सब वृतान्त उनकी स्त्री से कह दिया। इस पर आपस में कुछ कहा-सुनी होकर रह गई। इसके सिवाय और क्या होता ?

मैं—सोनाबाई तो विधवा है न ?

नाइन—हाँ, विधवा तो है ही। बिधवा है तो क्या हुआ ? ज्यादा तो विधवाएँ ही आती हैं। क्या विधवाओं के हाथ-पैर नहीं होते ? ऐसे शौक़ीन लोग न हों, तो वे बेचारी कहाँ जायँ ? ऐसा कौन सा घर है, जिसमें विधवाएँ नहीं ? क्या वे चुपचाप बैठी रहती हैं ?

मैं—तो क्या सभी ख़राब होती हैं ?

नाइन—ख़राब क्या होना है ? इस काम से कौन बचा है ? देवी-देवता तक इस काम से नहीं बचे, तो मनुष्य की क्या शक्ति है ? तुम अभी तक भोली हो, तुम्हें अभी इन सब बातों की क्या ख़बर। सैकड़ों के तो मैं नाम-पते तक अभी गिना सकती हूँ। अधिकतर छोटे-छोटे आदमियों से ख़राब होती है, क्योंकि अपनी बराबरी वालों का उन्हें मौक़ा नहीं मिलता। इसलिए कोई रसोइए से, कोई नौकर से, कोई पाठ-पूजा करने वाले से, कोई चिट्ठियाँ लिखने वाले से, कोई सवारी हाँकने वाले से और कोई नाई-सुनार आदि से ख़राब होती हैं; क्योंकि इन लोगों से सम्बन्ध हो जाने पर बात के ज़ाहिर होने का कम अन्देशा रहता है; और घर के घर में छिपी रह जाती है; परन्तु बड़े आदमी से सम्बन्ध हो जाने से बात प्रकट होकर फ़ज़ीहत हो जाती है। इसलिए वे घर ही में जो मिले, उसी से सम्बन्ध करके तपन बुझाती हैं। बेचारी छोटी उम्र वाली बाल-विधवाओं का तो कहना ही क्या है, चालीस-पचास वर्ष की आयु हो जाने पर भी यह काम नहीं छूटता।

मैं—क्या कहती हो ? ये बड़ी-बड़ी अवस्था वाली भी कुकर्म करती हैं ?

नाइन—क्या तुमको इसमें कुछ शंका है ? हनुमानप्रसाद जी की विधवा को कितने वर्ष आए होंगे ? क्या पैंतालीस से कम हैं ? तीस वर्ष का तो इसका सबसे बड़ा लड़का है। वह नित्य-

प्रति दोपहर के समय कड़ी धूप में सवारी पर चढ़ कर मस्तनाथ जी महाराज के पास किस वास्ते जाती हैं ?

मैं—क्या वहाँ वे खोटे काम के लिए जाती है ?

नाइन—तो क्या एकान्त में सत्सङ्ग करने पधारती हैं? सत्सङ्ग क्या और लोगों के सामने सवेरे-शाम नहीं हो सकता? मस्तनाथ जी महाराज ने एक इन्हीं को ही नहीं, कितनी ही विधवाओं का उद्धार किया है। कभी दोपहर के समय चुपचाप वहाँ चलो, तो तुम्हें तमाशा दिखाऊँ। उनकी गुफ़ा का ढङ्ग देखते ही बनता है। केवल हनुमानप्रसाद जी की ही विधवा क्यों, बेनीराम जी की बहू को तुम जानती ही हो, जिनके गोविन्दनारायण गोद हैं। इसने कितने ही तीर्थों में फिर कर साधु-संन्यासियों को पवित्र किया है; और अब उस तालाब वाले बाबा जी के पास नित्य जाती है। असल में ये बड़ी अवस्था वाली विधवाएँ अपने घर में कुटुम्ब के सामने कर नहीं सकतीं, तब साधू-फ़क़ीरों की शरण लेती और अपनी कामाग्नि को शान्त करती हैं।

मैं—जब सभी विधवाएँ इस तरह व्यभिचार में पड़ी हुई हैं, तो क्या उनके गर्भ नहीं रहते ?

नाइन—गर्भ क्यों नहीं रहते ? स्त्री-पुरुष से जीव की उत्पत्ति तो अवश्य ही होगी, विधवा होने से प्रसव थोड़े ही बन्द होता है। छोटी अवस्था वाली विधवाओं के गर्भ रहने से तो उनकी माँ-बहिनें अथवा हम जैसी मददगारें बात की बात में निकलवा कर सफ़ाई कर देती हैं; और बड़ी उम्र वाली तथा बड़े घराने को

विधवा स्त्रियों को गर्भ रहने पर वे स्वयं तीर्थादि में जाकर अपना निपटारा करती हैं। जो समझदार होती हैं, वे पहले ही से बन्दोबस्त करा लेती हैं। संसार का काम इसी तरह चलता है। जिस बात की आवश्यकता आ पड़ती है, उसका बन्दोबस्त आप ही आप हो जाता है। हज़ारों काम सदा इस तरह के होते रहते हैं। कभी किसी को कुछ पता भी नहीं चलता। तुम अभी तक नादान हो। संसार की हवा अभी तक नहीं लगी है, इसी वास्ते इन बातों ताज्जुब करती हो; परन्तु तुमको भी ये सब काम करने ही होंगे। किसी बड़े आदमी या अपनी बराबरी वाले से सम्बन्ध जोड़ोगी, तो सुख पाओगी; नहीं तो कीचड़ में फँसना पड़ेगा। मैं जो कहती हूँ, तुम्हारे फ़ायदे के लिए कहती हूँ। यदि मेरा कहना मानोगी, तो फ़ायदा उठाओगी।

मैं—मैं तो इन कामों से बहुत डरती हूँ। मुझे आश्चर्य होता है कि ये लोग ऐसे भयानक कर्म कैसे करते हैं?

नाइन—इस समय तो तुम जरूर डरती हो; परन्तु थोड़े समय में मैं बताऊँगी कि तुम्हारा डर कहाँ गया। जिस तरह पुरुष बिना स्त्री के नहीं चल सकता, उसी तरह स्त्री को भी पुरुष की अत्यन्त आवश्यकता रहती है। इसलिए स्त्री को एक पुरुष के साथ तो जरूर ही सम्बन्ध रखना चाहिए, जो समय-कुसमय, दुख-सुख में सहायक हो। अपने प्रेम-पात्र (पुरुष) बिना दिल की बात ही किससे करे?

मैं नाइन की यह बात सुन कर उठ खड़ी हुई; और वह भी वहाँ से चली गई; परन्तु उसकी बातें मेरे दिमाग़ में चक्कर लगाती ही रहीं; और विस्मय के साथ मैं उन बातों पर विचार करती हुई कर्त्तव्य-विमूढ़ हो गई।

शाम को मैं अपनी छत पर बैठी हुई नाइन की बातों तथा अपनी स्थिति पर विचार कर रही थी। उन पर मुझे किसी प्रकार का शक़ तो था ही नहीं; क्योंकि इसी तरह की बातें मैंने अपनी मौसी द्वारा देखी-सुनी थीं; और उसका भी चरित्र देख चुकी थी। मेरा दिल कभी कुकर्म करने वाले स्त्री-पुरुषों की तरफ़ घृणा करता था, कभी स्वयं सांसारिक भोगों की इच्छा के वश हो, उन सुनी हुई बातों में विशेष प्रीति बढ़ाता था। उनमें से प्रत्येक की आलोचना करके मन ही मन किसी को सराहती और किसी का तिरस्कार करती थी। इस तरह मेरे मन में अनेक प्रकार की तरङ्गें उठ रही थीं कि मेरी दृष्टि पड़ोस के मकान पर पड़ी, जिसमें मेरे चाचा रहते थे। क्या देखती हूँ कि चचा और चाची अपने कमरे में निशङ्क किलोल कर रहे हैं। उनका कमरा मेरी छत से नीचा तथा रोशनी खूब तेज़ होने से मैं उन्हें भले प्रकार देख सकती थी; परन्तु वे अँधेरा होने के कारण मुझे न देख सकते थे। बड़ी देर तक मैं उनके तमाशे देखती रही। अन्त में मेरा चित्त चञ्चल हो उठा। अतः वहाँ ज्यादा देर न ठहर सकी; और नीचे आकर चद्दर तान दिल को मसोस कर रोती हुई, खाट पर पड़ रही। दूसरे दिन दोपहर को ब्राह्मणी आई। उससे अकेले में मेरी

बातचीत होने लगी। उसने कहा—राधाबाई, आज तो तुम्हारे चेहरे पर बहुत उदासी दीख पड़ती है ?

मैं—नहीं, कोई उदासी नहीं है। मैं तो सदा की ही तरह हूँ।

ब्राह्मणी—उदासी और ख़ुशी छिपाने से छिप थोड़े ही सकती है; परन्तु राधा बाई ! दुख करने और उदास रहने से क्या होता है। परमेश्वर जो करता है, उसे ख़ुशी के साथ मञ्जूर करना ही पड़ता है। यह बात एक घर में नहीं, एक गाँव में नहीं और एक-दो दिन का नहीं; बल्कि जन्म भर का दुख है। इस तरह उदास रहने से उम्र कैसे कटेगी ? तुम्हारी जैसी अवस्था वाली तुम्हारी तरह कोना पकड़ कर कौन बैठती है ? सब खाती-पीती और फिरती-घूमती हैं। देव-दर्शन के बहाने बाहर भी आती-जाती हैं। अतएव उसी तरह तुम्हें भी दिल को कुछ तसल्ली देकर दिन बिताने चाहिए। अभी तुम्हारे खाने-पीने के दिन हैं। तुमको उदास देख कर तुम्हारे माता-पिता के दिल पर कैसी सख़्त चोट लगती है ?

मैं—क्या मुझे परमेश्वर ने संसार में मुँह दिखाने लायक़ रक्खा है। मैं तो यही समझती हूँ कि इस मनुष्य-जन्म से पशु-पक्षी की योनि लाख दर्जे अच्छी है। यदि मुझे परमेश्वर जल्द उठा ले; तो मैं निहाल हो जाऊँ।

ब्राह्मणी—बहिन ! मरना-जीना किसी के अख़्तियार में नहीं है। ये बातें सोचनी फ़ुज़ूल हैं। जगत् में छोटी-बड़ी इतनी विधवाएँ हैं, क्या वे किसी को अपना मुँह नहीं दिखातीं। सब

इसी तरह खाती-पीती और मौज उड़ाती हैं। एक पुरुष के बदले अनेक पुरुष करती हैं।

मैं—इन बातों से सुख थोड़े ही होता है।

ब्राह्मणी—बहिन! यह बात कैसे कहती हो! सुख क्यों नहीं होता? जो किसी अच्छे मनुष्य से सम्बन्ध करती है, उसको तो सुख ही होता है; और जिसको मनुष्य की पहिचान नहीं, उसको हर हालत में तकलीफ़ ही होती है।

मैं—ऐसे भले आदमी कौन फालतू बैठे हैं, जो विधवाओं से सम्बन्ध करें? क्या उनके अपनी स्त्रियाँ नहीं हैं?

ब्राह्मणी—दुनिया में कितनी ही विधवाएँ हैं, वे जो व्यभिचार करती हैं, पुरुषों ही से तो करती हैं, कुछ दीवारों से तो करती ही नहीं; और पुरुष के लिए तो अनेक स्त्रियाँ भोगने में कोई ऐब ही नहीं है। ज़रा मेरे साथ ऊपर चलो, तो तुम्हारे चाचा जी की ही लीला दिखाऊँ।

मैं—मेरे चाचा-चाची के साथ बैठे होंगे; इसमें नई बात कौन सी है?

ब्राह्मणी—यही तो तुम्हारा भोलापन है। इस समय दोपहर में तुम्हारी चाची घर में कहाँ हैं? वह तो अपने पीहर गई हुई हैं। ब्राह्मण की विधवा छोकरी, जो घर में काम-काज किया करती है, दोपहर के समय तुम्हारी चाची बन कर चाचा के साथ मौज उड़ाया करती है। ज़रा ऊपर चलो तो सही!

मैं उसके साथ ऊपर गई; और छिप कर चाचा के कमरे की

मैं—ससुर आदि बड़े-बूढ़ों से सम्बन्ध करने से उनको क्या सुख मिलता है ?

ब्राह्मणी—जब घर के स्वामी से ही प्रेम हो जाता है, तो वह सब घर की स्वामिनी हो जाती हैं। जो चाहे कर सकती हैं। उसी का हुक्म चलता है—गहने, कपड़े और धन की कुछ कमी नहीं रहती। यहाँ तक कि घर में वह चाहे जिसे रक्खे और चाहे जिसे निकलवा दे। देखो न, मथुराबाई ने अपने देवरों तक को घर से निकलवा दिया। खाने-पहनने और मौज उड़ाने में उसे किसी तरह की बाधा नहीं है।

मैं—तो फिर सब विधवाएँ अपने घर वालों से ही सम्बन्ध क्यों नहीं कर लेतीं ?

ब्राह्मणी—सब मनुष्य भी तो एक से नहीं होते। जो सीधे-सादे और भोंदू होते हैं, वे बेचारे इन बातों की तरफ़ ध्यान ही नहीं देते। उनकी तरफ़ से घर की विधवाएँ चाहे जिसके साथ धूल खायँ, वे इस बात का ख्याल भी नहीं करते; और उनकी स्त्रियाँ विधवाओं की तरफ़ से उनका दिल इतना खट्टा कर देती हैं कि वे उनके दुश्मन हो जाते हैं। इस कारण अधिकतर विधवाएँ घर वालों से सम्बन्ध न कर दूसरों के साथ ही ख़राब होती हैं। जिसका नसीब अच्छा होता है, उसी को अपनी बराबरी का पुरुष मिलता है; नहीं तो नीच लोगों के फन्दे में सब फँसी रहती हैं ?

मैं—बहिन, इस तरह के खोटे काम करने वाले अपना पीछा कहाँ छुड़ाएँगे ?

ब्राह्मणी—खोटे-खरे का हिसाब तो पीछे होगा। यहाँ पर तो अपना-अपना सुख और सुभीता सब कोई देखते हैं। जिसको जिससे सम्बन्ध करने में सुख और सुभीता मिलता है, वह उसी से कर लेता है। आगे की किसे मालूम, कौन देख आया है ?

मैं—हमारी जाति में जितने कुकर्म होते हैं, क्या तुम्हारी जाति में भी इसी तरह होते हैं ?

ब्राह्मणी—अरे बाई, हमारी जाति की तो कथा ही छोड़ दो। तुम लोगों में निन्दा और फ़जीहत का भय तो है, हमारी जाति में वह भय भी नहीं ; क्योंकि जब सब एकसार हैं, तो किसी की निन्दा और फ़जीहत कौन करे। वहाँ तो इस बात में कोई ऐब ही नहीं समझा जाता। स्त्रियाँ आपस में लड़ती हैं, तो एक-दूसरे को व्यभिचारिणी की गालियाँ ही नहीं देतीं; किन्तु "टकहाई राँड़" की गाली देती हैं, जिसका अर्थ या तो "मूल्य से सतीत्व बेचने वाली" या " थोड़ी कीमत वाली" होता है। इसीसे तुम अनुमान कर लो कि हमारी जाति का क्या हाल है। हमारी जाति में अनेक मुसलमानिनें हो गईं। कई मुसलमानों और विदेशियों के साथ भाग गईं; और कितनी अपने घर में रहती हुई मुसलमानों के साथ खाती-पीती हैं।

मैं—उनको क्या कोई अपनी जाति का नहीं मिलता ?

ब्राह्मणी—इस काम में जात-पाँत कुछ नहीं देखी जाती। जिससे एक बार मन लग गया, फिर छूट नहीं सकता। अकाल-पीड़ितों को जिस तरह खाने-पीने में किसी वस्तु से ग्लानि और परहेज़ नहीं होता; और उनकी भूख कभी नहीं मिटती, वही हाल विधवाओं का है। बेचारी विधवाओं ही की क्या कहें, सुहागिनें तो इनसे भी आगे पैर रखती हैं।

मैं—सुहागिनों के तो पति होते हैं, फिर वे क्यों धूल खाती हैं?

ब्राह्मणी—सो बात अपनी जेठानी से पूछो। तुम्हारा जेठ छोटा था, वह बड़ी थीं। बालपने से ही इस लत में पड़ गई। अब वह चाट छूटती ही नहीं। इसी तरह वामनदास जी की बहू का पति जब परदेश में रहता था, तो उसकी चिट्ठी पढ़ने-लिखने के लिए केवलराम जाता था। वह उसी से लग गई; और जब गर्भ रह गया, तो बीमारी का बहाना ले, तार देकर पति को बुला लिया।

मैं—तब तो संसार में सती रहने वाली कोई भी न होगी?

ब्राह्मणी—ऊपर से सभी पतिव्रता और सती सीता बनी रहती हैं; परन्तु हम लोगों से किसी की कोई बात छिपी नहीं। भला इस काम से कोई बच सकता है? क्या स्त्री क्या पुरुष इस काम से कोई नहीं बचा। जब तक परदे की ओट में ढके हुए हैं, तब तक सब अच्छे ही हैं। कोई दो दिन आगे कोई दो दिन पीछे, अन्त में सबको संसार-व्यवहार करने ही पड़ते हैं। जो बुद्धिमानी से काम करता है, वह सुख पाता है; नहीं तो दुख तो

रक्खा ही है। इन बातों को देख कर ही तो मैं तुमसे कहती हूँ कि दिल को खुलासा करो ; और संसार की हवा खाओ।

मैं—तुम्हारा मतलब मैं नहीं समझी।

ब्राह्मणी—तो लो, अब खुलासा कहती हूँ। तुम्हारे लिए यों तो मुझे कई लोग कहते हैं ; परन्तु मैंने सबको झिड़क दिया। हाँ, एक आदमी मुझे तुम्हारे लिए अवश्य योग्य प्रतीत हुआ। उसी से मैं सम्बन्ध करने के लिए ज़ोर देकर तुमसे कहती हूँ।

मैं—भला मेरे लिए तुमसे लोग क्यों कहते हैं ? मेरी क्या हालत है ; और मैं किस योग्य हूँ, यह बात लोग नहीं जानते ? ख़ैर, यह तो बताओ तुमको मेरे लिए किसने कहा ?

ब्राह्मणी—छिछोरे मनुष्यों का तो तुम्हारे सामने नाम लेने से फ़ायदा ही क्या ? जो मिलते पीछे हैं ; और ढिंढ़ोरा पीटकर दुनिया में बदनामी पहले उड़ाते हैं ? अपनी इज्ज़त तो कुछ रखते ही नहीं; और दूसरे को भी बेइज़्ज़त करते हैं। उस दिन बेचारी नत्थी को एक रॉड फूसाराम के पास ले गई। जब वह उसके मकान से बाहर निकली, तो तीन-चार गुण्डों ने उसकी बहुत बेइज़्ज़ती की और जो कुछ उसके पास था, वह सब लूट लिया। हाथों की चूड़ियाँ भी निकाल लीं। इस तरह के कच्चे आदमियों की तरफ़ मैं रुख़ भी नहीं करती। मैं तुम्हें जिससे मिलाऊँगी, वह ऐसा पक्का इज़्ज़तदार और सच्चा शख़्स है कि यह बात मेरे, उसके और तुम्हारे सिवाय चौथे के कान तक भी न पहुँचेगी। उस एक ही पुरुष से तुम्हारी उम्र भर निभ जायगी। किसी दूसरे का मुँह ताकने

की आवश्यकता न होगी। सुख-दुख में तुम्हारा साथ देगा। व शख्स मुफ्तखोरों की तरह नहीं है, जो सुख में तो साथ दे; कि जब पाप बँध जाय, तब छोड़ कर अलग हो जाय। तुम नाम खुलाना चाहती हो, तो लो बताए देती हूँ। उनका नाम हरभगव है। तुम्हारे ही मुहल्ले में रहते हैं। कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं

मैं—हैं! हरभगवान जी तो मेरे पिता जी की ही बिराद में पाँच-सात पीढ़ी में लगते हैं। क्या वे भी मुझ पर पाप-द रखते हैं?

ब्राह्मणी—इन कामों में नाते-रिश्ते की आड़ नहीं लग सकत यह बात मैं पहले कह चुकी हूँ। तुम तो पाँच-सात पीढ़ियों व कहती हो, मैं चाचा-ताऊ और मामा-फूफा के बेटे-बेटियों के सम्बन के कई उदाहरण बता सकती हूँ। मैं तो तुम्हारी भलाई के लि इतना कहती हूँ; नहीं तो मुझे क्या पड़ी है, जो तुम्हें दबाऊँ?

मैं—मुझे तो ये काम अच्छे नहीं लगते।

ब्राह्मणी—अच्छी बात है। तुम्हारी इस तरह निभ जाय, त बहुत ही खुशी की बात है; परन्तु ऐसा न हो कि अपने सोने जै शरीर को कहीं कीचड़ में डाल कर बर्बाद कर दो! यह कह क वह चली गई।

मेरे दिल का हाल प्रथम दिन से भी अधिक खराब हो रह था। न मालूम मेरे पीछे इतने लोग क्यों पड़े हुए हैं। नित्य न बातें सुनने में आती हैं। कुछ अक्ल काम न करती। इन्ह बातों में मेरा क्षुब्ध चित्त समुद्र में नाव की भाँति, डावाँ-डोल ह

हा था। रात को नींद न आई। सुनी हुई बातों में से कभी किसी का चित्र सामने आता था; और कभी किसी का। बड़ी विचित्र अवस्था हो रही थी। दो-चार दिन इसी हालत में निकल गए। एक दिन मोहन जब मुझे पढ़ाने आया, तो पढ़ना शुरू करने से पहले ही यह नई खबर सुनाई कि एक बाल-विधवा ब्राह्मणी तीन-चार दिन से घर से ग़ायब है। न मालूम किसके साथ कहाँ गई? पिछले दिनों में उसका चाल-चलन बुरा हो रहा था; और एक बार दो-तीन दिन ग़ायब रह कर घर लौट आई थी; परन्तु अबकी बार चार रोज़ हो गए, वह वापस नहीं लौटी। इसलिए किसी मुसलमान के साथ भाग जाने का सन्देह होता है। इसी प्रसङ्ग को लेकर उसने फिर से चर्चा शुरू कर दी और उस विषय की बातों के सिलसिले में शास्त्रों की कथाओं का प्रसङ्ग ले आया। कृष्ण-लीला की आलोचना होने लगी। मुझे अकस्मात् स्मरण हो आया कि आज रात को हमारे मकान के पीछे वाले नौहरे में श्रीकृष्णलीला का रास होने वाला है। मैंने मोहन से कहा कि आज मैं अपनी छत से अच्छी तरह रास देखूँगी। मोहन ने कहा—रास देखने का तो मुझे भी बड़ा चाव है, कहो तो मैं भी आ जाऊँ। मैंने कहा—अच्छा, आ जाना। रात के आठ बजे दो-एक औरतों को साथ लेकर मैं छत पर जा बैठी। थोड़ी देर बाद मोहन भी आ गया। नौ बजे के लगभग रास शुरू हुआ। राधा-कृष्ण के स्वरूप बहुत ही सुन्दर और मनोहर थे। उनका नृत्य, गायन और हाव-भाव दिल पर बड़ा प्रभाव डालता था। प्रथम

की आवश्यकता न होगी। सुख-दुख में तुम्हारा साथ देगा। वह शख़्स मुफ्तख़ोरों की तरह नहीं है, जो सुख में तो साथ दे; किन्तु जब पाप बँध जाय, तब छोड़ कर अलग हो जाय। तुम नाम ही खुलाना चाहती हो, तो लो बताए देती हूँ। उनका नाम हरभगवान है। तुम्हारे ही मुहल्ले में रहते हैं। कहीं दूर जाने की जरूरत नहीं।

मैं—हैं! हरभगवान जी तो मेरे पिता जी की ही बिरादरी में पाँच-सात पीढ़ी में लगते हैं। क्या वे भी मुझ पर पाप-दृष्टि रखते हैं?

ब्राह्मणी—इन कामों में नाते-रिश्ते की आड़ नहीं लग सकती, यह बात मैं पहले कह चुकी हूँ। तुम तो पाँच-सात पीढ़ियों की कहती हो, मैं चाचा-ताऊ और मामा-फूफा के बेटे-बेटियों के सम्बन्ध के कई उदाहरण बता सकती हूँ। मैं तो तुम्हारी भलाई के लिए इतना कहती हूँ; नहीं तो मुझे क्या पड़ी है, जो तुम्हें दबाऊँ?

मैं—मुझे तो ये काम अच्छे नहीं लगते।

ब्राह्मणी—अच्छी बात है। तुम्हारी इस तरह निभ जाय, तो बहुत ही खुशी की बात है; परन्तु ऐसा न हो कि अपने सोने जैसे शरीर को कहीं कीचड़ में डाल कर बर्बाद कर दो! यह कह कर वह चली गई।

मेरे दिल का हाल प्रथम दिन से भी अधिक ख़राब हो रहा था। न मालूम मेरे पीछे इतने लोग क्यों पड़े हुए हैं। नित्य नई बातें सुनने में आती हैं। कुछ अक़्ल काम न करती। इन्हीं बातों में मेरा क्षुब्ध चित्त समुद्र में नाव की भाँति, डावाँ-डोल हो

रहा था। रात को नींद न आई। सुनी हुई बातों में से कभी किसी का चित्र सामने आता था; और कभी किसी का। बड़ी विचित्र अवस्था हो रही थी। दो-चार दिन इसी हालत में निकल गए। एक दिन मोहन जब मुझे पढ़ाने आया, तो पढ़ना शुरू करने से पहले ही यह नई खबर सुनाई कि एक बाल-विधवा ब्राह्मणी तीन-चार दिन से घर से ग़ायब है। न मालूम किसके साथ कहाँ गई? पिछले दिनों में उसका चाल-चलन बुरा हो रहा था; और एक बार दो-तीन दिन ग़ायब रह कर घर लौट आई थी; परन्तु अबकी बार चार रोज हो गए, वह वापस नहीं लौटी। इसलिए किसी मुसलमान के साथ भाग जाने का सन्देह होता है। इसी प्रसङ्ग को लेकर उसने फिर से चर्चा शुरू कर दी और उस विषय की बातों के सिलसिले में शास्त्रों की कथाओं का प्रसङ्ग ले आया। कृष्ण-लीला की आलोचना होने लगी। मुझे अकस्मात् स्मरण हो आया कि आज रात को हमारे मकान के पीछे वाले नौहरे में श्रीकृष्णलीला का रास होने वाला है। मैंने मोहन से कहा कि आज मैं अपनी छत से अच्छी तरह रास देखूँगी। मोहन ने कहा—रास देखने का तो मुझे भी बड़ा चाव है, कहो तो मैं भी आ जाऊँ। मैंने कहा—अच्छा, आ जाना। रात के आठ बजे दो-एक औरतों को साथ लेकर मैं छत पर जा बैठी। थोड़ी देर बाद मोहन भी आ गया। नौ बजे के लगभग रास शुरू हुआ। राधा-कृष्ण के स्वरूप बहुत ही सुन्दर और मनोहर थे। उनका नृत्य, गायन और हाव-भाव दिल पर बड़ा प्रभाव डालता था। प्रथम

बाँसुरी-लीला हुई। वह पूरी होने पर लोगों की भीड़-भाड़ कम हो गई। हमारे पास जो स्त्रियाँ बैठी थीं, वे भी नींद के मारे अपने-अपने स्थान पर जाकर सो गईं। सिर्फ़ मैं और मोहन दो ही रह गए। फिर मान-लीला शुरू हुई। उसमें राधा और कान्ह के पारस्परिक व्यवहार और हाव-भाव से मेरे चित्त पर बड़ा अद्भुत असर पड़ता था। जिस समय कृष्ण-राधा की ख़ुशामद करता हुआ उसके चरणों में हाथ लगाता था; और राधा बाँकी भौंएँ करके उसे दूर हटाती थीं, उस समय मेरे हृदय से लम्बी-लम्बी साँसें उठती थीं; और कभी-कभी दिल अपने क़ाबू से निकल जाता था। मोहन बीच-बीच में मेरा ध्यान उन हाव-भावों पर विशेष रूप से आकर्षित करता हुआ, सुलगती हुई आग में फूँकें मारने का काम करता था। जिस समय सखियों ने "इतनो मान न कीजे वृषभानु की दुलारी, तेरे मनाइबे में मोय श्रम भयो है भारी" पद गाकर बीच-बचाव कर राधा को कृष्ण से मिलाया, तो मैं अपने आपको न सँभाल सकी; और मोहन को इच्छित अवसर मिल गया। उसने मेरे साथ मनमानी की। मुझे अपने तनोबदन का कुछ भी होश-हवास न रहा। फिर मैं सावधान हुई, तो मेरे जी में बड़ी ग्लानि और दुख हुआ—हाय! कैसा अनर्थ हो गया; और इच्छा न रहते भी मैं डूब गई! बड़े-बड़े आदमियों के सन्देश आते थे, उन पर मैंने मन न डिगाया; और एक अदने दरिद्री और मूर्खने मुझे भ्रष्ट किया आदि-आदि" विचार कर मैं रोती रही। मोहन डर के मारे वहाँ से खिसक कर न

मालूम कहाँ चला गया ? रोते-रोते बहुत समय बीत गया। आँखों के आँसू भी सूख गए। तब मैं दिल को ढाढ़स देने लगी कि अब पश्चात्ताप करने से क्या होता है। प्रारब्ध में जो लिखा होता है, वह अवश्य होता है। मेरे नसीब में इसी का संयोग बदा था, तो मुझे इससे अच्छा कहाँ से मिलता। इस तरह मन को शान्त किया। दूसरे दिन रात को जागने के कारण दिन भर सोती रही। तीसरे दिन मोहन जब पढ़ाने आया, तब मेरा शोक बहुत कम हो चुका था। अतएव उसको मैंने कुछ भी उपालम्भ न दिया; और सदा की भाँति पढ़ने लगी। इस कारण उसकी धृष्टता बढ़ गई; और फिर कोई सङ्कोच का काम न रहा। अब पढ़ना तो केवल नाममात्र का रह गया वास्तव में एकान्त में रहने का नतीजा जो स्वाभाविक हुआ करता है, वही होता था। इस तरह बहुत दिन बीत गए। मेरा उसके साथ प्रेम बढ़ाने लगा; और चित्त से उदासी दूर हो गई। पहिले मैं मैली-कुचैली रहा करती थी। अब सफ़ाई से रहने लगी। नहाने, धोने और बाल सँवारने की पहले कुछ भी सुध न थी; किन्तु अब सब काम करने लगी। कपड़े भी बढ़िया सफ़ेद पहनने लगी। दो-चार गहने—विधवाओं के पहनने योग्य—पहन लिए। मोहन को भी उसकी दरिद्रता दूर कर साफ़-सुथरा बना लिया। इस तरह के बर्ताव से मेरी माँ के दिल में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ, इसलिए उसने एकान्त में बैठना छुड़ा कर नीचे के घर में अपने सामने बैठने को कह दिया। यह बात यद्यपि मुझे बहुत बुरी लगी और इसके लिए कई बहाने भी किए; परन्तु माँ ने

एक न मानी। असल में मेरी स्थिति के बदल जाने से वे—नाइन और ब्राह्मणी मेरे और मोहन के सम्बन्ध को ताड़ गईं; और उन्होंने मेरी माँ के दिल में भी शक़ पैदा कर दिया। जो हो, दोनों के सुख-भोग में रुकावट पड़ ही गई। इससे मेरे चित्त में बहुत बेचैनी रहती थी। उससे मिलने के लिए अनेक उपाय सोचती रहती। विधवा होने के बाद मैं अपनी ससुराल कभी नहीं गई थी। उनके बुलावे हमेशा आते रहते थे। अतएव अब ससुराल जाने-आने का सिलसिला जारी करना ही मुझे उचित प्रतीत हुआ; क्योंकि घर से बाहर निकले बिना मिलने का कोई अन्य उपाय न दीख पड़ता था, इसलिए मैंने ससुराल जाना शुरू किया; और वहाँ एक कमरा अपने आधीन कर लिया। जब मैं वहाँ जाती, तो मोहन भी पहुँचता। ससुराल वाले मेरे पीहर का आदमी समझ कर किसी प्रकार का शक़ न करते। मोहन के और मेरे सम्बन्ध का शक़ मोहन की स्त्री को हो गया। उसको शान्त रखने के लिए मोहन को गहने-कपड़े विशेष रूप से करवा देने पड़ते थे। इस ख़र्च के लिए मोहन की सहायता मुझे ही करनी पड़ती थी; परन्तु मेरे पास कोई रक़म तो थी ही नहीं, माँ से जो कुछ पाती, वही मोहन को दे देती थी। इससे उसको सन्तोष न होता था। एक दिन उसने कहा—राँड (उसकी स्त्री) बहुत रगड़े-झगड़े करती है। एक-दो भारी गहने बनवाए बग़ैर शान्त न होगी। मेरे पास तो कुछ था ही नहीं, इस बात को मोहन अच्छी तरह जानता था। अतएव उसने फिर मुझे एक बड़े आदमी के पास ले जाकर भारी रक़म

प्राप्त करने का प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसे सुनकर मैं गहरे विचार में पड़ गई; परन्तु कर ही क्या सकती थी। मोहन के बिना मेरा काम न चलता; और उसकी स्त्री को प्रसन्न किए बिना मोहन मुझे मिल न सकता। इसलिए मुझे उसकी बात स्वीकार करनी पड़ी; और इस समय मैं मोहन जहाँ ले गया, वहाँ हो आई। इससे मोहन को ७००) रुपए की प्राप्ति हो गई। इसी तरह और भी दो-तीन बार आवश्यकताओं की पूर्ति करनी पड़ी। यद्यपि मैंने ये काम बहुत ही गुप्त रीति से किए; परन्तु जिन बड़े आदमियों से मैं मिली, वे तथा उनके नौकरों ने मेरा नाम प्रकट कर दिया; क्योंकि वे लोग उच्च घराने की बहू-बेटियों को बुला कर प्रसिद्धि प्राप्त करने ही में अपनी बड़ाई समझते थे। इसलिए लोगों की जबान पर मेरा नाम आने लगा; और बदमाश लोग मेरे चरित्र की समालोचना का ख्याल बना कर गाने लगे, जिससे मैं बहुत दुखी हुई। मोहन के मार्फ़त उन बदमाशों को प्रसन्न करने के लिए मैंने बहुत कुछ खर्च भी किया तथा उनकी ख़ुशामद भी की; परन्तु वे लोग मेरे साथ कुकर्म करना चाहते थे; इससे मेरा खर्च तथा ख़ुशामद फ़ुजूल गई और बदनामी उसी तरह होती रही। उन दूतियों (ब्राह्मणी तथा नाइन) ने मेरी माँ को मेरे गीत गाए जाने की ख़बर दी। इस पर मेरी माँ ने मोहन का मेरे पास आना और मुझे ससुराल भेजना बन्द कर दिया। तब मैं मोहन से मिले बिना बहुत ही दुखी और उदास रहने लगी, मानो किसी का पति परदेश चला गया हो। माँ ने मेरे दिल का हाल जान लिया; परन्तु बदनामी

के कारण उसने मेरी उदासी की कुछ भी पर्वाह न की। तब मैंने पेट दुखने का बहाना कर, भोजन छोड़ दिया। एक दिन तो माँ ने इसकी भी पर्वाह न की। दूसरे दिन उसने भोजन के लिए मुझसे बहुत कहा-सुनी की; पर मैंने न मानी। जब तीसरे दिन मैंने कुछ न खाया, तो माँ घबराई। पुत्री-प्रेम के वश होकर मेरा दुख सहन न कर सकी; और रोकर कहने लगी—देख बेटी, तू इस तरह ज़िद करती है, सो ठीक नहीं। मैं तो तेरे ही भले के लिए सब कुछ करती हूँ। दुनिया की बदनामी लेना ठीक नहीं।

मैं—मैं तुमको क्या कहती हूँ। मुझे भूख नहीं है। जबरदस्ती कैसे खाऊँ?

माँ—भूख कहाँ गई? अभी मोहन आने लगे, तो भूख लग जाय; परन्तु तुमको कुछ विचारना चाहिए। तुम बालक नहीं हो, जो इतनी ज़िद कर रही हो।

मैं—(रोकर) मैं मोहन को बुलाने को क्यों कहूँ? मेरी तरफ़ से वह कुएँ में पड़े। वह मेरा भाई थोड़े ही लगता है?

माँ—ख़ैर, तुम नहीं बुलातीं, तो न सही। मैं बुला लूँगी। चलो, भोजन तो करो। जिनके करम फूट जाते हैं, उनकी बदनामी होती ही है।

मैं—संसार में बदनामी के सिवाय रक्खा ही क्या है? कोई मनुष्य किसी का काम करे, तो झट उसकी बदनामी उड़ा देते हैं। कोई किसी से बोला कि उसके साथ अनुचित सम्बन्ध का कलङ्क लगाया। बेचारा मोहन कितना भला आदमी है। मुझे बहिन

की तरह मानता है ; परन्तु उसी के साथ मेरी बदनामी करते हैं। उनका सत्यानाश हो जाय, जो इस तरह निर्दोषियों पर लाञ्छन लगाते हैं। संसार में आदमी के बिना कैसे काम चले। अनेक तरह के काम हैं। बिना आदमी के बाज़ार से कोई चीज़ कैसे मँगाए। यदि कोई सन्देशा कहलाना हो, तो समझदार आदमी की ज़रूरत पड़ती है। अपने तो पैर टूटे हुए हैं। आदमी के बिना एक मिनिट भी नहीं चलता। यदि कोई समझदार आदमी किसी को मिल जाता है, तो लोग उससे ईर्ष्या करते हैं; और खोटी-खरी बातें बनाते हैं। इस तरह की बातों से डर कर तो इस संसार में निर्वाह ही नहीं हो सकता।

माँ—नहीं बेटी, लोगों से डरने की क्या बात है। अपना मन शुद्ध चाहिए। फिर लोग पड़े झख मारें। जो तेरी निन्दा करें, वे बड़े ही नीच और बेईमान हैं। सूर्य के सामने धूल फेंकने से उनके ही सिर पर पड़ती है। तुम अपने सत्य पर खड़ी हो। तुम्हारा कोई क्या बिगाड़ सकता है।

यह कह कर माँ ने मुझे छाती से लगा लिया। मोहन फिर आने लगा; और हम में फिर उसी तरह छनने लगी।

मेरी बदनामी ससुराल वालों ने भी सुन ली; और मेरी सास ने गुप्त रीति से मेरी माँ से मुझे सासुरे ही रखने के लिए कहलाया। जिस पर माँ ने उत्तर दिया कि मैं उसे अलग नहीं कर सकती। अनन्तर मेरी सास ने फिर कहलाया कि उसे घर से बाहर कहीं भी न निकलने दें; और मोहन के पास न बैठने दें।

तब तो मेरी माँ ने क्रोध में आ बहुत सख़्त उत्तर भेजा—मेरी बेटी घर से बाहर पैर भी नहीं रखती, न किसी से नज़र मिला कर बात ही करती है। तुम इसकी बदनामी करते हो, सो तुम जानो और तुम्हारी करनी जाने। जो जैसा होता है, उसको सब वैसे ही दीखते हैं। हमारे घर में तो कोई भी कुमार्गी नहीं है। तुम्हारा जो हाल है, उसे सब जगत् जानता है।

इस विषय में मेरी ससुराल और पीहर वालों में बड़ी खींचा-तानी हो गई; और मेरा मन भी ससुराल वालों की तरफ़ से फट गया। मैंने दिल में निश्चित कर लिया कि जीते जी कभी ससुराल का दरवाज़ा भी न देखूँगी। मोहन की सदा यही सलाह रहती थी कि ऐसे दुष्टों से वास्ता ही न रखना। वह मेरी ससुराल वालों की दुष्टता के समाचार नित्य मुझे सुनाया करता था। अब मोहन प्रायः दिन भर मेरे ही पास रहता था। रात को दस-ग्यारह बजे अपने घर जाता था। कभी-कभी तो रात भर मेरे पास रह जाता था। मेरे भाई का विवाह हुए दो वर्ष हो चुके थे। मेरी भावज चौदह वर्ष की जवान हो गई। उसके माता-पिता दोनों मर गए थे। भाई-भौजाई उसे अच्छी तरह न रखते थे, इसलिए वह दिन-रात हमारे ही यहाँ रहती थी। मेरा भाई अभी तक तेरह-चौदह वर्ष का नादान लड़का था, अतः मेरी माँ बहू का विश्वास न करती थी। भावज दिन भर मेरे पास रहती थी, जिससे मोहन के और मेरे सम्बन्ध में बहुत विघ्न पड़ता था। यह बात हम दोनों को बहुत नागवार गुज़रती थी; परन्तु इसका इलाज क्या? मोहन जब मेरे पास होता

और भावज आती, तो मैं उसे किसी काम के बहाने से टरका दिया करती थी तथा माँ के पास बैठने को कह कर झिड़क भी दिया करती थी; परन्तु उसका जी घर में न लगता और हमारी आपस की हँसी-दिल्लगी आमोद-प्रमोद की बातें सुनने और धींगा-मस्ती करने के लिए वह तुरन्त लौट आती। मोहन से मैंने सलाह की कि इससे छुटकारा कैसे पाया जाय। उसने यही उपाय बताया कि उसको भी अपने पञ्जे में ले लिया जाय, ताकि फिर वह अपना भेद किसी को कहने लायक़ न रहे। मुझे यह बात अच्छी नहीं लगी; क्योंकि एक तो मोहन का दूसरी स्त्री से सम्बन्ध मैं देख नहीं सकती थी; और दूसरे अपने भाई की स्त्री को भ्रष्ट करने में पाप और भाई की हानि तथा माँ के क्रोध का भय था, इसलिए मोहन की बात मैंने न मानी; परन्तु मोहन मुझे दबाने लगा और यह कह कर मेरे पास आना भी कम कर दिया कि वह सदा मेरे पास बैठी रहती है। उसके मिलाए बिना आना व्यर्थ है। बहुत दिन इस असमञ्जस में बीत गए, तब मुझे लाचार होकर मोहन की बात माननी पड़ी; और एक दिन धींगा-मस्ती करती हुई मैंने मोहन और भावज को कमरे में छोड़कर दर्वाज़ा बन्द कर लिया। फिर थोड़े समय बाद भावज से मैं मिली, तो एक बार मुझे बहुत भय हुआ कि न मालूम वह क्या कहेगी; परन्तु वह बेचारी रोकर रह गई। मैंने उसको समझाया कि यह बात माँ से मत कहना। अगर कहोगी तो तुम्हारी बुरी हालत होगी। इससे उसके दिल में भय हो गया और चूँ तक न की। अब मोहन के लिए हम दो

प्रेमिकाएँ हो गईं। अब वह मुझसे भी अधिक उस पर ध्यान देने लगा; क्योंकि वह मुझसे छोटी और पूर्णयौवना थी। यह बात मुझे सर्वथा असह्य थी; और इस कारण मोहन और मुझमें खट-पट रहने लगी। भावज मुझे शत्रु की तरह प्रतीत होने लगी। मोहन को तो मैं किसी हालत में छोड़ नहीं सकती थी, इसलिए मैंने अपनी माँ के कई गहने और रुपए चुराए। जाल रच कर चोरी भावज के सिर मढ़ दी, जिससे वह दुखी होकर अपने भाई के पास कलकत्ते चली गई और मेरा पीछा छूटा।

माँ मेरी मददगार थी, अतः मैं निश्चिन्त हो गई; परन्तु एक बात का खटका मुझे सदा ही बना रहता था; अर्थात् गर्भ का भय मुझे सदा सताता था; और इस विषय में मोहन से मैं सदा कहती थी कि वह इस बात का कोई ऐसा प्रबन्ध कर दे कि गर्भ न रहे। कई स्त्रियों से मैंने सुना था कि इसके लिए जन्त्र-तावीज़ बनते हैं। उसी की तलाश करने के लिए मोहन को मैंने कहा। बहुत दिनों की खोज के बाद एक निज़ामुद्दीन नामक पीर से उसकी बातचीत हुई। उसने पक्का बन्दोबस्त कर देने का ज़िम्मा लिया। एक दिन सन्ध्या के समय मोहन के साथ मैं पीर के पास गई। उसने बातें बना कर मेरे दिल में यह निश्चय करा दिया कि वह पक्का बन्दोबस्त कर देगा। उस दिन तिथि ठीक नहीं थी, अतएव दूसरे दिन के लिए निश्चय हुआ। १००) तावीज़ के लिए पहले देने की ठहरी। रुपया लेकर हम दोनों फिर दूसरे दिन उसके पास गये। पीर मुझे एकान्त बैठक में ले गया; और मोहन को यह कह कर बाहर ठहरने को

कहा कि यह काम इतना नाज़ुक और गुप्त है कि दूसरे मर्द के सामने नहीं किया जा सकता। मैंने इस विषय में आना-कानी की, तो पीर ने कहा—बाई, तुम इसके लिए इतना पशोपेश क्यों करती हो? हम लोग पीर हैं। हर तरह से पाक हैं। तुमको हम पर किसी तरह का शक़ न करना चाहिए। हमारे पास तुम्हारी तरह सैकड़ों मुसीबत की मारी अपनी लाज बचाने के लिए आती हैं; और बात की बात में हम उनको मुसीबत से बचाने का बन्दोबस्त कर देते हैं। हम ऐसे-वैसे शख़्स नहीं हैं कि जिन पर किसी तरह का शक़ किया जाय। कल मैंने तुम्हारे सामने सब बयान किया था कि किस-किस बड़े और आला ख़ान्दान की सेठानियों के काम हमने किए हैं। अगर हम ऐसे न होते, तो हमसे कोई बात भी न करता। घबड़ाने की कोई बात नहीं है। चलो, अन्दर सब काम तैयार है। अब देर का काम नहीं है। उसकी ये बातें सुनने से मेरी कुछ दिलजमई हुई; और मैं उसके साथ कोठरी के अन्दर चली गई। वहाँ उसने चिराग़ जलाया; और धूप दी। कई जन्त्र और तावीज़ तैयार पड़े थे, उनको मुझे दिखाया। फिर कुछ मन्त्र जप कर उन पर फूँक देने लगा। जब तावीज़ों को मन्त्रित कर चुका, तब मेरा नम्बर आया। उसने मेरा हाथ पकड़ कर अपनी तरफ़ खींचा तथा मेरी इच्छा के विरुद्ध अपनी गोद में बिठा कर नङ्गी करने के लिए मेरे वस्त्र उतारने लगा। जब मैंने एतराज़ किया, तो वह कहने लगा—इस काम के मन्त्र और तावीज़ नङ्गे हुए बिना नहीं बन सकते। यहाँ एक तुम्हीं तो नहीं आई। सैकड़ों औरतें तुमसे भी

के पास ले जाकर झाड़-फूँक करवाए, देवी-देवताओं की फेरी लगवाई, प्रसाद और जात बुलवाई; परन्तु नतीजा कुछ न हुआ। मोहन ख़ुद ज्योतिषी था, मेरी जन्म-पत्री देखी। वर्ष निकाल कर बोला—यही महीना ख़राब है, दूसरा महीना अच्छा है, उससे पहले सफ़ाई हो जायगी। मदद के लिए महा मृत्युञ्जय के जप की वरनी बैठाई; पर वह महीना निकल गया; और मेरा पीछा न छूटा। दो महीनों से ऊपर हो गए। मेरे शरीर पर कुछ-कुछ चिह्न दिखाई देने लगे। मेरी माँ बहुत चतुर थी। मेरे शरीर की हालत और चेहरे की उदासी तथा रात-दिन की उत्कण्ठा से वह ताड़ गई कि कुछ दाल में काला है। मुझे एकान्त में ले जाकर पूछा, तो एक वार तो मैंने इन्कार कर दिया; पर जब उसने बहुत दबाया तो मैं ला-जवाब हो गई। माँ सिर पर हाथ धर कर रोने लगी तथा मुझे भला-बुरा कहने लगी। मैं भी अञ्चल से मुँह ढाँक कर रोने लगी। मेरी माँ की एक नाइन प्राइवेट सलाहगीर थी, उससे माँ अपने दिल की बातें किया करती थी। मेरी इस विपत्ति में उस नाइन से ही काम लिया। पहले तो उसने भी जन्त्र-मन्त्रों में सैकड़ों रुपए ख़र्च करवाए; क्योंकि नाइन का यही काम था। इसलिए सब जन्त्र-मन्त्र वालों से उसकी मुलाक़ात थी। जब उसमें ख़र्च करवा चुकी, तो वैद्यों की दवाइयों का नम्बर आया। उसमें भी ख़ासा ख़र्च करवाया; पर जब कुछ न हुआ तब दाई को बुला कर दिखाने की सलाह ठहरी; परन्तु घर में आई हुई दाई छिपी नहीं रह सकती। उसको बुलाने के

लिए कोई बहाना चाहिए। सौभाग्यवश मेरी माँ के भी उस समय चार महीने का गर्भ था, जिससे वह बहुत लज्जित थी; क्योंकि मेरी दुख की हालत में उसको गर्भ होने से उसके चित्त में ग्लानि थी। इसलिए वह उसे निकलवाना चाहती थी। बस, एकही तीर से दो शिकार करना विचार कर दाई को बुलाया; और माँ-बेटी दोनों ने दाई के काढ़े लेने शुरू किए। दोनों का साथ-साथ इलाज होने से मेरा परदा कुछ ढका रहा। माँ तो निर्बल थी, इसलिए तीन दिन काढ़े लेने से उसका गर्भ गिर गया, यद्यपि तकलीफ़ हद्-दर्जे की हुई; परन्तु मेरा छुटकारा न हुआ। उलटे दवाई की गर्मी से मेरा खून बिगड़ गया। मुँह पर काले दाग़ हो गए। शरीर में दाह आदि अनेक उपाधियाँ हो गईं। भूख बन्द हो गई। जब माँ को अपने गर्भपात की वेदना से आराम हुआ, तो फिर वह मेरी फ़िक्र करने लगी। जब किसी भी इलाज से मेरा छुटकारा न हुआ, तो माँ ने मुझे देशान्तर ले जाने का विचार किया। मुझे तीर्थ-यात्रा कराने के लिए माता ने पिता की आज्ञा लेकर ब्रज की तैयारी की। पिता जी को कलकत्ते जाने की आवश्यकता थी, वह वहाँ चले गए; और हम माँ-बेटी ब्रज की यात्रा को गईं। मोहन को साथ चलने को मैंने बहुत दबाया; क्योंकि यह भेद दूसरे किसी को जाहिर करना अभीष्ट न था; परन्तु वह हमारे साथ क्यों चलने लगा? वह तो सुख का साथी था। दुःख में कौन किस का है? लाचार हमें टीपू को साथ ले जाना पड़ा, जो मेरी मौसी के साथ अनेक बार वहाँ जा चुका था; और इस काम में

के पास ले जाकर झाड़-फूँक करवाए, देवी-देवताओं की फेरी लगवाई, प्रसाद और जात बुलवाई; परन्तु नतीजा कुछ न हुआ। मोहन ख़ुद ज्योतिषी था, मेरी जन्म-पत्री देखी। वर्ष निकाल कर बोला—यही महीना खराब है, दूसरा महीना अच्छा है, उससे पहले सफ़ाई हो जायगी। मदद के लिए महा मृत्युञ्जय के जप की बरनी बैठाई; पर वह महीना निकल गया; और मेरा पीछा न छूटा। दो महीनों से ऊपर हो गए। मेरे शरीर पर कुछ-कुछ चिह्न दिखाई देने लगे। मेरी माँ बहुत चतुर थी। मेरे शरीर की हालत और चेहरे की उदासी तथा रात-दिन की उत्कण्ठा से वह ताड़ गई कि कुछ दाल में काला है। मुझे एकान्त में ले जाकर पूछा, तो एक बार तो मैंने इन्कार कर दिया; पर जब उसने बहुत दबाया तो मैं ला-जवाब हो गई। माँ सिर पर हाथ धर कर रोने लगी तथा मुझे भला-बुरा कहने लगी। मैं भी अञ्चल से मुँह ढाँक कर रोने लगी। मेरी माँ की एक नाइन प्राइवेट सलाहगीर थी, उससे माँ अपने दिल की बातें किया करती थी। मेरी इस विपत्ति में उस नाइन से ही काम लिया। पहले तो उसने भी जन्त्र-मन्त्रों में सैकड़ों रुपए खर्च करवाए; क्योंकि नाइन का यही काम था। इसलिए सब जन्त्र-मन्त्र वालों से उसकी मुलाक़ात थी। जब उसमें खर्च करवा चुकी, तो वैद्यों की दवाइयों का नम्बर आया। उसमें भी खासा खर्च करवाया; पर जब कुछ न हुआ तब दाई को बुला कर दिखाने की सलाह ठहरी; परन्तु घर में आई हुई दाई छिपी नहीं रह सकती। उसको बुलाने के

लिए कोई बहाना चाहिए। सौभाग्यवश मेरी माँ के भी उस समय चार महीने का गर्भ था, जिससे वह बहुत लज्जित थी; क्योंकि मेरी दुख की हालत में उसको गर्भ होने से उसके चित्त में ग्लानि थी। इसलिए वह उसे निकलवाना चाहती थी। बस, एकही तीर से दो शिकार करना विचार कर दाई को बुलाया; और माँ-बेटी दोनों ने दाई के काढ़े लेने शुरू किए। दोनों का साथ-साथ इलाज होने से मेरा परदा कुछ ढका रहा। माँ तो निर्बल थी, इसलिए तीन दिन काढ़े लेने से उसका गर्भ गिर गया, यद्यपि तकलीफ़ हद्-दर्जे की हुई; परन्तु मेरा छुटकारा न हुआ। उलटे दवाई की गर्मी से मेरा खून बिगड़ गया। मुँह पर काले दाग़ हो गए। शरीर में दाह आदि अनेक उपाधियाँ हो गईं। भूख बन्द हो गई। जब माँ को अपने गर्भपात की वेदना से आराम हुआ, तो फिर वह मेरी फ़िक्र करने लगी। जब किसी भी इलाज से मेरा छुटकारा न हुआ, तो माँ ने मुझे देशान्तर ले जाने का विचार किया। मुझे तीर्थ-यात्रा कराने के लिए माता ने पिता की आज्ञा लेकर ब्रज की तैयारी की। पिता जी को कलकत्ते जाने की आवश्यकता थी, वह वहाँ चले गए; और हम माँ-बेटी ब्रज की यात्रा को गईं। मोहन को साथ चलने को मैंने बहुत दबाया; क्योंकि यह भेद दूसरे किसी को जाहिर करना अभीष्ट न था; परन्तु वह हमारे साथ क्यों चलने लगा? वह तो सुख का साथी था। दुःख में कौन किस का है? लाचार हमें टीपू को साथ ले जाना पड़ा, जो मेरी मौसी के साथ अनेक बार वहाँ जा चुका था; और इस काम में

पहले नम्बर का होशियार हो चुका था। ब्रज में जाकर येन-केन-प्रकारेण मैंने अपना पीछा छुड़ाया। दो महीने के क़रीब हम लोग वहाँ रहे। यहाँ पर पुष्टि-मार्ग के लोगों का सहवास होने से मेरे चित्त में इस मार्ग की तरफ़ विशेष श्रद्धा उत्पन्न हो गई; और इसका अवलम्बन करने का मैंने विचार किया। इस मार्ग में एक पन्थ दो काज हो सकते हैं, यह मुझे निश्चय हो गया। धर्म का तो धर्म सध सकता है; और दुनिया के सब व्यवहार बिना रोक-टोक के तथा बिना लोकापवाद के किए जा सकते हैं। ठाकुर जी के प्रसाद के निमित्त बना कर सब प्रकार के पट्रस के बढ़िया से बढ़िया भोजन खा सकते हैं। ठाकुर जी की सखी बन कर सब प्रकार के वस्त्र-आभूषणों का शृङ्गार सज सकते हैं; और ऋतु-ऋतु के अनुसार भोग-राग की सब सामग्रियाँ तैयार करके उन्हें भोग सकते हैं। गाना, बजाना, नाचना, हँसना और खेलना तो ठाकुर जी को रिझाने के लिए प्रधानता से होता ही है। चाहे जिस समय, जी चाहे जिसके साथ, वन-उपवन, वाटिका और लता-पता में स्वतन्त्रता से घूम-फिर कर दिल खुलासा किया जा सकता है। जब यात्रा में जाना होता है, तो उस समागम के आनन्द के सामने तो दुनिया के सब मेले आदि तुच्छ हो जाते हैं। ठाकुर जी की सखी बनने से आचार्य-बालकों के साथ भी रङ्ग-राग करने, होली-फाग आदि खेलने, केसर आदि स्नानों के मनोरथों के द्वारा अङ्ग-स्पर्श आदि के अवसर भी प्राप्त होते रहते हैं। मुखिया, अधिकारी, समाधानी, कीर्तनियाँ, कथक्कड़ और भगवदीय वैष्णवों का सम्बन्ध तो सदा

बना ही रहता है। यदि इन लोगों के सम्बन्ध से पाप भी पल्ले बँध जाय, तो उससे छुटकारा पाने में भी विशेष चिन्ता की बात नहीं; क्योंकि इन कामों के प्रबन्ध सब ठीक किए हुए रहते हैं। इन सब सुखों को देख कर मैंने यह मार्ग स्वीकार कर लिया; परन्तु हम लोग इस समय वहाँ अधिक दिन न रह सके; क्योंकि कलकत्ते से पिता जी का पत्र और तार हमको जल्दी बुलाने का आया; और हमको तुरत कलकत्ते जाना पड़ा। अब की बार आगे वाले मकान में न रह कर दूसरी जगह रहे। वहाँ पहुँचने पर विदित हुआ कि मेरी भावज के विषय में लोगों में कुछ चर्चा हो रही थी। उसके पीहर में उसे सँभालने वाला कोई था नहीं; और मेरी बदौलत उसकी कुमार्ग में प्रवृति हो ही चुकी थी, इसलिए उसको अपने घर में ही रखना जरूरी था। लोगों में उसकी चर्चा होने से मेरे पिता जी बहुत दुखी हो रहे थे; और मेरी माँ भी वहाँ पहुँच कर बहुत दुखी हुई। मेरा परदा ढकने का महा दुखदायी बोझ तो उस घर था ही, अब मेरी भावज का और हो गया। इतने दिन कलकत्ता नगर में स्वतन्त्र रहने से वह बहुत निरङ्कुश हो चुकी थी। अब उसको सन्मार्ग पर लाना बड़ा कठिन काम था। जब मैंने उसको शिक्षा देने की चेष्टा की, तो उसने फ़ौरन उत्तर दिया—मुझे क्या शिक्षा देती हो। पहले अपना मुँह तो दर्पण में देखो। मोहन को वहाँ कैसे छोड़ आई ? उसके बिना यहाँ दिल कैसे लगेगा ? मथुरा जी को पवित्र करके अब यहाँ आई हो इत्यादि! उसकी बातें सुन कर मैं अवाक् हो गई। कुछ

भी उत्तर देते न वना ; और ज्यों-त्यों दिन विताने लगी । मन में यही सोचा कि कलकत्ते में जितना कम दिन रहना हो, उतना ही अच्छा है । इसको लेकर देश जाना ठीक है ; परन्तु मेरे पिता जी काम में फँसे हुए थे और भावज भी मेरी पहले की करतूत को वतला कर देश जाना मन्जूर नहीं करती थी । लाचार कई महीनों वहाँ रहना पड़ा ।

मुझे अपनी पुरानी सखी गोमती की याद आई और उससे मिलना चाहा । तलाश करने पर मालूम हुआ कि वह अव अपने भाई के घर से निकल कर केशव वावू के घर स्वतन्त्रता से रहने लगी है । मैंने उसको सन्देशा भेजा, जिसे सुनते ही वह तुरत मुझसे मिलने आई । उसके कपड़े-गहनों के पहनाव से मालूम हुआ कि वह बहुत अमीरी ठाट से रहती है । मुझे उसका हाल जानने के लिए ईर्ष्या के साथ कौतूहल हुआ । मेरे पूछने पर उसने अपना हाल कहा, जिससे विदित हुआ कि उसके और केशव वावू के सम्वन्ध का भेद प्रकट हो जाने पर हम लोग जिस वाड़ी में पहले एक साथ रहते थे, उसको उसके भाई ने छोड़ दिया ; और दूसरी वाड़ी में एक कमरा ले लिया ; परन्तु वाड़ी छोड़ने से इसका सम्वन्ध केशव वावू से न छूटा । वह जब मौक़ा पाती, तभी किसी न किसी जगह केशव वावू से मिलती । यह भी उसके भाई से छिपा न रहा ; और हमेशा झगड़ा रहने लगा । तव केशव वावू ने एक स्वतन्त्र मकान लेकर गोमती को उसमें रखने का प्रवन्ध कर दिया । वह अपने भाई का घर छोड़ कर केशव वावू की रखैल

धन कर बड़े अमीरी ठाट-बाट से रहने लगी। गोमती ने अपना हाल कह कर मुझे अपने मकान में ले जाने को कहा। मैं इसके लिए उत्सुक थी ही। माँ से कह कर पिता जी की अनुपस्थिति में उसके घर गई, जो बहुत ही अच्छा सजा हुआ था। सब आराम के सामान मौजूद थे। मुझे उसके साथ ईर्ष्या हुई और उसके भाग्य को सराहते हुए मैंने कहा—घर में यह सुख कहाँ नसीब होता। उसने कहा—ठीक है, परन्तु × × ×

इतना कह कर ऊँची साँस ली। इसका कारण पूछने पर उसने कहा—केशव बाबू का दिल आगे वाला नहीं रहा।

मैंने पूछा—क्यों?

वह—न मालूम।

मैं—आख़िर कोई सबब भी तो होगा?

वह—मेरी वह अवस्था नहीं रही, इससे बाबू का दिल और कहीं लगा होगा।

यह सुन कर मुझे बड़ा दुख और हैरानी हुई। मैंने बाबू को विशेष रूप से रिझाने के लिए उससे कहा।

जब केशव बाबू आए, तो उसने मेरा परिचय कराया। मैंने पहले तो बाबू से लज्जा प्रकट की; परन्तु फिर उन दोनों के कहने-सुनने से लाज छोड़ बातें करने लगी; और केशव बाबू को उसकी निष्ठुरता के लिए उपालम्भ देती हुई समझाने की चेष्टा करने लगी। परन्तु मेरे कहने का उस पर कुछ भी असर न हुआ। उलटे वह मेरे साथ ही छेड़-छाड़ करने लगा। तुरन्त की बीबी हुई

विपद मेरे दिल में ताजी बनी हुई थी, इसलिए मैं उसके वर्ताव से डर गई ; और देर होने का वहाना कर के चली आई।

गोमती के बुलावे फिर मेरे पास आए। मेरा दिल एक तरफ़ तो उसके यहाँ जाने से डरता था कि फिर कोई पाप गले न बँध जाय ; और दूसरी तरफ़ वहाँ के सुख और ऐशोआराम को देख कर जी ललचाता था। अन्त में लालच को न रोक सकी ; और फिर उसके पास गई। मैंने गोमती से कहा कि तुम्हारे बाबू का वर्ताव देख कर मुझे डर लगता है।

वह—डर किस बात का ? पुरुषों का तो यह स्वभाव ही होता है। क्या वह कोई हिंसक पशु थोड़े ही हैं, जो तुझे खा जायँगे।

मैं—तुमने तो अपना सर्वस्व ही उन्हें दे दिया है, इसलिए तुमको कुछ डर नहा ; परन्तु मेरा डरना तो उचित ही है।

वह—तो तुम भी अपना सर्वस्व उन्हें दे दो।

मैं—मैं इन कामों को क्या समझूँ ?

वह—बस रहने दो। मुझे तुम्हारा सब हाल मालूम है। तुम्हारे मोहन से तो वे अच्छे हैं।

मैं—(शर्मा कर) क्या एक म्यान में दो तलवारें रह सकती हैं ?

वह—क्या इस समय वह एक मुझ पर ही है ?

मैं—तो इस बात से तुम्हारा चित्त राजी थोड़े ही है।

वह—चाहे राजी हो या नाराज ; इसका कोई इलाज तो है नहीं। ईश्वर ने स्त्री की योनि दे दी, उस पर नसीब फूट गए !

पराए की गुलामी स्वीकार करनी पड़ी! अब राजी-नाराजी का ख्याल करना पागलपन नहीं तो क्या है? दुनिया में प्लेग-हैजे आदि में इतने लोग मरते हैं; परन्तु मैंने न मालूम कितने पाप किए हैं कि मुझसे मौत भी डरती है। यह कहते-कहते उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। फिर सँभल कर बोली—मेरा उन पर कोई अधिकार तो है ही नहीं। जिसका उन पर कोई हक़ था, उसको छीनने में तो मैं निमित्त हुई। अब वे पराई चीज मुझसे भी कोई छीन ले, तो मेरा क्या उज्र हो सकता है। यह तो उनकी सचाई और दया पर निर्भर था कि मुझे जिस प्रतिज्ञा के साथ बिगाड़ा था, उस पर क़ायम रहते; परन्तु पुरुषों में वह दया और सचाई है कहाँ? यदि सचाई और दया होती, तो अपनी घर वाली के साथ ही ऐसा बर्ताव क्यों करते? हम स्त्रियों को ही ईश्वर ने ऐसी स्वत्वहीन और पराधीन बनाया है कि जीते जी और मरने पर भी एक ही की होकर रहना पड़ता है। पुरुष तो एक के जीते हुए भी अनेक कर सकता है। फिर मरने के बाद की तो कथा ही क्या है? बहिन! जब उनको मुझसे सन्तोष ही नहीं, तो फिर तुम्हारे साथ सम्बन्ध हो जाय, तो क्या हानि है। अन्य चुड़ैलों के साथ उनका सम्बन्ध रहने से न मालूम वे मेरी क्या हालत करेंगे; क्योंकि अब उनके सिवाय संसार में कोई मेरा आसरा नहीं रहा; परन्तु तुम्हारे सम्बन्ध होने से उनका भटकना छूट जायगा; और मुझे कुछ भी भय न रहेगा। हम तुम आपस में बहिनों की तरह रहेंगी।

इतनी वातें होते ही वावू आ गए ; और मुझे देख हँसते हुए दिल्लगी करने लगे । गोमती ने वावू के लिए फलादिक खाने को तैयार कर रक्खे थे ; उसने थाली आगे रख दी । वावू ने मुझे भी खाने को कहा । मेरे इन्कार करने पर गोमती ने वहुत दवाया । अन्त में मुझे खाना पड़ा । उसने फ़ोनोग्राफ़ वाजा वजाना शुरू किया । वावू और गोमती की साजिश से उस दिन मैं वहाँ से वच कर न निकल सकी । इसके पीछे कई वार मेरा वहाँ जाना हुआ । इस वात से मेरी माँ राजी न थी ; और मेरी भावज ने मेरे भाई से भी इस वात की शिकायत कर दी । वह मेरे सम्मुख तो कुछ वोल नहीं सका ; परन्तु माँ से मुझे रोकने के लिए कहा । गोमती वहुत वदनाम हो चुकी थी, इसलिए उसके घर जाने से मेरी वदनामी उचित ही थी ।

मेरी माँ का शरीर गर्भपात के कारण क्षीण तो था ही ; फिर मेरी इतनी चिन्ता और दुख के कारण तथा मेरी भावज के चाल-चलन की फ़िक्र से वह दिन-दिन कमज़ोर होती गई । भूख वन्द हो गई । अजीर्ण होकर अम्लपित्त की वीमारी हो गई, जो दिन-दिन वढ़ती ही गई । इलाज से कुछ फ़ायदा न हुआ ; तव देश जाना उचित प्रतीत हुआ । मुझे तथा मेरी भावज को भी वहाँ रखने से वदनामी हो रही थी । इन कारणों से मेरी माँ ने देश जाने का निश्चय कर लिया ; और पिता जी से आग्रह कर हम सव देश चले आये । देश आने के थोड़े ही दिन वाद मैंने सुना कि गोमती को केशववावू ने छोड़ दिया और वह असहाय अवस्था में

बदमाशों के फन्दे में पड़ गई। बहुत दिन तक ठोकरें खा, अनेक प्रकार के दुख सह कर अन्त में वेश्या हो गई !

देश आने के बाद मेरी माँ का इलाज उसी महन्त से कराया गया, जिसने मेरे पति का किया था। उससे मेरी माँ को कुछ आराम हुआ। इधर मैं पुष्टि-मार्ग में पड़ गई। दर्शनों के सब "समयों" में मन्दिरों में पहुँचती थी; और अपने ठाकुर जी की सेवा के लिए भी वस्त्र, आभूषण और प्रसाद आदि में अपना काल व्यतीत करती थी। बहुत से वैष्णव स्त्री-पुरुष मेरे पास आने लगे। मन्दिरों में सामग्रियाँ ले जाने तथा मनोरथ करवाने पर खूब ज़ोर लगा। थोड़े ही दिनों में मैं पक्की वैष्णव हो गई। ब्रजवासियों को खिलाने-पिलाने, रासधारियों का रास करवाने और इन मन्दिरों के मुखियों, कीर्तनियों आदि को दान देने में भी मैं खूब उदारता रखती थी। सारांश इस मार्ग में मैं ख़ूब प्रसिद्ध हो गई; और बड़े वैष्णवों की गिनती में आने लगी। गुसाईं-बालक, बहू-बेटी या जो कोई भी पधारते उनकी पधरावनी मैं ज़रूर करवाती; और सेवा भी वस्त्र-आभूषणों तथा नक़द से करती। जो-जो बालक वहाँ आते, वे मेरी सेवा से बड़े ही प्रसन्न होते और मेरे साथ बहुत प्रेम करते। जूठन मिलने का सौभाग्य मुझे ही प्राप्त होता था; और केसर-स्नान में अपने हाथों से उनके सब अङ्ग स्पर्श करती थी; और वे मेरे सिवाय किसी और के साथ फाग न खेलते थे।

धर्मराज—तुमको जूठन कैसे मिलती थी ; और केसर-स्नान क्या कराती थी, फाग कैसे खेलती थी ?

राधा—महाराज ! गुसाईं जी महाराज अपने श्रीमुख का जूठन किसी को नहीं देते । जो उनका अनन्य सेवक हो और बड़ी सेवा करता हो, उसी को अपने मुख से निकाला हुआ जूठन और बीड़े की पीक देते हैं । केसर आदि सुगन्धित पदार्थों से मिले हुए जल से जो वैष्णव स्नान कराने का मनोरथ करे, तो औरों से तो उसकी भेंट ले ली जाती थी ; परन्तु स्नान के समय उससे स्पर्श नहीं कराते थे। परन्तु मेरे समान सेवा करने वाली को ही एकान्त में अपने हाथों से उनके शरीर को स्पर्श करके स्नान कराने का सौभाग्य मिलता था; और फाग का खेल तो वे उसी के साथ खेलते हैं, जो अपना सर्वस्व उन गुरु-देवों के अर्पण कर देती हैं; क्योंकि उसमें कृष्ण और राधा का भाव हो जाता है ; और सब प्रकार के खेल होते हैं, जिसमें कुछ भेद-भाव नहीं रहता ।

धर्मराज—शिव ! शिव !! धर्म-गुरु आचार्य लोग धर्म और भगवद्-प्राप्ति कराने के नाम से इस तरह के घोर अनर्थ करते हैं; और विधवाओं के साथ वे क्रीड़ाएँ करते हैं, जो साधारण दुष्ट आचरण के लोग वेश्याओं के साथ करने में भी शर्माते हैं ; और फिर इन विधवाओ से पातिव्रत्य-धर्म में क़ायम रहने और इन्द्रिय-निग्रह करने की आशा रक्खी जाती है। कैसी विडम्बना है ? (राधा से) ये क्रीड़ाएँ छिपकर की जाती होंगी ?

राधा—क्रीड़ाएँ तो एकान्त में होती थीं ; परन्तु इनको छिपाने

की कोई आवश्यकता नहीं; क्योंकि यह कोई बुरा काम तो था ही नहीं; बल्कि जो वैष्णव-स्त्री महाराज की इतनी कृपा-पात्र होती थी, उसका तो अहोभाग्य समझा जाता था।

धर्मराज—ऐसी दशा में उसका धर्म कैसे बचता होगा?

राधा—वहाँ धर्म का तो प्रश्न ही नहीं उठता। मुक्ति तक तो इस मार्ग में कुछ चीज़ ही नहीं, फिर धर्म की ज़रूरत ही क्या! यहाँ तो प्रेम-लक्षणा-अनन्य भक्ति से प्रयोजन है। जिसको महाराज ने अङ्गीकार कर लिया, फिर उसे धर्म-कर्म से प्रयोजन ही क्या? उसने तो वह पद पा लिया, जिसके लिए ब्रह्मादिक देवता भी तरसते हैं!

धर्मराज—धन्य है इस अन्ध-विश्वास को! अच्छा राधा, तो तुम इस मार्ग में पड़ कर ख़ूब आनन्द से रहने लगी?

राधा—(गर्दन नीची करके) महाराज, मेरी वैसी दशा में इस मार्ग के सिवाय दूसरा कोई साधन ही नहीं दीखता था, जिससे अपना सुधार हो सकता।

धर्मराज—अपने आगे का हाल जल्दी संक्षेप से कह डालो; क्योंकि तुम्हारी जैसी सैकड़ों अपराधिनियों का बयान होना है।

राधा—इस तरह से अपने दिन सुख-शान्ति में बिताने लगी, परन्तु मेरी शान्ति अधिक दिन तक न ठहर सकी; क्योंकि मेरी माता को बदपरहेज़ी से फिर बीमारी का दौरा हो गया, और इस बार वह सख़्त बीमार हो गई। स्वामी जी ने बहुत दवाइयाँ कीं; परन्तु किसी से लाभ न हुआ। पैरों पर सूजन आ

गई ; और पानी पचना भी मुश्किल हो गया। मुझे इस वात की वहुत ही चिन्ता हुई ; क्योंकि मेरा सव सुख-संसार अव मेरी माँ के ही आसरे मुझे प्रतीत होता था। मैंने स्वामी जी की वहुत ही खुशामद की कि किसी तरह वे मेरी माँ को अच्छी कर दें। उन्होंने कहा—यह गर्भपात से उत्पन्न हुई बीमारी है—वड़ी खराव है। मूर्ख लोगों से गर्भपात करवाने से ऐसी बीमारी हो जाती है। अगर मुझे थोड़ा भी इशारा कर देती, तो वात की वात में सव काम हो जाता और रत्ती भर भी तकलीफ़ न होती। भला हर कोई इस तरह के नाज़ुक काम कर लेते, तो हम वैद्यों को कौन पूछता ? हम लोग तो पहले ही से वन्दोवस्त कर देते हैं कि फिर गर्भ रही नहीं सकता। ऋतुकाल में दवा खा लेने से फिर निश्चिन्तता हो जाती है। उनकी वातों का मेरे दिल पर वहुत असर पड़ा और अपने लिए उनको वड़ा ही लाभदायक समझा ; परन्तु वर्त्तमान में तो फ़िक्र माँ की थी। इसलिए मैंने उनसे फिर कहा—महाराज, अव तो जो होना था, हुआ। जिस तरह वने, मेरी माँ को अच्छा करो। इतना कह कर मैं रोने लगी। स्वामी जी ने मुझे ढाढ़स देकर कहा—घवराओ मत। रोग असाध्य नहीं कष्ट साध्य है। इसे अच्छा कर दूँगा ; परन्तु इलाज लम्वी मुद्दत का है। वहुत सोच-विचार कर काम किया जायगा। इस इलाज में औपधि देने तथा पथ्य-परहेज आदि की अत्यन्त सावधानी रखने की आवश्यकता है, इस वास्ते तुम एक वार हमारे यहाँ आओ तो वहाँ ग्रन्थों द्वारा तुमको सव हाल समझा दूँ; उसके अनुसार

चलने से परमात्मा करेगा तो तुम्हारी माँ अच्छी हो जायँगी। माँ के शरीर की मुझे बहुत चिन्ता थी, इसलिए शाम को मैं महन्त जी के गुरुद्वारे गई; और उनके रहने के रईसी ठाट तथा मकान की सज-धज देख कर मैं चकित हो गई। खासकर उनके निजी कमरे की सजावट राजाओं की सी थी। वहाँ ऐश-आराम के सब सामान मौजूद थे। सोने के कमरे में सीन-सीनरी की तस्वीरों के अतिरिक्त वेश्याओं तथा नग्न स्त्रियों के फ़ोटो और हाव-भाव की तस्वीरें भी लटक रही थीं, जिनसे महन्त जी का पूरा अय्याश होना साबित होता था। वे मुझे अपने सोने के कमरे में ले गए और मख़मल के सोफ़े पर बैठाया। वे स्वयं मेरे पास एक कुर्सी पर बैठ गए और मेज़ पर पड़ी हुई किताबें दिखाने लगे। किताबें दिखाने का बहाना तो था—गर्भ की बीमारी मुझको समझाना; परन्तु वह पुस्तकें अश्लील चित्रों से भरी हुई थी। उसमें चिकित्सा का नाम भी न था। मैं उनका प्रयोजन समझ गई; परन्तु एकाएक वहाँ से उठ कर उनको नाराज़ करना न चाहती थी; और न उनकी इच्छा ही पूरी कर सकती थी; क्योंकि मैं पक्की वैष्णव हो चुकी थी, इसलिए अन्य मार्गी से सम्बन्ध नहीं कर सकती थी, अतः मैं बहुत असमञ्जस में पड़ गई। अन्त में यह कह कर उठ खड़ी हुई—मैं इन पुस्तकों में क्या समझूँ, जैसा आप बतावेंगे उसी तरह पक्का प्रबन्ध रक्खूँगी। यह बात उन्हें बहुत नागवार गुज़री और वे बिगड़ कर कहने लगे—जब तुम कुछ समझना ही नहीं चाहती, तो मुझे क्या पड़ा है, जो इतना परिश्रम करूँ। तुमको

जो अच्छा दीखे, उससे इलाज करवालो। इस धमकी से मैं दब गई। लाचार हो, जैसा उन्होंने कहा, वैसा ही किया।

धर्मराज—जिस समाज में साधु-महन्तों की यह दशा है, वह भी धार्मिक बना हुआ है ? कैसी विडम्बना है !

राधा—इस घटना के दो दिन बाद ही मेरी माँ चल बसीं; और संसार मेरे लिए घोर अन्धकार हो गया। इससे मुझे जो दुख हुआ, वह वर्णनातीत है। इस दुख में मुझे धैर्य बँधाने वाले विशेषकर मेरी मण्डली के वैष्णव लोग ही थे, इसलिए मेरा स्नेह उस मण्डली की तरफ़ बहुत घनिष्ट हो गया। पिता जी को तार देकर कलकत्ते से बुलाया गया। उनके रञ्ज का भी कोई ठिकाना न रहा। विवाहित भाई के अतिरिक्त मेरे दो छोटे भाई और दो छोटी बहिनें थीं। इनके पालन-पोषण की चिन्ता पिता जी को बहुत ही दुखी कर रही थी।

उधर माँ के मरते ही अनेक कुमारी कन्याओं के पिताओं को मेरे पिता जी के साथ सम्बन्ध करने की उम्मीदवारी हो गई; और दस ही दिनों के बीच में मेरी दादी और फूफी के पास सन्देशे आने लगे। रिश्वत का बाज़ार गर्म हुआ।

धर्मराज—क्या तुम्हारे समाज में कन्याओं की इतनी बहुतायत है कि पैंतीस-चालीस वर्ष की अवस्था के और ... वाले अधेड़ों को देने के लिए भी इस तरह आतुरता [illegible]

राधा—नहीं भगवन्! कन्याओं [illegible] नह[illegible]

है। ग़रीब युवक तो बहुत से क्वारे ही फिरते हैं; परन्तु धनवान् बुड्ढों के लिए मृत्यु-शय्या पर भी कन्या मिल जाती है।

क्षमा—मानो कन्या उस बुड्ढे के परलोक में काम आने वाला कोई भोग्य पदार्थ है, जो उसके निमित्त उसके अन्त समय में दान किया जाता है।

धर्मराज—किस बेरहमी के साथ कन्याओं का सर्वनाश किया जाता है?

राधा—ज्योंही मेरी माँ की द्वादशी की क्रिया समाप्त हुई, दादी और फूफी तथा अन्य कुटुम्बी मेरे पिता जी को विवाह करने के लिए कहा-सुनी करने लगे। पहले तो पिता जी विवाह की बात सुन कर बहुत बिगड़े। रोने और मेरी माँ को याद करने लगे; परन्तु कुटुम्बियों ने उनका पीछा छोड़ा ही नहीं; और मेरी माँ के मरने के दो महीने बाद ही पिता जी का दूसरा विवाह हो गया। मुझसे तथा मेरे भाई से यह सब कार्रवाई बहुत छिपा कर की गई थी; परन्तु मुझको घर के नौकरों द्वारा सब मालूम होती रहती थी। उनके इस काम से मेरे भाई को और विशेष कर मेरे दिल को तो बहुत भारी चोट लगी। मुझे सौतेली माँ दुश्मन की तरह प्रतीत होती थी।

पिता जी ने हम लोगों के साथ कुछ समय तक पूर्ववत् प्रेम बनाए रक्खा; और घर पर सब मेरा ही अधिकार रक्खा। और जब तक सौतेली माँ होशियार न हुई, तब तक ऐसा ही रहा। सौतेली माँ से मेरा द्वेष बढ़ता ही गया; और जब वह होशियार

हो गई, तो शनैः शनैः पिता जी पर उसका क़ब्ज़ा होता गया; और पिता जी का प्रेम मुझसे कम होता गया, इसलिए सौतेली माँ से मेरी ख़ूब खींचा-तानी रहने लगी।

सौतेली माँ नित्य नए श्रृङ्गार सजती, और त्योहारों के अवसर पर अनेक प्रकार के बनाव करती। पिता जी भी थोड़े समय के लिए युवा हो गए और उसके साथ युवकों की तरह हास्य-विनोद करने लगे, जिसे देख-देख मैं बहुत जला करती थी। जो नाइन मेरी माता की बहुत मुँहलगी सखी थी, वही मेरी सौतेली माँ को सब तरह की स्त्रियों के चरित्र-सम्बन्धी शिक्षा दिया करती थी। पिता जी सौतेली माँ के साथ ऐश-आराम करने में मेरी दुख-भरी अवस्था को सर्वथा भूल गए, जिससे अधिक समय तक मेरा निर्वाह पिता के घर में होना कठिन हो गया। अब मुझे विदित हुआ कि पिता का घर, जिसको मैं अपना घर समझे हुए थी, वास्तव में मेरा नहीं है। पति का घर ही स्त्री का घर होता है। अब मुझे ससुराल की याद आई; और ससुराल वालों से लड़ने का मुझे बहुत पश्चात्ताप हुआ। उनसे सुलह करने की फ़िक्र हुई। वैष्णव-स्त्रियों में से एक स्त्री मेरी सास के पास जाया करती थी। उसके साथ मैंने अपनी सास से अपने बुलाने के लिए कहलाया, जिसके उत्तर में सास ने कहा—हमने तो उसको घर से निकाला नहीं, उसने स्वयं बदचलन में पड़ कर हमारा घर छोड़ दिया। अब भी वह अपना चाल-चलन सुधार कर यहाँ आवे, तो हम मना थोड़े ही करते हैं। सास की इस तरह ताने

भरी बातों से मुझे बहुत दुख हुआ ; और सोचने लगी कि किस मुँह से उनके पास जाऊँ; परन्तु और कोई जगह नहीं थी, इसलिए वहाँ चली गई। वहाँ पर किसी ने मेरे साथ बात तक न की ; और सब मुझे नफ़रत की निगाह से देखने लगे। इससे मैं सदा ही जला करती।

पुष्टिमार्ग में मेरा ख़र्च अधिक लगा करता था। जब तक पीहर में रहती थी, तब तक तो पिता के घर पर सब अधिकार होने से जितना जो चाहे ख़र्च कर सकती थी; परन्तु यहाँ मेरे पास कुछ न था। शरीर पर जो आभूषण थे, वे ऐसे ही थे जिनको मैं बेचना नहीं चाहती थी। इसलिए मैंने अपनी सास के द्वारा ससुर जी से अपने ख़र्च का प्रबन्ध करने के लिए कहलाया, जिस पर ससुर जी ने बहुत ही गालियाँ दीं ; और एक बार तो सूखा उत्तर दे दिया। फिर बहुत आरज़ू-मिन्नत करने पर २५) रु० मासिक मेरे निजी ख़र्च—कपड़े, धर्म-पुण्य आदि के लिए बाँध दिए। मेरी आदत ज्यादा ख़र्च करने की पड़ी हुई थी; और २५) रु० से मेरा काम नहीं चल सकता था; इसलिए मैं घर में चोरी करने लगी। कभी सास, ननद, देवरानी आदि का कोई गहना चुरा लेती, कभी बालकों में से किसी का आभूषण निकाल लेती। इस पर बहुत झगड़े होते। पहले-पहल चोरी का इलज़ाम नौकरों पर लगाया जाता ; परन्तु जब मेरी करतूत प्रकट हो गई, तो मुझ पर ख़ूब गालियाँ पड़ने लगीं। मैं भी बदले में गालियाँ देती और इस तरह घर में दिन-रात कलह मची रहती। कुछ दिन तो इस

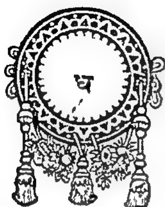
तरह गुजरे। अन्त में मेरे ससुर जी बरदाश्त न कर सके; और मुझे अलग कर देने का निश्चय किया। मैं भी अलग होने पर राजी थी; परन्तु खर्च का काफ़ी प्रबन्ध चाहती थी। मेरे ससुर जी बहुत प्रतिष्ठित आदमी थे, अपनी इज्जत का उनको बहुत ख्याल था, इसलिए वे जैसे-तैसे मुझे उजड़ने से बचाना चाहते थे। इस वास्ते १००) मासिक का प्रबन्ध कर मुझे एक अलग घर में रख दिया। अब मैं आज़ादी से रहने लगी और मेरे पुष्टिमार्गीय मित्रों के बेरोक-टोक आने और मेरे मनमानी करने का रास्ता खुल गया।

इस तरह रहते मुझे कई बार गर्भ गिराने पड़े, जिससे मेरा स्वास्थ्य प्रायः बिगड़ा हुआ रहता था। जिस रात को भूकम्प हुआ, उस समय मन्दिर के मुखिया जी मेरे ही पास सोए हुए थे।

यही मेरी आत्म-कथा है। इससे आप समझ ही गए होंगे कि ये सब पाप-कर्म मैंने अपनी इच्छा से नहीं किए; किन्तु समाज के अत्याचार के कारण इनके करने के लिए विवश होना पड़ा। भगवन्! मैं आपकी क्षमा की भिखारिन हूँ। मैं पहले ही बहुत कष्ट भोग चुकी हूँ; अब मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए—यह कह कर राधा रोने लगी!!



कृष्णा का बयान



र्मराज ने चित्रगुप्त से कहा—राधा का बयान समाप्त हुआ। अब दूसरी स्त्री के बयान जल्दी लेने आरम्भ कर दो; और उससे कहो कि जहाँ तक हो सके, वह अपना हाल संक्षेप में कहे।

राधा की सौतेली माँ कृष्णा कटघरे में हाज़िर की गई; और उस पर भी प्राय: उन्हीं पापों का दोषारोपण किया गया, जो राधा पर किए गए थे। उसने इस प्रकार कहना आरम्भ किया :—

महाराज, राधा की तरह मेरा भी कथन यही है कि अधिकांश पाप मुझे विवश होकर करने पड़े हैं। मैं भी उसी समाज में उत्पन्न हुई थी; और उसीमें छोटी से बड़ी हुई, जिसमें राधा हुई थी। बाल्यावस्था में मैं भी उसी परिस्थिति में रही और उसी तरह के संस्कार मेरे चित्त पर जमे।

मेरे पिता जी मेरी बाल्यावस्था में ही मर गए थे। मेरी माता जीवित थी; एक भाई था, जो आजीविका के निमित्त विदेश में रहता था। एक बहिन मुझसे बड़ी, सौभाग्यवती और सन्तान वाली थी। तेरह वर्ष की अवस्था में मेरी माँ और बहिन के उद्योग से मेरा विवाह राधा के पिता के साथ हो गया; और उसी समय

सामग्री होती, वह मैं अपनी बहिन को भेजती। यदि सौत के बालक कोई चीज माँगते या खाने के लिए कहते, तो पति की अनुपस्थिति में मैं उनका मुँह झाड़ देती। मेरा भीतरी यही भाव रहता था कि ये बालक मेरे लिए जीते क्यों बच गए। मैंने अपनी तरफ़ से उनके साथ अत्याचार करने में कोई कसर नहीं रक्खी। थोड़े ही दिनों बाद सबसे छोटे लड़के को छोटी माता निकली, जिसमें बदपरहेजी रहने से बीमारी बिगड़ गई; और वह चल बसा। उसके कुछ ही महीने बाद उससे बड़ी लड़की मियादी बुख़ार में समाप्त हो गई। राधा के ससुराल जाने के एक साल ही में दो तो समाप्त हो गए। शेष तीन में से एक विवाहित था। वह मेरे व्यवहार से दुःखी होकर अपनी स्त्री-सहित कलकत्ते चला गया। अब एक लड़का ग्यारह वर्ष का और एक लड़की नौ वर्ष की अविवाहित अवस्था में मेरे पास रह गए। मैंने सोचा कि इनका विवाह कर छुट्टी कर देनी चाहिए। लड़की तो किसी दुजहे वर को दे दी जाय, ताकि विवाह होते ही अपने घर चली जाय। लड़के का विवाह होने के बाद उसकी बहू से मेरी न बनेगी, तब वह भी अलग कर दिया जायगा। निदान इन दोनों के सम्बन्ध करने की बातें चलने लगीं। लड़के के लिए एक ठिकाने की बात आई, जो हमसे बहुत अधिक हैसियत का था। लड़की मङ्गलीक थी। उसके योग्य मङ्गलीक वर नहीं मिलता था। हमारा लड़का मङ्गलीक था, इसलिए मेल बराबर खा गया। लड़की उम्र में पूरी अर्थात् बारह वर्ष की थी।

धर्मराज—क्या लड़के से लड़की एक साल बड़ी होने से भी तुम बराबर की जोड़ी समझती हो? हिसाब से तो लड़की पाँच-छः वर्ष छोटी होनी चाहिए।

कृष्णा—महाराज, उस समाज में लड़के से लड़की छोटी होने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। साल दो साल छोटी-बड़ी हो, तो बराबर की जोड़ समझी जाती है। फिर अपनी बराबरी का अथवा अपने से अधिक हैसियत का सम्बन्ध मिले, तो उम्र का इतना विचार नहीं किया जाता; न रूप-रङ्ग अथवा गुण-अवगुण का ही ख़्याल किया जाता है। धन और दहेज पर ही ध्यान रहता है।

क्षमा—लड़के-लड़की के सम्बन्ध के स्थान में रुपए का रुपए से सम्बन्ध होता है।

कृष्णा—जिस लड़की से सम्बन्ध की बात थी, वह अवश्य कुरूप थी और उसकी माँ की शाख ठीक नहीं थी। उसका अपने पति से मेल न था; परन्तु लड़की का पिता बहुत धनाढ्य था तथा दहेज भी ज़बरदस्त देने वाला था। ख़ासकर इस लड़की के मङ्गली होने के कारण उसे वर नहीं मिलता था; इसलिए हमको वह विशेष दहेज देने का इक़रार करता था। इसीलिए यह सम्बन्ध पक्का करने की मैंने 'हाँ' कर ली।

इसी समय प्रसिद्ध शौक़ीन सेठ कन्हैयालाल की स्त्री अपने पति के अत्याचार से दुखित होकर विष खाकर मर गई थी। यह वही बाबू थे, जिनका ज़िक्र राधा के बयान में आ चुका है। उनके

बूढ़े के साथ ब्याही गई थी; परन्तु तेरी तरह उसके ऊपर थोड़े ही बैठी रही! उसके जीते ही दूसरा ठिकाना कर लिया था; और उसके मर जाने पर तो पूरी स्वतन्त्रता ही हो गई। मैं तेरे लिए सब इन्तज़ाम कर दूँगी। कल मेरे साथ चलना। मैंने कहा—यह काम मुझसे कैसे हो सकता है? मैंने सुना है, इससे बहुत पाप लगता है। तब उसने कहा—पाप-पुण्य किसने देखा है? पाप उसको लगेगा, जिसने तुम्हारे साथ विवाह किया; और अब तुमको सँभाल नहीं सकता या पाप लगेगा उसको, जिसने तुम्हें इसके गले बाँधा। तुम्हारी जाने बला। तुम पाप-पुण्य का भय छोड़ कर, मैं जिस तरह कहूँ किए जाओ।

उसकी बातें मेरे दिल पर असर कर गईं; और दूसरे दिन दोपहर के समय मैं उसके साथ उसकी बाड़ी में गई। थोड़ी देर ठहरने के बाद वहाँ एक नवयुवक आया, जिससे मेरी भेंट कराई गई। मैंने उसकी जाति और नाम-धाम पूछा; परन्तु कुछ नहीं बताया गया और दूसरे दिन फिर मिलने की ठहरी। उसके मिलने से मुझे अच्छा आनन्द मिला, इसलिए दूसरे दिन वहाँ जाने की मुझे बड़ी उतावली थी। जब दूसरे दिन नियत समय पर मैं गई, तो उस पुरुष को वहाँ पहले ही मौजूद पाया। वह मुझसे बड़े ही प्रेम से मिला; और जन्म भर प्रेम निबाहने का क़रार किया। बातों-बातों में मुझे पता लग गया कि वह जैनी है, जूट के फाटके की दलाली करता है, हज़ारों-लाखों की हार-जीत करता है; और पहले नम्बर का ऐय्याश है। उससे प्रेम कर मैं

बहुत प्रसन्न हुई; परन्तु जब वह मुझसे मिल कर कमरे के बाहर निकला, तो उस कुटनी के साथ उसकी कुछ बोल-चाल हुई, जिससे मुझे विदित हुआ कि कुटनी ने उसके साथ जो ठहराव किया था, उससे वह सन्तुष्ट नहीं थी। मेरा मूल्य वह ठहराव से बहुत ज्यादा समझती थी, जो जैनी महाशय देना नहीं चाहते थे, इसलिए मुझसे फिर न मिलने की बात उनसे तय हो गई। मैं यह सुन कर बहुत घबराई; और जैनी जी के जाने के बाद कुटनी से दूसरे दिन का समय पूछा तो उसी समय पर फिर से पहुँचने को उसने कह दिया।

मैंने कहा—जैनी महाराय से तो अब न मिलने की तुम्हारी बात हुई है।

उसने उत्तर दिया—यह आदमी ठीक नहीं है। मेरे पास इससे भी अच्छे-अच्छे बड़े आदमी हैं, जिनसे मिल कर तुम इससे भी ज्यादा ख़ुश होओगी।

मैंने कहा—मैं वेश्या थोड़े ही हूँ, जो हर एक से मिलती रहूँगी।

इस पर वह मुँह तान कर कहने लगी—क्या उसने तुम्हारे साथ विवाह किया है, जो अपना हक़ जमाती हो।

इसका उत्तर मैं कुछ भी न दे सकी; और नम्रभाव से उससे कहा—जैनी बाबू से लाभ होने में जो कसर रहे, वह मुझसे ले लो; और मुझे उन्हीं से मिलने का प्रबन्ध रक्खो। वह कुटनी उधार करने वाली न थी, इसलिए मैंने उसको अपने हाथ का एक

भेद मालूम था, इसलिए उसको ही फँसा कर जेल भेजवाना निश्चित हुआ था। पुलिस ने ग्वाले को गिरफ़्तार कर लिया। थाने में इजहार देने के लिए मुझे ले जाने को पुलिस वालों ने ज़ोर दिया; इस पर पति ने उनकी ख़ासी भेंट-पूजा कर पीछा छुड़ाया। ग्वाले पर मुक़दमा चला; और उसे तीन वर्ष की कड़ी सज़ा हुई। यद्यपि इस काम में मुझे पूरी सफलता मिली; और मैं अपने प्रेमी से मिलने उसी तरह जाती थी; परन्तु गुप्त पुलिस को मेरे इस गुप्त रहस्य का कुछ पता लग गया; अतः वे लोग मुझे और मेरे प्रेमी को तङ्ग करने लगे। मैंने उनको बहुत कुछ ठगाया, जिससे उन्होंने मेरा तो पीछा छोड़ दिया; परन्तु मेरे प्रेमी का पीछा न छोड़ा। इससे वह बहुत घबड़ाया और अपने देश को भाग गया। उसके जाने से मेरे दुख का ठिकाना न रहा। सब ज़ेवर स्वाहा किया, इतना जाल रचा, फिर भी प्रेमी पास नहीं रह सका। कुटनी के सामने मैं बहुत रोई। उसने ढाढ़स देकर कहा—घबड़ाती क्यों हो, थोड़े दिनों बाद वह आ जायगा। मैं उसकी प्रतीक्षा करने लगी। बहुत उदास रहती थी। अपने पति तथा दूसरों को उदासी का कारण, गहनों का चुराया जाना ही बताती थी।

जब बहुत दिन बीत गए और प्रेमी न लौटा, तो कुटनी ने मेरे पास आकर अन्य पुरुषों से मिलने के लिए कहा। मुझे काम का वेग बहुत सताया करता था, इसलिए कुटनी के कहने से मैं तीन-चार पुरुषों से मिली, जिनके परिचय का मुझे कुछ भी पता नहीं था। उनमें से एक के चिह्न मुझे मुसलमान जैसे प्रतीत होते थे; परन्तु

मेरा मन इतने में से किसी के साथ भी न लगा। चोरी होने के बाद पति ने स्थान बदल दिया। एक दूसरी वाड़ी में कमरा लेकर रहने लगे। इस कमरे से सटे हुए कमरे में एक ब्राह्मण अकेला ही रहता था। उसकी गृहस्थी वहाँ न थी। वह बड़ा रसिक था; अतः मेरे चाल-ढाल से ही वह मेरे चरित्र का हाल जान गया। जब मुझे अकेली पाता तो कुत्सित सम्बन्ध की छेड़-छाड़ किए बिना न रहता। मेरे भी चित्त पर उसकी बातों तथा रङ्ग-ढङ्ग का प्रभाव पड़ गया; और मैं उससे हँसी-मसखरी की बातें करने लगी। मेरे और उसके कमरे के बीच में एक लकड़ी की दीवार थी, जो छत तक नहीं पहुँची थी। उसके ऊपर से एक कमरे से दूसरे कमरे में आदमी आ-जा सकता था; अतः रात के नौ बजे के लगभग मेरे पति के बाहर जाने के बाद उस रसिक पुरुष के साथ दीवार लाँघ कर कमरे में आने की बात ठहर गई। मैंने सोने का बहाना कर, कमरा भीतर से बन्द कर लिया। दीवार के दोनों तरफ़ सन्दूकें रख कर जाने-आने के लिए सुगमता कर ली गई। ग्यारह बजे तक वह मेरे पास रहा। इस तरह उस रसिक ब्राह्मण से मेरी पटरी बैठ गई; और घर ही में काम बन जाने से बहुत दिनों तक मेरा कार्य सुखपूर्वक चलता रहा।

धर्मराज—क्या तुम्हारे इस तरह के कुकर्मों की तुम्हारे पति को कुछ भी ख़बर नहीं मिली? क्या उसको कोई शक भी नहीं हुआ?

कृष्णा—नहीं महाराज! मैं पति से इस तरह का बनावटी प्रेम

दिखाया करती कि उनको यही यक़ीन होता था कि मैं पूरी पतिव्रता हूँ। वे सवेरे भोजन करने तक घर में रहते। उस समय मैं उनकी बहुत आवभगत करती। अपने हाथ से उनके शौच के हाथ धुलाती। स्नान के समय स्वयं उनके पास खड़ी रहती; और पानी डालती। पूजा के बर्तन अपने हाथ से साफ़ करती; और जब तक वे पूजा करते, मैं भी पीताम्बर पहिन कर उनके पास बैठी रहती। पूजा में सहायता भी देती। महादेव जी की वे पूजा करते थे। जब वे स्तोत्र पढ़ते और आर्ती गाते, तब मैं भी उनके साथ गाती। उनके पहनने के कपड़े मैं ही सँभालती। भोजन के समय उनके पास बैठ कर बहुत ही यत्न से भोजन कराती; और उनकी जूठी पत्तल में स्वयं भोजन करती। अपने हाथ से पान लगा कर खिलाती; और कुछ पान डिब्बे में भर कर साथ दे देती। भोजन करवे थोड़ी देर लेटते, तब पाँव दबाती और ग्यारह बजे के लगभग जब वे दूकान जाते, तो उनके विछोह के लिए बहुत व्याकुलता दिखाती, यहाँ तक कि कभी-कभी इस बात का हठ करने लगती कि आज जाने नहीं दूँगी; यह कह कर रोने लगती। जब वे छः बजे आते, तो उस समय उनके लिए बहुत उत्कण्ठा दिखाती; और आने की ख़ुशी प्रकट करती। हद्द दर्जे के प्रेम और चापलूसी की बातें करती—मुझे तो संसार में आपके सिवाय कोई मनुष्य ही नहीं दीखता। आपको नहीं देखती, तो संसार में अन्धकार दिखाई देने लगता है। आपके जाने के बाद एक-एक मिनिट गिन-गिनकर निकालती हूँ। कहीं भी चित्त नहीं लगता। जब आने का टाइम होता

है; और आने में कभी देर हो जाती है, तो घबड़ाकर पागल सी हो जाती हूँ। न मालूम इतने प्रेम से आगे क्या दशा होगी इत्यादि बातें सदा कहा करती। मेरे पति बेचारे सीधे-सादे आदमी थे। मेरी सब बातें सच मान कर मन में फूले न समाते। शाम को भी मैं उनके साथ उसी तरह का अति प्रेम का वर्त्ताव करती; और नौ बजे वे जाते तथा बारह बजे पीछे आवें, तब भी यही ढोंग करती। इन बातों से उनका मुझ पर इतना विश्वास हो गया था कि यदि पर-पुरुष उनके सामने भी कभी मेरे साथ हँसी-मसखरी की बातें कर लेते; और मैं निर्लज्जता का व्यवहार कर लेती, तो भी उनके चित्त में किसी प्रकार का शक न होता। कभी-कभी लोग इनसे मेरी दुश्चरित्रता की बातें कहते, तो वे उन पर कुछ भी ध्यान न देते।

धर्मराज—क्या तुम्हारे चरित्रों को पड़ोसी लोग नहीं जानते थे?

कृष्णा—पड़ोस की बहुत सी स्त्रियाँ तो अवश्य जानती थीं; परन्तु कहने योग्य कोई न थीं; क्योंकि कोई न कोई छिद्र सब में रहता था। वाड़ी के पुरुष तो सभी दिन में भोजन करके चले जाते थे; और शाम को लौटते थे। इस बीच में स्त्रियों को पूरी स्वतन्त्रता रहती थी। वाड़ी में कपड़ा बेचने वाले, मनिहार, चूड़ी वाले, फल-फूल बेचने वाले, हलवाई, भड़भूजे, रङ्गरेज, पटवे आदि कई तरह के व्यवसायी आते, जिनको स्त्रियाँ अपने कमरों में ले जाकर स्वतन्त्रतापूर्वक चीजें खरीदतीं और वे लोग

यदि चाहते तो एकान्त में उनसे छेड़-छाड़ कर सकते थे। कोई-कोई स्त्रियाँ अपनी हैसियत से अधिक की चीजें उधार खरीद लेती थीं; और क़ीमत न दे सकने पर उनकी ज़लील होना पड़ता था। इन व्यवसायियों में प्रायः नीच जाति के लोग तथा मुसलमान होते थे; परन्तु उनसे परहेज़ नहीं था। असल में उस समाज में इन बातों को विशेष ऐब नहीं समझा जाता था।

देवता लोग—अर्थात् इस समाज में स्त्रियाँ अपने धर्म्म का कुछ भी ज्ञान नहीं रखतीं।

कृष्णा—एक दिन ऐसा संयोग हुआ कि किसी रिश्तेदार के यहाँ विवाह-सम्बन्धी काम में सम्मिलित होने के लिए मैं शाम को चली गई। रसिक महोदय को अपने जाने की सूचना न दे सकी। मेरी अनुपस्थिति में बुढ़िया रसोईदारिन ब्राह्मणी, जिसे मेरे रसिक जी के सम्बन्ध का शक हो गया था, मेरा कमरा बन्द कर, मेरे स्थान पर सो गई। रसिक महोदय अपने समय पर दीवार फाँद कर उतरे और पुतले की बदलौअल देख कर घबड़ाए। उस घबड़ाहट में बिना कुछ सोचे-विचारे कमरे का दरवाजा खोल कर बाहर निकल पड़े; परन्तु जब उनको अपने कमरे के दरवाज़े का अन्दर से बन्द होना स्मरण हुआ, तो वापिस लौट दीवार फाँद कर अपने कमरे में चले गए। बुढ़िया ने हो-हल्ला मचाया, जिससे पड़ोसी लोग एकत्रित हो गए। कई एक ने रसिक जी को मेरे कमरे से निकलते और पीछे अन्दर जाते देख लिया था। बाड़ी में इस बात की बड़ी चहल-पहल रही। जब मैं वापस आई, तब वारदात सुन कर

बहुत बिगड़ी और रसिक जी को चोरी के इरादे का इल्ज़ाम लगाने लगी—पहले भी दूसरी बाड़ी में इसी तरह मेरी अनुपस्थिति में चोरी हुई थी और आज यहाँ मेरी अनुपस्थिति में इस तरह की कार्रवाई फिर हुई। देखने में किस तरह के भलेमानुष दीखते हैं; और ऐसे काम करते हैं इत्यादि। भले-बुरे बहुत आक्षेप करती रही। अपने पति से तुरन्त सब हाल कहा। उन्होंने भी बहुत बुरा-भला कहा; परन्तु रसिक जी इस बात की कुछ भी पर्वाह न कर अपने कमरे के अन्दर चुपचाप सोते रहे। हम लोग थोड़ी बक-झक करके रह गए; क्योंकि सीधा ब्राह्मण था, इसलिए बात ज्यादा बढ़ाने की हिम्मत न थी। यदि रसिक जी के स्थान में कोई उद्दण्ड-ब्राह्मण होता, तो हम लोग इतना भी न बोल सकते।

दूसरे दिन कमरे के बीच वाली दीवार ऊँची करवाकर छत से सटा दी गई। मेरे पति को फिर भी मुझ पर कोई सन्देह न हुआ; परन्तु बाड़ी में तथा सम्बन्धियों में मेरे विषय की बहुत चर्चा होने लगी। रसिक जी से मेरे गर्भ रह गया था, जो इस समय तीन-चार मास का था। देश जाकर ही प्रसव करने की मेरी तथा पति की इच्छा थी। लोक-निन्दा के भय से देश जाने का विचार कर लिया। पति जी को अपने कार्य से अवकाश न था, इसलिए उन्होंने एक गुमाश्ते के साथ, जो वैश्य-जाति का था, मुझे देश को रवाना किया। विदा होते समय मैंने पति से इतना प्रेम दिखाया कि न मालूम पति-वियोग के कारण जीती रहूँगी या नहीं। रोते-रोते हिचकियाँ बँध गईं; और एक-दो बार

हिस्टीरिया रोग से वेहोश होने का ढोंग भी किया। मेरे पति भी ऐसी दशा में मुझ गर्भवती से अलग होने के कारण अत्यन्त दुखी हुए; परन्तु कार्य के कारण लाचार थे। जो गुमाश्ता मेरे साथ किया गया था, वह अठारह-उन्नीस वर्ष का था। दीनावस्था में होने के कारण वह अभी तक कुँवारा था। मैं पर-पुरुषों के सामने साधारणतया लज्जा कम रखती थी—बारीक से बारीक कपड़े पहन कर लोगों के सामने निकला करती थी, जिससे अङ्ग-प्रत्यङ्ग दीखता रहे। दूज वरों के साथ जिनका विवाह होता है, वे अपने रूप-यौवन के घमण्ड में निर्लज्जता करने और निर्लज्ज पहिनावा पहिनने से ही प्रसन्न होती हैं। अपने से छोटे दर्जे के पुरुषों को तो वे मनुष्य ही नहीं समझतीं। मैं भी अपने साथी गुमाश्ते से किसी बात की शर्म न करती, मानो वह पुरुष नहीं—स्त्री है। स्वामी की स्त्री होने के कारण वह मेरा अदव करता था; परन्तु अपने व्यवहारों से मैं उसे अपने साथ छेड़-छाड़ करने के लिए उकसाती रहती थी। एक तो वह ठहरा कुंवाँरा नवयुवक, दूसरे समवयस्क और उस पर भी एकान्त स्थान; भला ऐसे अवसर पर मेरा मन क़ब्ज़े में कैसे रह सकता था? वह युवक भी इस अवस्था में कलकत्ते जैसे व्यभिचार के केन्द्र में रह कर इस काम से बचा हुआ न था, वह मेरा भाव समझ गया; और छेड़-छाड़ करने लगा। सारा मार्ग इसी तरह की छेड़-छाड़ और धींगा-मस्ती में समाप्त हुआ। जब हम लोग देश पहुँचे, तो गुमाश्ता नित्य मेरे यहाँ आया करता था। मैं एकान्त में बैठ कर उसीसे पति को

चिट्ठी लिखाया करती। मैं स्वयं चिट्ठी लिखना नहीं जानती थी। चिट्ठी में अत्यन्त प्रेम और विरह तथा अनेक प्रकार के घरेलू अन्य गुप्त समाचार लिखवाती; अतः लिखने वाले से किसी बात का परदा नहीं रहता था। घण्टों एकान्त का अवसर मिलने के कारण उससे तुरन्त मेरा अनुचित सम्बन्ध हो गया। आने वाली चिट्ठी पढ़ने और जाने वालों लिखने के बहाने से एकान्त वास प्रायः नित्य हो जाया करता था। इस तरह दो-तीन महीने गुज़र गए। मैं अधिकतर पीहर में रहने लगी। प्रसव अपनी माँ के यहाँ ही करना था; अतः ज्यों-ज्यों दिन नज़दीक आते गए, त्यों-त्यों पीहर में ज्यादा रहने लगी। वहाँ भी गुमाश्ता जी आ जाते। मेरी माँ को गुमाश्ता जी से मेरा गुप्त सम्बन्ध मालूम था; इसलिए जब वे आते तो माँ हम दोनों को एकान्त में छोड़ कर कहीं बाहर चली जाती। घर में माँ के सिवाय दूसरा कोई था ही नहीं; अतएव हम लोग निश्चिन्त थे।

धर्मराज—क्या तुम्हारी माँ तुम्हारा सतीत्व बिगाड़ने में सहायक थी?

कृष्णा—वहाँ सतीत्व को कौन महत्व देता है। येन-केन-प्रकारेण या तो विषयोपभोग करना या धन-सम्बन्धी स्वार्थ ही उस समाज में सब कुछ है। ऊपर से धार्मिकता का स्वाँग खूब किया जाता है। खूब छूत-छात रखना, मन्दिरों में जाना और पुण्य के नाम पर धूर्तों से ठगा कर उनसे प्रशंसा करवाना, दूसरों की निन्दा तथा अपनी बड़ाई करना, दूसरों को व्यभिचारिणी बताना और स्वयं

पतिव्रता बने रहने आदि का ढोंग बहुत ही किया जाता है; और इस तरह के ढोंगों की ओट में घोर से घोर कुकर्म करने में कुछ भी भय या ग्लानि नहीं होती।

प्रसव के अवसर पर मैंने पति को बुलाने के लिए कई बार लिखा, जिसके उत्तर में उन्होंने यह लिखा कि यदि पुत्र-जन्म का शुभ अवसर होगा, तो आ जाऊँगा; परन्तु मेरे घोर दुर्भाग्य से पुत्र का मुख देखना नसीब नहीं हुआ। कन्या-रूपी पत्थर आ पड़ा!

धर्मराज—क्या कन्या पत्थर होती है? क्या तू स्वयं कन्या नहीं थी?

कृष्णा—महाराज, स्त्री का मान पुत्र उत्पन्न करने से ही होता है। कन्या पैदा होने से वह सब की नजर में गिर जाती है; यद्यपि पैदा करने में उसका कोई अधिकार नहीं है।

मेरे प्रथम बार ही कन्या होने से पति नहीं आए और नाते-रिश्ते तथा स्नेही स्त्रियाँ सब मेरे इस दुख में सहानुभूति प्रकट करने को आईं। मैं भी कलेजा मसोस कर रह गई।

प्रसव हो जाने पर मैंने यह विचार किया कि दूसरी बार पुत्र ही उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसलिए मन्त्र-तन्त्र, पूजा-पाठ, देवी-देवता की मिन्नत, जात बोलना, पीर-क़ब्रों को धूनी देना, टोने-टामन आदि जितने भी पुत्र होने के साधन थे, उनमें किसी बात की कसर नहीं रक्खी। जिसने जो कुछ साधन बताया,

वही किया। नीच से नीच, घृणित से घृणित पाप-कार्य करने में मैंने आना-कानी नहीं की। पेट के लिए वेदीन होना पड़ता है—इस कहावत को मैंने अच्छी तरह चरितार्थ कर दिया।

एक ब्राह्मण की सिद्धाई बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। उसके चमत्कारों के गीत हर जगह ख़ूब गाए जाते थे। अनुष्ठान-प्रयोग कर पुत्र-हीन को पुत्र, द्रव्य-हीन को द्रव्य देता था, कुँवारों का विवाह करा देता था तथा रोगियों को निरोग बनाता और मुक़द्दमे वाले को मुक़द्दमा जिता देता था। मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण उसके बाएँ हाथ के खेल थे। मैं उस सिद्ध की तारीफ़ सुन कर शाम के वक़्त उसके घर गई। वह अपने नित्य-नियम में बैठा हुआ था। रक्तवर्ण के सब वस्त्र पहिने था। देवी की पूजा-सामग्रियों से कमरा बड़े ठाठ से सजा हुआ था। पूजन के सैकड़ों छोटे-मोटे चाँदी के बर्तन अनेक प्रकार की सामग्रियों से भरे थे। अष्टाङ्ग धूप की सुगन्ध से कमरा महक रहा था। कई दीपक जल रहे थे, जिनमें से अनेक अखण्ड ज्योति के बतलाए गए। वहाँ का ढङ्ग देख कर मेरे दिल में पूर्णतया श्रद्धा हो गई। जब सिद्ध जी से बातें हुईं, तब तो मुझे निश्चय हो गया कि देवी इसके साक्षात्कार है; यह जो चाहे सो करने की सामर्थ्य रखता है। अनेक बड़े-बड़े आदमियों के कार्य भी उसने सिद्ध किए हुए बतलाए। विशेष कर पुत्र देने के तो सैकड़ों चमत्कार दिखाए। मेरी पुत्रेच्छा वह पहले ही लोगों से सुन चुका था; और जो स्त्री-दलाल मुझे यहाँ लाई थी, उसने मेरा

सब हाल कह दिया था; अतः वह मुझसे इस तरह बातें करने लगा कि मानो वह मेरे दिल का सब हाल जानता हो। सारांश यह कि उसने मुझ पर पूरा प्रभाव डाल दिया। मैंने उससे कहा—आप मेरे दिल का हाल तो सब जानते ही हैं, अब जैसे बने मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिए।

उसने कहा—यह कौन सी बड़ी बात है, जगदम्बा प्रार्थना सुनते ही उसे पूर्ण करेंगी। करने-कराने वाली तो सब योग-माया है, मेरा क्या अख़्तियार है।

मैंने कहा—योग-माया आपके घट में ही निवास करती है।

उसने कहा—तुम्हारी जन्म-पत्री में ग्रहों का ऐसा योग पड़ा है, जिससे पुत्र की बाधा है। उस योग का दोष मिटाने के लिए बड़ा अनुष्ठान करना होगा; और आधीरात के समय श्मशान में बलिदान देना होगा, जो काम बड़ा भयानक और जोखिम का है। भगवती साक्षात् खप्पर लेकर सामने आ खड़ी होती हैं। यदि थोड़ी चूक हुई कि बलि देने वाले का ही बलिदान हो जाता है। देवताओं को छेड़ना कोई तमाशा नहीं है; परन्तु तुम्हारे वास्ते तो सब करना ही होगा।

मैंने कहा—महाराज, आपकी बड़ी दया होगी, मैं आपका एहसान जन्म भर न भूलूँगी।

उसने कहा—अच्छा, अनुष्ठान और बलि की सब सामग्री मैं पत्रे पर लिख कर इस (दलाल) स्त्री के हाथ भेज दूँगा। उसके अनुसार सब चीज़ भेज देना। मैं तो इस वक्त तुमसे कुछ

नहीं लूँगा; जब तुम पुत्र को गोद में खेलाओगी, तब प्रसन्न होकर बधाई दोगी, वह ले ली जायगी। यहाँ योग-माया की कृपा से किसी बात की कमी नहीं है। जो आवश्यकता होती है, वह स्वयं भेज देती हैं। (गद्दी को बताकर) इस के नीचे से रुपए निकलते ही चले जाते हैं। भैरव जी के स्थान पर रोज़ पचास ब्राह्मणों का भोजन नियम से होता है। हमारी कुछ दूकानें तो चलती ही नहीं, सब योग-माया ही भेजती हैं।

मैंने कहा—महाराज, अनुष्ठान और बलिदान की सामग्री मैं कहाँ एकत्र करती फिरूँगी, आप ही मँगा लें और जो खर्च लगे मैं दे दूँगी। एक दिन के ब्राह्मण भोजन का खर्च भी मैं दूँगी।

उसने कहा—इतने बड़े अनुष्ठान की केवल पचास ब्राह्मणों के भोजन से शान्ति नहीं हो सकती। कम से कम दो-सौ ब्राह्मण जीमने चाहिए।

निदान अनुष्ठान, बलिदान और ब्राह्मण-भोजन के खर्च का तख़मीना १०००) रु० का हुआ। यह खर्च मैंने घर जाकर भेज दिया। सिद्ध जी ने कहा था—मैं अधिक भैरव जी के स्थान में ही रहता हूँ, जो शहर से एक मील दूर जङ्गल में झाड़ी के बीच में है। वह बहुत रमणीय स्थान है; और वहाँ एकान्त होने से मेरा जप-अनुष्ठान ठीक होता है। घर में तो मैं बहुत कम रहता हूँ। आज तुमको इत्तफ़ाक़ से ही मिल गया। अगले रविवार को दोपहर के समय एक बजे तुम भी भैरव जी के स्थान पर आना। इतने में अनुष्ठान हो जायगा। उसका प्रसाद लेना, भैरव जी के दर्शन

सब हाल कह दिया था; अतः वह मुझसे इस तरह बातें करने लगा कि मानो वह मेरे दिल का सब हाल जानता हो। सारांश यह कि उसने मुझ पर पूरा प्रभाव डाल दिया। मैंने उससे कहा—आप मेरे दिल का हाल तो सब जानते ही हैं, अब जैसे बने मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिए।

उसने कहा—यह कौन सी बड़ी बात है, जगदम्बा प्रार्थना सुनते ही उसे पूर्ण करेंगी। करने-कराने वाली तो सब योग-माया है, मेरा क्या अख़्तियार है।

मैंने कहा—योग-माया आपके घट में ही निवास करती है।

उसने कहा—तुम्हारी जन्म-पत्री में ग्रहों का ऐसा योग पड़ा है, जिससे पुत्र की बाधा है। उस योग का दोष मिटाने के लिए बड़ा अनुष्ठान करना होगा; और आधीरात के समय श्मशान में बलिदान देना होगा, जो काम बड़ा भयानक और जोखिम का है। भगवती साक्षात् खप्पर लेकर सामने आ खड़ी होती हैं। यदि थोड़ी चूक हुई कि बलि देने वाले का ही बलिदान हो जाता है। देवताओं को छेड़ना कोई तमाशा नहीं है; परन्तु तुम्हारे वास्ते तो सब करना ही होगा।

मैंने कहा—महाराज, आपकी बड़ी दया होगी, मैं आपका एहसान जन्म भर न भूलूँगी।

उसने कहा—अच्छा, अनुष्ठान और बलि की सब सामग्री मैं पत्रे पर लिख कर इस (दलाल) स्त्री के हाथ भेज दूँगा। उसके अनुसार सब चीज़ भेज देना। मैं तो इस वक्त तुमसे कुछ

एक धनाढ्य नवयुवक की बात कही, जो अपने पड़ोस की एक चौदह-पन्द्रह वर्ष की बाल-विधवा पर आसक्त था; और उसको वह सिद्ध जी की सहायता से अपने वश में करना चाहता था। सिद्ध जी उस बड़े आदमी के निमित्त उस विधवा सुन्दरी को वश करने के लिए अनुष्ठान करने वाले थे, इस तरह की बातें हो ही रही थीं कि उस बड़े आदमी की सवारी भी वहाँ आ पहुँची। आवाज़ सुन कर सिद्ध जी ने कहा—वे भी इस समय आए प्रतीत होते हैं। इस पर मैं उठने लगी, तो सिद्ध जी ने रोकते हुए कहा—उठती क्यों हो? उसका कोई डर थोड़े ही है, यहाँ भैरवनाथ के दरबार में किसी बात का भय करने का काम नहीं है।

मैं बैठी रही। इतने में वह बड़ा आदमी आ गया और दण्डवत् कर सिद्ध जी के सामने बैठ गया तथा मेरी तरफ़ घूर-घूर कर देखने लगा। थोड़ी देर तक देखने के बाद सिद्ध जी से मेरा परिचय पूछा, जिसके उत्तर में उन्होंने मेरा परिचय देकर कहा—यह वही है, जिसका मैंने तुमसे ज़िक्र किया था। ये बहुत ही उच्च घराने की स्त्री हैं इत्यादि कह कर मेरी खूब तारीफ़ करने लगा। वह नवयुवक भी—बेशक ये ऐसी ही हैं—इत्यादि वाक्य कह कर मेरी तारीफ़ में उसके साथ हो गया। मैं फिर उठने लगी, तो वह नवयुवक कहने लगा—उठने क्यों लगीं? क्या मेरे आने से नाराज़ हो? लो, मैं जाता हूँ। तुम महाराज जी से अपना काम करवा लो। मैं खीर में मुसलचन्द कैसे आ गया? यह कह कर वह

करना; फिर तुम्हारे सब मनोरथ योग-माया की कृपा से पूरे हो जायँगे।

सिद्ध जी की आज्ञानुसार रविवार को मैं इक्के पर सवार होकर भैरव जी के स्थान पर गई। वह स्थान बिलकुल एकान्त में था। उस समय वहाँ सिद्ध जी के सिवा और कोई न था। यदि सिद्ध जी वहाँ न होते, तो मुझे वहाँ जाते बहुत भय लगता; क्योंकि एक तो स्थान एकान्त का था, दूसरे भैरव जी की मूर्ति ऐसी विकट थी कि दर्शन करने से ही भय के कारण रोंगटे खड़े हो जाते थे।

सिद्ध जी भैरव जी के मन्दिर में लकड़ी के आसे के सहारे हाथ रख कर ध्यान में बैठे हुए थे। जब मैंने पहुँच कर नमस्कार किया, तो आँखें खोलीं और आचमन लेकर बातें करने लगे। उन्होंने कहा—तुम्हारा अनुष्ठान बहुत अच्छी तरह हो गया। भगवती तुम पर बहुत प्रसन्न दीखती हैं। साक्षात् होकर बलिदान को मेरे हाथ में से उठा लिया। दूसरे बलिदानों में तो हम दूर ही से भेंट कर देते हैं। अब तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होने में कोई सन्देह नहीं। यह कह कर सिद्ध जी ने प्रसाद-स्वरूप नारियल के टुकड़े और बताशे मुझे दिए। फिर बोले—यह प्रसाद कुछ अभी खा लो कुछ घर जाकर खा लेना। इसके अतिरिक्त जब तुमको ऋतुकाल होगा, उस समय कुछ मन्त्रित चीज़ें और दी जायँगी, उनको यथाविधि खाने से काम बन जायगा। इतनी बातें इस सम्बन्ध में कह कर फिर अपनी सिद्धियों और चमत्कारों की तारीफ़ करने लगे। उसी सिलसिले में

उसने भैरव जी की प्रसादी बताई; और कहा कि इसे पीकर सहवास करने से हम दोनों के मनोरथ पूर्ण होंगे। रात को मैं नवयुवक के मकान पर गई; और दोनों ने सिद्ध जी की आज्ञानुसार भैरव जीकी प्रसादी ली। उससे नशा हो गया; और ऐसा अपूर्व आनन्द मिला कि नवयुवक से बिछुड़ना मुझे असह्य हो गया तथा घर आने पर भी मुझे वही दीखने लगा। कई महीनों तक मैं उससे मिलती रही। यद्यपि मैं उससे मिलने के लिए बहुत आतुर रहती; परन्तु उसको मेरी विशेष चाह नहीं थी; क्योंकि मुझको उसके जैसा पुरुष मिलना असम्भव था; परन्तु उसको मुझसे अच्छी-अच्छी मिलती थीं। इसलिए सिद्ध जी के द्वारा उसको वश करने का मैंने प्रयत्न किया और इसके लिए उनको एक हज़ार रुपए फिर देने पड़े। मेरे पास इतने रुपए नहीं थे; इसलिए मैंने अपने हाथ की सोने की चूड़ियाँ सिद्ध जी को दे दीं; और उनके बदले में सिद्ध जी की मार्फ़त ही चाँदी की चूड़ियाँ बनवा कर उन पर सोने का मुलम्मा चढ़वा पहन लीं।

लड़की होने के छः महीने बाद मुझे मासिक-धर्म होने लगा; परन्तु एक बार होकर फिर दूसरी बार होने में एक महीने से कई दिन ऊपर निकल गए। तब मुझे सन्देह हुआ कि नवयुवक से मेरे गर्भ रह गया है; और यह आशा हो गई कि सिद्धजी की कृपा से इस बार मेरे अवश्य पुत्र होगा, जो नवयुवक जी की आकृति पर बहुत खूबसूरत होगा। इस विचार से मेरा चित्त बड़ा प्रफुल्लित हुआ; परन्तु इस परिस्थिति में पति को बुलाना बहुत आवश्यक

उठने लगा, तब सिद्ध जी ने उसको रोक कर कहा—आप नाराज़ क्यों होते हैं? औरतें तो शर्म किया ही करती हैं, आप औरत थोड़े ही हैं। आप तो खेलाड़ी हैं और (मेरी तरफ़ इशारा करके) यह भी खेलाड़िन हैं; फिर उठना और जाना किस बात के लिए? इतना कह कर सिद्ध जी ने नवयुवक को कुछ इशारा किया और नवयुवक मेरा हाथ पकड़ खींच कर मुझे भैरव जी के मन्दिर से सटे हुए शिव जी के मन्दिर में ले गया और मन्दिर की फिरनी (परिक्रमा) में मेरा-उसका प्रथम मिलन हुआ!!

देवता लोग—शिव! शिव!! देव-मन्दिर में ऐसा कुकर्म?

कृष्णा—महाराज, बड़े-बड़े देव-मन्दिरों के सिवाय, जहाँ बहुत लोग दर्शन करने जाते हैं, अधिकांश छोटे-छोटे मन्दिरों में इस तरह के अनेक कुकर्म होते हैं। प्रायः देव-मन्दिर व्यभिचार के अड्डे बने हुए हैं।

धर्मराज—क्या उस समय वहाँ पुजारी न था?

कृष्णा—पुजारी सुबह-शाम पूजा करके शहर में चला जाता था; और यदि वह रहता भी तो अपनी फ़ीस लेने के सिवाय क्या करता?

देवता लोग—धर्म की अच्छी मिट्टी-पलीत होती है।

कृष्णा—नवयुवक बड़ा ही खूबसूरत, अमीर और चञ्चल-बुद्धि का आदमी था। मैं उससे मिल कर बहुत प्रसन्न हुई और रात को उसके मकान पर मिलने का वादा किया।

सिद्ध जी ने नवयुवक को एक बोतल में कोई चीज दी, जिसको

लाकर मुझे पिला कर पूरा निश्चय करा दिया। रसिक जी से मुझे गर्भ रहा, तब मैंने मूढ़-गर्भ को सजीव कर दिया; और मुझे प्रसन्न करने वाला पुत्र प्राप्त हो गया तथा अन्त समय तक रसिक जी के साथ में सुखपूर्वक रही।



मिलने की मेरी इच्छा न रहने पर भी मुझे मिलना पड़ा; क्योंकि पति के कह जाने से वह मुझ पर कुछ हुकूमत सी किया करते थे; और इस साधारण बात के लिए मैं उनको अप्रसन्न करना भी उचित नहीं समझती थी। महन्त जी से मिलने में मुझे सन्तोष नहीं था। मैं चाहती थी कि मेरे घर में ही बेखटके पुरुष-समागम का कोई प्रबन्ध हो जाय।

संयोग से कलकत्ते वाला वह रसिक ब्राह्मण, जो कमरे के बीच की दीवार फाँद कर मेरे पास आया करता था, देश में ही था। वह एक दिन मेरे पति के मरण की समवेदना प्रकट करने के लिए मेरे पास आया। उसके दिल में मेरी चाह उसी प्रकार बनी हुई थी। मैंने उसको अपने काम-काज के लिए गुमाश्ता रख लिया। उसको दिन-रात अपने ही घर पर रखती, जिससे मेरे मन के अनुकूल प्रबन्ध हो गया। इस बात से महन्त जी मुझसे नाराज़ हो गए; और मेरे घर वालों तथा दूसरों के सामने मेरी बहुत बदनामी की; परन्तु मैंने उसकी कुछ पर्वाह न की। बदनामी को सहन करने तथा उनका मुक़ाबला करने का मुझे काफ़ी अभ्यास हो चुका था, इससे मैं कुछ भी न डरी। मेरे घर वालों ने मुझे रसिक जी को निकाल देने के लिए बहुत कहा; परन्तु मैंने किसी की न सुनी। रसिक जी पूरे नास्तिक थे। देवी-देवता, भूत-प्रेत, सिद्धों की सिद्धाई आदि को कुछ भी न मानते थे, अतः उन्होंने मेरा भी इनसे पीछा छुड़ाया। सिद्ध जी ने बोतल में जो भैरव जी की प्रसादी दी थी, वह विलायती मदिरा थी। रसिक जी ने वही चीज़

को दिलाई, उस तीसरे लड़के की पाँच वर्ष की बहिन एक चौथे पैंतीस वर्ष के दुजहे वर को दिलाई; और उस चौथे की दो वर्ष की बेटी मेरे भाई को मिली। वे चारों ही विवाह एक साथ हुए; क्योंकि एक-दूसरे का विश्वास किसी को नहीं होता था।

देवता लोग—राम! राम!! कैसा घोर अन्याय! विवाह क्या है, मानो कोई कठपुतलियों की खिलवाड़ है। ऊँट-छछूँदर का मेल; भैंस-चूहे का मेल!

भानमती—मेरा विवाह कब और कैसे हुआ—मुझे पता नहीं; परन्तु जब मैं बड़ी हुई, तो सुना कि मेरा विवाह तीन वर्ष की अवस्था में मेरी माता की गोद में ही हुआ था; और विवाह के दस दिन बाद ही मेरा पति शीतला की बीमारी से मर गया। मेरे माता-पिता उस समय रोए-पीटे होंगे; पर मुझे कुछ मालूम नहीं।

जब मैं कुछ बड़ी हुई, तो पिता के घर में काम-काज करने लगी। दूसरे कामों के अतिरिक्त लड़कियाँ और स्त्रियाँ गोबर बटोर कर एकत्रित करती हैं। उसकी गोबरियाँ बनाती हैं, जो घर में जलाने के काम आती हैं; और जो उससे बाक़ी बचती हैं, उनको बेंच कर पिता के लिए आमदनी करती हैं। गोबर अपने मुहल्ले की गलियों में बटोरने के अतिरिक्त, जब गाएँ जङ्गल में चरने जाती हैं, तो वे उनके पीछे-पीछे भी जाया करती हैं। वहाँ वृद्धा प्रौढ़ा, युवतियाँ और बालिकाएँ सब तरह की और सब जातियों की स्त्रियाँ जाती हैं; और बड़ा दुराचार होता है। गोबर के लिए

भानमती का बयान



मेरा नाम भानमती है। मेरा जन्म एक साधारण-स्थिति के ब्राह्मण के घर में हुआ था। हमारी जाति में लड़कियों की कमी के कारण लड़कों का विवाह होना बहुत कठिन होता है। इसलिए लड़के-लड़की का "सट्टा" हुआ करता है अर्थात् अपनी लड़की किसी को देकर उसके बदले में अपने लड़के के लिए लड़की लाते हैं। जिनके घर में केवल लड़के उत्पन्न होते हैं—लड़कियाँ नहीं, उनके लड़के प्रायः कुँवारे ही रहते या किसी की सामर्थ्य हो, तो हजारों रुपए लड़की के लिए देने पर लड़के का विवाह नसीब होता है; और यदि किसी के लड़का न होकर लड़की ही होती है, तो वह रुपए लेकर मालामाल हो जाता है। अस्तु, अपने माता-पिता के चार लड़कों के बाद मैं एक लड़की हुई थी। जिस समय मैं दो-तीन वर्ष की थी, उस समय मेरे बड़े भाई की अवस्था बारह वर्ष की हो गई थी। अतः उसका विवाह करने की मेरे माता-पिता को बहुत फ़िक्र हो गई। इसलिए उन्होंने मेरे साथ उसका सट्टा करने की कोशिश की। बहुत दौड़-धूप करने के बाद वह सट्टा पार पड़ा; अर्थात् मुझे दस वर्ष के एक बालक को दी। उस बालक की आठ वर्ष की बहिन एक तीसरे सात वर्ष के लड़के

को कहा करती; पर मेरा चित इस ओर न था, इसलिए मैं हमेशा उसे इस काम को न करने के लिए कहा करती; मगर वह कब मानने को थी? उल्टे यही उत्तर देती—जाके लगे वहा जाने, तेरे अभी तक नहीं लगी तू क्या जाने?

इस सुनार से उसके एक गर्भ भी रहा, जिसे उसने पाँच महीने का होने पर एक डोम और मुसलमान की सहायता से गिरा दिया। इस घटना का उसके माता-पिता को भी पता चल गया।

फिर उसकी एक वैश्य से घनिष्टता हो गई, जिससे छः महीने बाद ही उसे दूसरा गर्भ रह गया। जिसे तीन महीने के बाद बीमारी के बहाने गिरा दिया। इस सम्बन्ध का उसके माता-पिता तथा भाई आदि सब को पता था; क्योंकि उसकी लाई हुई अनेक वस्तुएँ वे अपने काम में लाते थे।

कुछ काल बाद उसके माता-पिता बीमार हो गए। उनके इलाज के लिए एक डॉक्टर बुलाया गया, जो एक रईस के धर्मार्थ अस्पताल में रहता था। वह हमारी ही जाति का था; और रिश्ते में हमसे बड़ा लगता था। उन्होंने मेरी सखी पर ही हाथ साफ़ किया; और वह उनके प्रेम में ऐसी उलझी कि नित्य उनके मकान पर जाने लगी। उसके घर वालों को जब यह बात मालूम हुई, तो उसका भाई तो बहुत नाराज़ हुआ; परन्तु माता-पिता की अनुमति होने के कारण उसके प्रेम में कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई। डॉक्टर साहब से उसके एक गर्भ भी रहा; पर उसके गिराने में

आपस में खूब लड़ाइयाँ होती हैं। एक-दूसरे को अश्लील गालियाँ देती हैं। राँड के सम्बोधन से ही एक-दूसरे को पुकारती हैं, अश्लील गीत गाती हैं; और ऐसी निर्लज्जता का व्यवहार करती हैं, मानो संसार में मनुष्य हैं ही नहीं। हीन जाति के ग्वाले लोग साथ रहते हैं; और वे छेड़-छाड़ भी करते रहते हैं। अनेक युवतियाँ तथा बालिकाएँ इस गोबर-लीला में ही वृद्धा और प्रौढ़ाओं की सहायता से बिगाड़ दी जाती हैं; और जो बच जाती हैं, उनको वहाँ ऐसी तालीम मिल जाती है कि फिर व्यभिचार करने में उनको कोई भय, आशङ्का, लज्जा या ग्लानि नहीं होती।

मुझे भी यह तालीम अच्छी तरह प्राप्त हो चुकी थी, अतएव जब मैं बड़ी हुई, तो मुझे किसी पुरुष से भय या सङ्कोच नहीं होता था।

बारह-तेरह वर्ष की अवस्था तक मैं वस्त्राभूषण सब सुहागिनों के समान ही पहनती थी। उसके बाद मेरे दिल में ये भाव उत्पन्न होने लगे कि मैं किसी योग्य नहीं हूँ; क्योंकि मेरा पति इस लोक में नहीं है। मगर मेरी माता मुझे दिलासा देती रहती, इससे कुछ-कुछ शान्ति मिला करती थी। मुझ अभागिनी की तरह मेरे कुटुम्ब में एक और इसी श्रेणी की दुखिया थी, जिससे मेरी बहुत घनिष्टता हो गई थी। उसका चित्त हमेशा ऐशोआराम व सांसारिक सुख में लगा रहता था। उसकी एक सुनार से मुलाक़ात थी, जो उसे बहुत आराम कराया करता; और उसके साथ आनन्द-उपभोग किया करता। वह मुझ से भी इस ओर आने

को कहा करती ; पर मेरा चित इस ओर न था, इसलिए मैं हमेशा उसे इस काम को न करने के लिए कहा करती ; मगर वह कब मानने को थी ? उल्टे यही उत्तर देती—जाके लगे वहा जाने, तेरे अभी तक नहीं लगी तू क्या जाने ?

इस सुनार से उसके एक गर्भ भी रहा, जिसे उसने पाँच महीने का होने पर एक डोम और मुसलमान की सहायता से गिरा दिया। इस घटना का उसके माता-पिता को भी पता चल गया।

फिर उसकी एक वैश्य से घनिष्टता हो गई, जिससे छः महीने बाद ही उसे दूसरा गर्भ रह गया। जिसे तीन महीने के बाद बीमारी के बहाने गिरा दिया। इस सम्बन्ध का उसके माता-पिता तथा भाई आदि सब को पता था ; क्योंकि उसकी लाई हुई अनेक वस्तुएँ वे अपने काम में लाते थे।

कुछ काल बाद उसके माता-पिता बीमार हो गए। उनके इलाज के लिए एक डॉक्टर बुलाया गया, जो एक रईस के धर्मार्थ अस्पताल में रहता था। वह हमारी ही जाति का था ; और रिश्ते में हमसे बड़ा लगता था। उन्होंने मेरी सखी पर ही हाथ साफ़ किया ; और वह उनके प्रेम में ऐसी उलझी कि नित्य उनके मकान पर जाने लगी। उसके घर वालों को जब यह बात मालूम हुई, तो उसका भाई तो बहुत नाराज़ हुआ ; परन्तु माता-पिता की अनुमति होने के कारण उसके प्रेम में कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई। डॉक्टर साहब से उसके एक गर्भ भी रहा ; पर उसके गिराने में

कोई अड़चन नहीं हुई। इस गर्भ की वात छिपी न रह सकी, इस लिए लज्जित होकर उसके माता-पिता उसे लेकर देशान्तर चले गए।

मैं अपनी सखी को इस तरह के ऐशो-आराम करते तथा भाँति-भाँति के वस्त्राभूषणों से अलङ्कृत तथा अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थों से परिपूर्ण देखती, तो मेरे मन में भी कई तरह की तरङ्ग उठा करतीं; परन्तु उस समय तक मेरी जवानी का पूरा विकास नहीं हुआ था, इसलिए मेरा चित्त अधिक चञ्चल नहीं हुआ।

हकीम-डॉक्टर का पेशा ऐसा है कि उनसे हरेक स्त्री-पुरुष का काम पड़ता है; और उन्हें समय-कुसमय उसके पास जाना ही पड़ता है; तथा अपने दिल की कमज़ोरी और दुःख की बात विवश होकर कहनी ही पड़ती है। उनके सामने सामर्थ्यवान्, असमर्थ, महाबली, बलहीन, धनवान्, दीन और हुकूमत करने वाला दास बन जाता है। यदि इस पेशे वाले लोग दुराचार करने पर उतारू हो जायँ, तो वे साक्षात् राक्षस ही हो जाते हैं, जिसका उदाहरण यही डॉक्टर साहब थे। अस्तु, कुछ दिन बाद संयोग से मेरी बहिन का लड़का बीमार हो गया। उसे दिखलाने को मैं उसी कुल-कलङ्क डॉक्टर के पास गई। वहाँ उसके कम्पाउण्डर ने मुझ से कहा—यदि तू मेरे साथ चले, तो मैं तुझे बहुत रुपए दिलाऊँ। मैंने इन्कार कर दिया। तब उसने कहा—डॉक्टर साहब हमेशा तेरे लिए मुझसे कहा करते हैं। यदि तू मेरा कहना माने, तो उनसे तेरी बात-

चीत करा दूँ। मैंने इस पर माता-पिता के भय से कुछ जवाब न दिया।

एक दिन फिर मैं इस डॉक्टर के अस्पताल में दवा लेने गई, तो उसने एकान्त पाकर मुझे पकड़ लिया; और मेरा धर्म भ्रष्ट करना चाहा। इस पर मुझे बड़ा क्रोध आया; और मेरा सारा शरीर काँपने लगा—इससे उसने मुझे छोड़ दिया। मैं दवा लिए बिना ही घर आकर सो गई; और माता ने जब दवा न लाने का कारण पूछा, तो क्रोध में इतना ही उत्तर दिया—मैं इनके अस्पताल में नहीं जाऊँगी। इसके दस-बारह दिन बाद उसका कम्पाउण्डर किसी बहाने से मेरे घर पर आया; और मुझसे पूछा—तू अस्पताल में क्यों नहीं आती है? इसका मैंने यही उत्तर दिया—मुझे तेरे अस्पताल में आना पसन्द नहीं है।

इस घटना के थोड़े दिनों बाद ही होली का त्योहार आ गया। फाल्गुन शुक्ला, अष्टमी से ही इस समाज में खुले-आम अश्लीलता ही अश्लीलता हो जाती है। छोटे-छोटे बालक भी गलियों में अश्लील गालियाँ बकते और अश्लील तथा बीभत्स गायन गाते फिरते हैं, जिसके सुनने से लज्जा को भी लज्जा आती है; पर उनके माता-पिताओं को नहीं आती। छोटे बालक उन अश्लील गालियों और गायनों का मर्म तो समझते नहीं, अपने घर में माता तथा बहिनों के सामने भी उसी तरह बकते और गाते हैं, जिनको सुन-सुन कर सब हँस देती हैं। मुहल्ले-मुहल्ले में व्यभिचारपूर्ण तमाशे आरम्भ हो जाते हैं।

साधु-फ़क़ीरों का अपनी चेलियों के साथ व्यभिचार; गुरु, पुराहितों और ज्योतिषियों का अपनी यजमानिनियों के साथ व्यभिचार; मुसलमानों को हिन्दू-स्त्रियों से तथा हिन्दुओं का मुसलमान-स्त्रियों से कुत्सित प्रेम अनजान विदेशियों से; पनघट से पानी भरते समय कुल-ललनाओं का प्रेम, देवर-भौजाई, जेठ-भौजाई, चाची-जेठवता, मामी-नानदा, साली-बहनोई का, सौतेली माँ से बेटे का प्रेम इस तरह के व्यभिचारपूर्ण दृश्य इन तमाशों में अश्लील गायन, अश्लील हाव-भाव और अश्लील बोल-चाल द्वारा दिखाए जाते हैं। तमाशा जितना ही अधिक अश्लीलतापूर्ण शब्दों में किया जाता है, उतनी ही अधिक उसकी तारीफ़ होती है। अश्लीलता में कसर केवल इतनी ही रहती है कि इनमें स्त्री का स्वाँग भी पुरुष ही करते हैं। इसलिए स्त्री-पुरुष का साक्षात् समागम नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त किसी बात की कसर नहीं रहती। इन तमाशों को देखने के लिए पुरुष-स्त्री, छोटी-बड़ी, विधवा-सधवा सब एकत्र होती हैं। ऐसे अवसरों पर किसी भी पुरुष या स्त्री का मन अपने क़ाबू में नहीं रह सकता। जिनके पति हों, उनकी भी प्रवृति इन महान् अनर्थकारी अभिनयों को देख कर व्यभिचार की ओर हो जाती है; फिर जिनके पति न हों, उनका तो कहना ही क्या? इन तमाशों के अवसरों पर अनेक विधवाएँ बिगड़ती हैं। मैं भी सबकी तरह सदा तमाशे देखने जाती। अब की होली में इन तमाशों का असर मेरे चित्त पर इतना पड़ा कि काम-वासना एकदम उद्दीप्त हो गई। रही-सही कसर होलिका-दहन के

समय तथा उसके दूसरे दिन हमारे ही कुटुम्ब के छोटे-बड़े, पिता, भाई, भतीजों के हमारे सामने किए हुए अश्लील नृत्य, अश्लील बकवाद तथा भ्रष्ट गायनों ने पूरी करा दी।

क्षमा—क्या तुम्हारे पिता, भाई, भतीजे तुम्हारे सामने ही यह महान् पैशाचिक काण्ड करते थे ?

भानमती—हमारे मुहल्ले की बहुएँ एकत्र होकर चबूतरों पर बैठ जातीं ; और हम बेटियाँ, जो अपनी ससुराल नहीं जाती थीं, उनके पीछे छिप कर मुँह ढाँप कर बैठ जातीं। पुरुष उन बहूओं के नाम ले-ले कर अश्लील गालियाँ बकते, उनको लक्ष्य कर अश्लील हाव-भाव करते। उनके सामने स्त्री-पुरुष के सहवास के समय के नङ्गे चित्र और नङ्गे खिलौने रख कर उनको दिखाते; और कोई-कोई तो उनके सामने नङ्गे होकर नृत्य करते। ये सब दुष्कृतियाँ पीछे बैठी हुई हम भी देखतीं। यह बात उन लोगों से छिपी नहीं रहती थी। जिनके पति जीवित होते हैं, वे अपनी-अपनी ससुराल में रहती हैं, वहाँ भी यही दृश्य होते हैं।

धर्मराज—इन लोगों के व्यवहार से तो पिशाच-राक्षस भी शर्माते हैं।

भानमती—इस होली के दृश्य देखने के बाद मेरा मन क़ाबू में न रहा ; और किसी न किसी पुरुष से शीघ्र मिलने का मैंने निश्चय कर लिया। मैं यौवन में दीवानी सी रहने लगी। होली के दूसरे-तीसरे ही दिन मैं अपने किसी रिश्तेदार के यहाँ से भोजन कर लौट रही थी। रास्ते में मुझे वही कम्पाउण्डर डॉक्टर की ख़ाली

कारण मुझे यह मालूम हुआ कि किसी ने उसे मेरे प्रति यह सन्देह करा दिया कि मैं किसी अन्य पुरुष के पास जाती हूँ; लेकिन मैं किसी अन्य पुरुष के पास नहीं जाती थी, इसलिए मेरा भी मन उससे हटने लगा; और उसके यहाँ आना-जाना बन्द कर दिया। इसके बाद उस डॉक्टर ने तो दूसरी नई चिड़िया फँसा ली; और मेरी एक ब्राह्मण के साथ दोस्ती हो गई। वह ब्राह्मण मुझे रुपये-पैसे तथा वस्त्राभूषणों से पूरी सन्तुष्ट रखता था; परन्तु जब मेरी उससे भेंट हुई; तो मैं निराश हो गई, क्योंकि मुझे रुपये-पैसे आदि की इतनी आवश्यकता न थी, जितनी कि पुरुष की। इस-लिए मैं एक दूसरे ब्राह्मण के पास जाने-आने लगी; पर कुछ ही दिनों बाद उसके पास भी आना-जाना बन्द कर दिया; क्योंकि उससे मेरी तबीयत न भरती थी। फिर एक विदेशी ब्राह्मण से मेरी मित्रता हो गई, जो प्रायः छः मास तक रही। वह अपने देश चला गया। इसके बाद दो ब्राह्मण दोस्तों से मेरी मुलाक़ात हुई, जो एक साल तक रही। बाद में उनके आपस में कुछ झगड़ा हो जाने के कारण छूट गई। अन्त में मैं एक कुटनी के पञ्जे में फँस गई। उसने मेरी तरह पाँच-छः अन्य औरतों के साथ मुझे एक जुआरियों की पार्टी में ले जाकर छोड़ दिया। वह मुझे लाई तो थी एक आदमी का नाम लेकर; पर वहाँ पर दस-बारह गुण्डे बैठे हुए थे। मैंने केवल उसी एक जुआरी से बातचीत की, जिसका नाम लेकर वह कुटनी मुझे यहाँ लाई थी। अन्य मेरे साथ की औरतें औरों से मिलीं। पीछे वे सब मुझे भी डराने-

धमकाने लगे ; पर मैं एक-दो से दूसरे दिन मिलने का बहाना कर वहाँ से निकल आई। आते समय एक जुआरी सेठ की नजर मुझ पर पड़ी। उसने एक कुटनेश्वर महाराज के मार्फ़त मेरे पास कपड़ा और चाँदी का वर्तन भेजा। मैं उससे मिलने गई। आध घण्टे तक बातचीत होती रही ; पर किसी दूसरे के आ जाने से वापिस चली आई। इसके बाद मैं नाई के साथ एक वैश्य के पास गई। वह नाई मुझे किसी बहाने से वहाँ ले गया। उस वैश्य की मेरे साथ मिलने की इच्छा थी ; पर मैं पेशाब का बहाना कर चली आई ; क्योंकि मैं उसे अपने से नीच समझती थी। उसके कई पत्र मेरे पास आए ; पर मैं फिर उसके पास नहीं गई ; क्योंकि मैं उसकी इज्जत अपने से कम समझती थी। बाद में एक दूसरे सेठ के पास गई। उससे १००) नक़द और गले का गहना तथा और भी बहुत कुछ मुझे मिला। उससे छः मास तक मेरी दोस्ती रही। फिर वह कलकत्ते चला गया। इसके बाद मेरी एक ब्राह्मण से, जो किसी सेठ के यहाँ कोचवान था, दोस्ती हुई। यह कोचवान एक दिन मुझे मेरे घर के पास मिला ; और मुझे अपने किसी यार के साथ उतरवाया हुआ मेरा फ़ोटो दिखला कर कहा—यह फ़ोटो उतरवा कर तुमने अच्छा नहीं किया। इसको मैं तुम्हारे बहनोई के पास भेजूँगा। यह सुन कर मैं बहुत डरी ; और उससे मैंने ऐसा न करने की प्रार्थना की। इस पर उसने कहा—यदि तुम मेरे पास आओ, तो नहीं भेजूँगा ? इस पर मैंने उससे मिलना स्वीकार कर लिया ; और दूसरे ही दिन

एक ब्राह्मण के मकान में उससे मिली। उसने कहा—यदि तुम मेरे साथ चलने का वायदा करो ; तो मैं तुम से मिलूँ।

मैंने 'हाँ' कर ली। वह मुझे कुछ रुपए देने लगा; पर मैंने यह कह कर इन्कार कर दिया—मुझे रुपयों की जरूरत नहीं है। इस तरह कमाती तो बहुत कमा लेती।

मैंने कोचवान के साथ जाने का इरादा किया। उसके तीन कारण थे। प्रथम तो मेरे माता-पिता मुझे बहुत तङ्ग किया करते ; और कहते कि तुम काला मुँह करके यहाँ से चली जाओ, तो अच्छा है। साथ ही दुनिया भी मुझे बहुत तङ्ग किया करती। दूसरे मेरे गर्भ भी था, जिसे मैं गिराना नहीं चाहती थी ; और तीसरे एक बार जब मैं कोचवान से मिलने शहर के बाहर एक स्थान पर गई थी, तो उसके कहने-सुनने से कई दिन तक वहीं रह गई थी। इन दिनों में माता-पिता ने मेरी बहुत खोज की; पर मैं न मिली और मेरे बारे में कई प्रकार की अफ़वाहें भी उड़ीं। आठ दिन के बाद जब मैं घर वापिस आई तो घर वालों ने किसी चीज को मुझे छूने नहीं दिया, जिससे मुझे बहुत दुःख हुआ।

मेरा गर्भ दिन प्रति दिन बढ़ने लगा, इसलिए मैं फिर कोचवान से मिली, और चलने के बारे में उससे पूछा, तो उसने निराशाजनक उत्तर दिया, जिसे सुन कर मैं बहुत घबड़ाई और वापिस आकर गर्भ की चिन्ता करने लगी। अन्त में यही निश्चय किया कि चाहे कुछ भी हो गर्भ गिराऊँगी तो नहीं। यह निश्चय कर इसका उपाय सोचने लगी। दो वर्ष पहले एक

घनिया मेरे मकान के पास अपनी मौसी के यहाँ आया जाया करता था। वह विधवा-विवाह की बात किया करता था। वह उस समय मुझ से मिलना भी चाहता था; पर मेरी इच्छा न थी। अब इस गर्भावस्था में जब मुझे कोई उपाय दिखलाई न पड़ा, तो उसी की याद आई; और मन में विचार हुआ कि शायद उसके पास जाने से कुछ प्रबन्ध हो जाय; इसलिए एक कुटनी को साथ लेकर उसके पास गई; और पूछा यदि कोई विधवा-विवाह करना चाहे तो क्या कुछ प्रबन्ध हो सकता है?

इस पर उसने उत्तर दिया—तन-मन से मुझ से जो बन सके करने को तैयार हूँ; पर धन मेरे पास कुछ नहीं है। यदि किसी के गर्भ हो तो उसका भी यथेष्ट प्रबन्ध कर सकता हूँ।

मैंने उससे मिलने की इच्छा प्रकट की, तो उसने कहा—मैंने यह काम छोड़ दिया है।

यह सुन कर मैं क्रोधित हो कर वापिस चली आई। दूसरे दिन वह स्वयं अपनी मौसी के यहाँ आया; और मुझसे मिलने की प्रार्थना करने लगा। पहले तो मैंने अस्वीकार कर दिया; परन्तु उसके बहुत प्रार्थना करने पर इसी विचार से स्वीकार कर लिया कि शायद उससे मिलने से कुछ गर्भ का प्रबन्ध हो जाय। उसी रात को उसके पास गई। घण्टे भर ठहर कर वापिस चली आई। उससे गर्भ का कुछ प्रबन्ध न हो सका। इसलिए मैं एक बार फिर उस कोचवान से मिलने गई; और उससे कहा—यदि तुम नहीं चलते हो, तो तुम्हारी इच्छा; मैं अपना भोगूँगी।

मैं तो एक मुसलमान के साथ जाती हूँ। इतना कह कर मैं वापिस चली आई; और तीन दिन तक उससे न मिली। इससे उसको बहुत दुख हुआ; और उसके कई जासूस मेरे पास आने लगे। मैं उससे मिली, तो उसने मुझ से कहा—तुम आज की गाड़ी से रवाना हो जाओ। मैं तुम्हारे साथ एक आदमी किए देता हूँ। मैं एक महीने के बाद नौकरी से इस्तीफ़ा देकर आ जाऊँगा। उसने मेरे साथ एक सईस देकर मुझे बिदा कर दिया। उस समय मेरे पास २५०) के गहने थे। मार्ग में कई तरह की तकलीफ़ें उठानी पड़ीं; पर जैसे-तैसे सब सहती हुई मैं उस सईस के साथ एक गाँव में पहुँची; और उसी सईस की बहिन के यहाँ ठहरी। वहाँ पर उस गाँव के जमींदार के लड़के की मुझ पर दृष्टि पड़ी। उसने मुझे बुलाया; पर मैं न गई। तब उसने थाने में झूठी-सच्ची रिपोर्ट कर दी।

पुलिस के दारोग़ा ने मुझे थाने में बुलाया; और डरा-धमका कर अपने घर पर आने को कहा, जिसे मैंने अस्वीकार कर दिया। इस पर उसने मेरे पास जो रुपये थे ले लिए; और मुझे चार दिन की मुहलत दी। मैं थाने से वापिस आकर बहुत रोई और एक तार कोचवान को दिया। तार पाते ही कोचवान गाँव चला आया; और दारोग़ा से मिल कर कहा—यह मेरी स्त्री है, मैंने इससे विवाह किया है। इस प्रकार दारोग़ा से पीछा छूटा। दो-चार दिन रह कर मैं कोचवान के साथ कलकत्ते चली आई; और सिलकिए में रहने लगी। वहाँ मेरे लड़का हुआ। कलकत्ते में कोचवान की

अच्छी नौकरी लग गई, जिससे काम खूब अच्छी तरह चलने लगा; परन्तु जिस बाबू के यहाँ उसकी नौकरी लगी थी, उसको मेरे प्रेमी के दोस्तों ने जाकर बहका दिया कि यह किसी विधवा-ब्राह्मणी को बहका लाया है ! इससे वह नौकरी छूट गई; और जहाँ-जहाँ नौकरी लगती, वहीं-वहीं ये लोग पहुँच कर नौकरी छुड़ा देते। इससे हम दोनों को बहुत कष्ट होने लगा। मेरे पास एक पैसा भी नहीं था, अतः वह कोचवान मुझे नाना प्रकार के कष्ट देने लगा; पर मैं उन सबको सह कर उसकी तन-मन से सेवा करती रही; और यही सोचती रही कि हमारे पापों का प्रायश्चित्त हो रहा है। फिर एक दिन कोचवान को अपने घर का ख्याल आया; और वह देश चला गया। जाते समय मुझ से कह गया कि मैं सात वर्ष तक अपने घर पर रहूँगा; और जहाँ पर तुम रहोगी, वहीं तुम्हें सहायता देता रहूँगा। जाने के बाद उसने न तो कोई मदद भेजी; और न कोई पत्र ही दिया। लाचार, पैसे से तङ्ग आकर मैं वेश्या-वृत्ति करती हुई भटकती फिरी; और अन्त में अपने ही देश के एक मुसलमान की स्त्री होकर बच्चे-सहित मुसलमानिन हो गई। कुछ दिनों तक तो उस मुसलमान को मेरी चाह रही, इसलिए उसने मुझे अच्छी तरह रक्खा। फिर सताने लगा। मैं गधे की तरह उसका सब काम करती, फिर भी वह मुझे सदा गालियाँ देता रहता। दिन में एक-दो बार खूब पीटता। कभी-कभी लकड़ियों से भी पीटने की नौबत आ जाती। अनेक बार बच्चे-सहित मुझे भूखों मरना पड़ता। कभी-कभी घर से निकाल देता,

तब सर्दी-गर्मी में बाहर पड़ी रहती ; और कहीं जाने को जगह नहीं थी । इस नारकीय दुख से मैं मर जाना हज़ार दर्जे अच्छा समझती थी ; परन्तु बच्चे के मोह से मरना नहीं चाहती थी । ईश्वर की दया हुई कि भूकम्प से सब एक साथ मर गए—और उस यातना से पीछा छूटा !



सुशीला का बयान



रा नाम सुशीला है। मैं एक उच्च कुल के धनाढ्य ब्राह्मण की लड़की थी। मेरा पिता बहुत भलामानुस और ईश्वर-भक्त था। साधू-महात्माओं की सङ्गति किया करता था। अधिकतर वह दक्षिण भारत के एक गाँव में रहता था। मेरा विवाह आठ वर्ष की उमर में मेरी ही अवस्था के एक लड़के के साथ हुआ था। हम लोगों में, विवाह-सम्बन्ध में केवल उच्च कुल का ही ध्यान रक्खा जाता है। लड़की अपने से उच्चतर कुल ही के लड़के को देते हैं, चाहे वह लड़का छोटा हो या बड़ा; मूर्ख हो या विद्वान्, इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। सम्बन्ध करना स्त्रियों के आधीन रहता है। वे चाहे जिससे कर सकती हैं। पुरुषों का विशेष हस्तक्षेप नहीं रहता।

मेरे विवाह के थोड़े ही समय बाद मेरा पति बम्बई में अपने माता-पिता के साथ गया; और वहाँ प्लेग की बीमारी से मर गया। पति के मरने का असर उस समय मेरे चित्त पर साधारणतया कुछ नहीं हुआ; क्योंकि मैं उस समय बिलकुल

तब सर्दी-गर्मी में बाहर पड़ी रहती ; और कहीं जाने को जगह नहीं थी। इस नारकीय दुख से मैं मर जाना हज़ार दर्जे अच्छा समझती थी ; परन्तु बच्चे के मोह से मरना नहीं चाहती थी। ईश्वर की दया हुई कि भूकम्प से सब एक साथ मर गए—और उस यातना से पीछा छूटा !



सुशीला का कथानक





मेरा नाम सुशीला है। मैं एक उच्च कुल के धनाढ्य ब्राह्मण की लड़की थी। मेरा पिता बहुत भलामानुस और ईश्वर-भक्त था। साधू-महात्माओं की सङ्गति किया करता था। अधिकतर वह दक्षिण भारत के एक गाँव में रहता था। मेरा विवाह आठ वर्ष की उमर में मेरी ही अवस्था के एक लड़के के साथ हुआ था। हम लोगों में, विवाह-सम्बन्ध में केवल उच्च कुल का ही ध्यान रक्खा जाता है। लड़की अपने से उच्चतर कुल ही के लड़के को देते हैं, चाहे वह लड़का छोटा हो या बड़ा; मूर्ख हो या विद्वान्, इसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। सम्बन्ध करना स्त्रियों के आधीन रहता है। वे चाहे जिससे कर सकती हैं। पुरुषों का विशेष हस्तक्षेप नहीं रहता।

मेरे विवाह के थोड़े ही समय बाद मेरा पति बम्बई में अपने माता-पिता के साथ गया; और वहाँ प्लेग की बीमारी से मर गया। पति के मरने का असर उस समय मेरे चित्त पर साधारणतया कुछ नहीं हुआ; क्योंकि मैं उस समय बिलकुल

अबोध थी। हाँ, जब मुझे विधवा के वस्त्र पहिनाए गए तथा मेरा घर से बाहर निकलना बन्द किया गया, तब मैंने सुहागिन और विधवा का भेद समझा। फिर भी मैंने इस बात की कुछ पर्वाह न की। घर में मेरे पिता-माता और मुझसे दो वर्ष छोटे कुँवारे भाई के सिवाय और कोई न था। घर से बाहर न निकलने के कारण बाहर के स्त्री-पुरुषों का संसर्ग अधिक नहीं होता था, इसलिए मेरा चित्त स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी बातों की ओर विशेष आकर्षित नहीं हुआ था। जब मैं तेरह वर्ष की हुई, तब मेरे भाई को हिन्दी-अङ्गरेज़ी पढ़ाने के लिए एक मास्टर आया करता। भाई के साथ मैं भी पढ़ा करती। मेरी रुचि स्वभाव ही से पढ़ने की तरफ़ अधिक थी। थोड़े ही समय में हिन्दी अच्छी तरह पढ़ने और लिखने लगी। अङ्गरेज़ी के भी नाम पढ़ना-लिखना तथा साधारण शब्दों के अर्थ करना सीख गई। मास्टर साहब नौजवान थे। प्रेम की पुस्तकें पढ़ने और विशेषतः शृङ्गार-रस के काव्य देखने का उनको बहुत शौक़ था। जब मैं हिन्दी अच्छी तरह पढ़ने लगी, तो मास्टर जी ने मुझे उपन्यास की पुस्तकें ला दीं। उनको मैं बड़े ही चाव और कौतूहल से पढ़ती थी। मेरा रूप-लावण्य बहुत ही ऊँचे दर्जे का था। साथ ही मेरी बुद्धि भी चमत्कारिक थी। मास्टर जी यद्यपि अपना मन क़ाबू में रखने की बहुत कोशिश करते थे; परन्तु मेरे उपरोक्त गुणों ने उनके दिल को क़ाबू में न रहने दिया; और वे मेरे ऊपर पाप-दृष्टि रखने लगे। उसी प्रयोजन से उन्होंने मुझे त्रिया-चरित्र, तोता-मैना, शुक-बहत्तरी, सहस्र-

रजनी-चरित्र आदि व्यभिचार के भावों से भरी पुस्तकें लाकर पढ़ने को दीं; परन्तु इन पुस्तकों के पढ़ने से मेरा चित्त चञ्चल नहीं हुआ। पुस्तकें पढ़ने का मुझे इतना शौक़ हो गया कि मैं दिन-रात इसी काम में लीन रहने लगी। धार्मिक पुस्तकें—महाभारत, रामायण, सुखसागर आदि भी मँगा कर पढ़ डालीं। चन्द्रकान्ता और लन्दन-रहस्य आदि उपन्यास भी पढ़ डाले। फिर मेरा मन कविता की तरफ़ गया, तो नायिका-भेद के कई ग्रन्थ मैंने देखे। कई कविताएँ मौखिक कर लीं। अनेक उर्दू की ग़ज़लें याद कर लीं। मेरी अधिक रुचि शृङ्गार-रस की कविताओं पर ही रहती थी; और नायक-नायिकाओं के लक्षणों पर तो मैं ख़ूब ही विचार करती थी। मास्टर जी से भी इस विषय पर चर्चा चला करती थी। इतना होने पर भी व्यभिचार की तरफ़ मेरी प्रवृत्ति नहीं हुई। अब मास्टर जी अपने आपे से बाहर हो गए, उन्होंने डरते-डरते मुझसे प्रेम-भिक्षा माँगी, जिसके उत्तर में मैंने उनको विषयी लोगों को पशुओं की उपमा देकर इस काम से उत्पन्न होने वाले अनर्थ शास्त्रों के प्रमाणों से समझाए। रम्भा और शुक का संवाद मैं पढ़ चुकी थी। भर्तृहरि के तीनों शतक भी मैंने पढ़ लिए थे। इन्हीं के आधार पर मास्टर जी की और मेरी बहस हुई, जिसमें मास्टर जी की दाल बिलकुल न गलने पाई।

अठारह वर्ष की आयु तक मेरा चित्त चञ्चल न हुआ। इसका मुख्य कारण यह था कि मेरी प्रकृति इस विषय में स्वभावतः ही शान्त थी। मेरी माता ने भी मुझे कुसङ्ग से बचाए रक्खा,

यहाँ तक कि घर से बाहर पाँव तक भी नहीं रखने दिया। मेरा अधिकांश समय पुस्तकें पढ़ने में ही बीतता था; और दीन-दुनिया से मैं प्रायः बेख़बर थी।

साहित्य के सिवाय सङ्गीत और चित्रकारी का भी मुझे शौक़ था! भर्तृहरि के "सङ्गीत-साहित्य-कला विहीनः" श्लोक का मेरे चित्त पर प्रभाव पड़ गया था; अतः मैंने हारमोनियम बाजा बजाना एक दादूपन्थी साधु से सीखा। ये साधु मेरे घर पर आया करते थे। इसको हारमोनियम और तबला बजाने का अच्छा अभ्यास था, वैद्यक भी थोड़ी-बहुत जानते थे। इन सब गुणों के होते हुए वे व्यभिचारी पहले नम्बर के थे। जब मैं हारमोनियम बजाना सीख चुकी, तब उनसे तबला सीखने लगी। इस पर मेरी माँ बहुत बिगड़ी। वास्तव में मेरी माँ का विचार ठीक था; क्योंकि बाजा बजाना सीखने के लिए मैं स्वामी जी के साथ एकान्त में बैठती थी। स्वामी जी मुझ पर पाप-दृष्टि तो रखते ही थे, अतः मेरे सभी अङ्गों का स्पर्श करते रहते थे। मैं इसकी कुछ भी पर्वाह न करती थी; परन्तु यदि अधिक दिन तक मैं उनसे सीखती रहती, तो वे मुझे अवश्य भ्रष्ट कर देते।

सङ्गीत में मेरी रुचि देख कर कई गवैये मेरे पास आते-जाते और रात के समय मन्दिरों में उनका गान होता; तब मैं कभी-कभी सुनने जाया करती!!

शृङ्गार-रस के भावपूर्ण चित्र, ख़ास कर राधा-कृष्ण की लीला के तथा रविवर्मा की क़लम के चित्र बड़ी चाह से देखा

करती ; और अपने पास रखती । मैं भी फूल-पत्ती आदि के साधारण चित्र अपने हाथ से खींचा करती थी।

अपने शरीर का बनाव ख़ूब अच्छा रखती । सुगन्धित बढ़िया विलायती साबुन से दोनों समय नहाती, सुगन्धित तेल, इत्र, लवेण्डर, फुलेल और सेण्ट लगाती । चेहरे पर चमड़ी को सुरक्षित रखने वाला विलायती मरहम (Vinolia Ointment) सदा लगाती । बालों को बङ्गाली ढङ्ग से कटवा कर ख़ूब अच्छी तरह बनाती । कपड़े यद्यपि विधवाओं के से होते; परन्तु बहुत बढ़िया पहनती । पान और सुगन्धित सुरती खाकर मुख हर वक़्त सुगन्धित रखती । मेरे काम में आने वाला प्रत्येक सामान बहुत ही फ़ैशनेबिल और बढ़िया होता था । पिता के घर में मेरा बहुत लाड़ था , इसलिए ख़र्च की कोई कमी नहीं थी । ख़ास करके मेरे वैधव्य के कारण माता-पिता मुझे प्रसन्न रखना चाहते थे, इसलिए शौक़ीनी करने में विशेष बाधा न देते थे ।

मेरा एक दूर की रिश्तेदारिन से बचपन से ही बहुत प्रेम था । उसका विवाह एक बालक से हुआ था । वह जब चौदह वर्ष की हुई, तब उसका पति बारह वर्ष का था ।'मेरी सखी की प्रकृति बहुत चञ्चल थी ; और बुरे आचरण की स्त्रियों की सोहबत भी बहुत थी । पति छोटा होने से वह व्यभिचार में पड़ गई और उस काम में ऐसी लीन हुई कि उसे दुनिया में उसके बराबर कोई आनन्द ही नहीं दीखता था । उसका चित्त रात-दिन इसी काम में लगा रहता था । वह जब मेरे पास आती, तब व्यभिचार के

सिवाय दूसरी कोई बात ही न करती। जिसके साथ यह व्यभिचार करती, उसका ब्योरेवार हाल मुझसे कहती; और उस काम की बड़ी ही तारीफ़ करती। वह यह भी कहती कि जिसने यह काम नहीं किया, वह पशु के समान है; और नाहक़ मनुष्य-जन्म लिया है। वह एक कविता का यह टुकड़ा कहा करती—जिन कीनी नायँ छिनारी उन वृथा ही देह धारी है। मैं उसको बहुत फटकारती और समझाती। इस पर वह मेरी हँसी करती; और कहती—तू तो महात्मा है। कभी कहती—तू पत्थर है, इन बातों के आनन्द को क्या जाने? एक बार इस आनन्द का अनुभव कर ले, फिर तो कभी न छोड़ेगी। मैं उसकी इन बातों से नफ़रत करती और कहती कि मैं तुम्हारी तरह पशु नहीं हूँ कि इस तरह पुरुषों के पीछे भागती फिरूँ। इस तरह मेरी उससे बातें होती रहतीं। मेरी माता को उसका चाल-चलन मालूम था, इससे उसका मेरे पास आना उसको अच्छा नहीं लगता था; और जब वह आती तो मुझे एकान्त में उसके साथ अधिक देर तक बैठने न देती, किसी न किसी काम के बहाने मुझे अपने पास बुला लेती; परन्तु जब मैंने अपना पूरा होश सँभाल लिया, तब मुझ पर माता के कहने का प्रभाव पहले की तरह न पड़ता; और मैं उसके कहने की अवहेलना करने लगी। अब मैं सखी से अधिक मिलने लगी और साँझ के समय उसके घर भी जाने लगी। जब मैं सखी के घर जाती, तो उसके पास अनेक व्यभिचारिणी स्त्रियाँ आतीं; और उनसे भी बात-चीत होती।

व्यभिचार के सिवाय यहाँ कोई दूसरी चर्चा ही न थी। यद्यपि मेरे चित्त में उस समय तक इस काम से घृणा थी; परन्तु उनकी बातें विशेषकर जिस तरह से पुरुषों के साथ उनका सहवास होता; इसका वर्णन ध्यानपूर्वक मैं बड़ी ही रुचि के साथ सुनती थी। कभी-कभी मेरी सखी मेरे सामने ही निर्लज्ज होकर अपने यार से व्यभिचार कर लिया करती थी। इस तरह के कुसङ्ग तथा इस तरह के दृश्य देखने से अन्त में मेरा चित्त चञ्चल हो उठा; क्योंकि जो बातें मैंने त्रिया-चरित्र आदि व्यभिचार की पुस्तकों में पढ़ी थीं, उनकी कई घटनाएँ मैंने अपनी आँखों, अपनी सखी के चरित्रों में देखी तथा अन्य व्यभिचारिणी स्त्रियों के वर्णनों से सुनीं; अतः मेरे जी में यह विचार उत्पन्न हो गया कि मुझे किसी न किसी पुरुष के अवश्य सम्बन्ध करना चाहिए; परन्तु काव्य की पुस्तकें पढ़ने के कारण मेरे चित्त में यह भाव पैदा हुआ कि अनुकूल नायक से ही मैं सम्बन्ध करूँ। मैं अपने को बहुत ऊँचे दर्जे की नायिका समझती थी। जब मैं नहा-धो, बाल सँवार, कपड़े-आभूषण पहन कर तैयार होती, तो मेरा नियम था कि बड़े दर्पण के सम्मुख खड़ी होकर रविवर्मा के रम्भा और तिलोत्तमा आदि अप्सराओं के चित्रों से अपनी तुलना करती; और अपने को उनसे किसी अंश में भी कम न पाती। मैं अपना शृङ्गार भी प्रायः उन्हीं चित्रों सा करती थी। सारांश यह कि मैं अपने अनुपम रूप-यौवन और गुणों का दूसरों की तरह

दुरुपयोग करके हर किसी से व्यभिचार करना ठीक न समझती थी। मैंने यह निश्चय कर लिया कि जब मेरी जोड़ का कोई पुरुष मिलेगा, तभी अपने को उसके सुपुर्द करूँगी। अपनी सखी को भी मैंने यही कहा—हंसा मोती चुगते हैं या योंही भूखे रहते हैं!

उसने ताने के रूप में कहा—देखें, तुमको कैसा मोती मिलता है? ऐसा न हो कि अधिक सयानेपन में मोम के मोती पर ही मुग्ध हो जाओ।

मैंने कहा—मैं तुम्हारी तरह भोंदू थोड़े ही हूँ। न मालूम कितनी पुस्तकें पढ़ डाली हैं। तुम्हारी तरह मेरे शरीर में ऐसी कामाग्नि की जलन थोड़े ही है कि लकड़ी का पुरुष मिल जाय, तो उस पर भी लट्टू हो जाऊँ।

मेरे रूप-लावण्य, विद्या, बुद्धि, शौक़ीनी आदि गुणों की ख्याति नगर में बहुत हो गई थी; और अगणित पुरुषों के सन्देशे मेरे पास आया करते थे। नगर के बड़े से बड़े आदमी से लेकर साधारण लोगों तक के पैग़ाम मेरे पास आते थे। कोई कुटनियों के द्वारा अनेक प्रकार के प्रलोभन दिखाता। मेरे शौक़ की नए-नए फ़ैशन की चीज़ें भेजता, कोई भडुओं के साथ बिना नाम की चिट्ठियाँ तथा नक़द रुपए और गहने भेजता, कोई डाक में पत्र देता, कोई हिन्दी में प्रेम की भिक्षा माँगता, कोई-कोई पत्रों में कविताएँ भी लिखते, कोई मेरे घर के आगे होकर नित्य-प्रति निकलता; और मुझे खिड़की में बैठे देखता, तब सैन करता। मैं इन सब

उपासकों की अच्छी तरह अपने मन में जाँच करती। किसी में कोई त्रुटि पाती; और किसी में कोई। अपनी जोड़ का किसी को भी न पाती। तो भी सूखा जवाब मैं किसी को न देती; क्योंकि ख़ुशामद करवाने तथा लोगों के मुँह से अपनी तारीफ़ सुनते रहने का भी मुझे बड़ा चाव था। मुझे अपने रूप-लावण्य, विद्या-बुद्धि और होशियारी आदि गुणों का बड़ा ही घमण्ड था। घमण्डी आदमी चापलूसी सुन कर बहुत ख़ुश हुआ ही करते हैं, अतः जो कोई मेरी प्रेम-भिक्षा का सन्देश लाते, उनकी बातें मैं बड़ी ही उत्सुकता और चाव से सुनती। फिर उपासक की त्रुटि कह देती; परन्तु निराश न करती। जो कुछ चीज़ें भेजते, सब वापिस कर देती। गवैये आदि जो मेरे पास आते, वे भी गाने के शौक़ वालों के सन्देश लाते; परन्तु मेरा मन केवल गाने के शौक़ से ही पसीजने वाला न था। मेरे उपासकों में मेरे पिता के अनेक रिश्तेदार भी थे। चाचा, मामा तथा फूफी के लड़के भी मुझ पर पाप-दृष्टि डाले बिना नहीं रहे। वे लोग मेरे पास आकर घण्टों तक बैठे रहते, मेरी ख़ुशामद और चापलूसी करते; परन्तु उनमें से मेरे पसन्द कोई नहीं आया। मेरे ससुर-परिवार के रिश्तेदारों के भी कई सन्देश आए, उनमें से कई तो मुझसे बहुत बड़े थे; जिनका नाम सुन कर मुझे आश्चर्य हुआ कि उन्होंने मुझ पर पाप-दृष्टि कैसे की। उन लोगों को मैंने सूखा उत्तर दे दिया। मैं अपने घर की खिड़की में बहुत बैठा करती। मेरा घर एक आम सड़क पर था,

लौटा। मैं अभिमान की पुतली तो थी ही, इस तरह उसका छोड़ जाना मैंने अपनी शान के खिलाफ समझा। वह पन्द्रह-बीस मिनिट तक नहीं लौटा, तब मैं चिढ़ कर वहाँ से निकल, उसकी औरत के पास आ गई; और पेट-दर्द का बहाना कर अपने घर चली आई। दूसरे दिन फिर उसका आदमी आया, जिसको मैंने अनेक तरह की लापरवाही की बातें सुनाईं। मेरा यही इरादा था कि खूब ग़रज़-खुशामद करा कर जाऊँगी; परन्तु इस बीच में हमारे घर में एक ऐसी घटना हो गई कि हम सब लोग उसी चिन्ता में पड़ गए; और दूसरी सब बातें भूल गये।

मेरे भाई का विवाह हो गया था। उसकी स्त्री भी नित्य आने लगी थी। परन्तु भाई कुसङ्ग में पड़ कर वेश्यागामी हो गया था; और स्त्री से अनबन रखता था। एक मुसलमान-वेश्या रख ली थी; और नित्य उसके घर जाता था। स्त्री को पीटता और उसके जेवर उतार कर वेश्या को दे आता। हम लोगों को इस बात का पता लगने पर भी बहुत दिनों तक चुपचाप उसको समझा कर रास्ते पर लाने के उद्योग में रहे कि घर की बात बाहर न जाय; और उसकी इज्जत में खलल न पड़े। एक दिन वह माँ के गहने चुरा कर ले गया, तब अतीव चिन्ता हुई कि अब क्या करना चाहिए। मेरे पिता जी विदेश में थे, उनको इस बात की खबर करना हमें स्वीकार न था। विश्वासी प्राइवेट नौकर एक वैरागी-जाति का साधु था। (यह साधु वास्तव में वैरागी नहीं होते; किन्तु घर-गृहस्थी और बड़े ही अनाचारी, कुकर्मी होते हैं)।

उससे सलाह लेकर निश्चय हुआ कि भाई की वेश्या-सङ्ग छुड़ाने के लिए किसी अन्य खूबसूरत और चालाक स्त्री का संयोग करवा देना चाहिए, ताकि वह इसको अपने मोह में फँसा कर वेश्या-प्रेम छुड़ावे।

एक पुरुष मुख़्तारी का काम करता था। पिता का अदालती कार्य भी वही करता। उसकी लड़की बहुत खूबसूरत नवोढ़ा थी। वही इस काम के लिए चुनी गई; और उसको भाई से मिलाने का काम मुझे ही सौंपा गया। भाई का मेरे साथ पूर्ण स्नेह था। हारमोनियम बाजा हम साथ बैठ कर बजाते। मैंने उस लड़की को बुलाया। मिठाई खिलाई, नई साड़ी दी, इत्र-फुलेल लगाया और कुछ नक़द दिया। इस तरह उसको फुसला कर नित्य बुलाती और जिस समय भाई मेरे पास बैठता, उसको भी मैं साथ रखती। दो-तीन दिन इस तरह करने से भाई का दिल उस पर खिंच गया; और एक दिन मेरा भाई अपने कमरे में जब ऊपर गया, तो मैंने उस लड़की को कोई बहाना करके उसके पास भेज दिया। भाई ने उस पर बलात्कार किया। वह जब घबड़ाई हुई नीचे मेरे पास आई, तो मैंने उसको खाने को मिठाई दी और गले में पहनने का एक आभूषण दिया, जिससे वह राजी हो गई; और दूसरे दिन आने को कह कर चली गई। जब दूसरे दिन वादे पर वह न आई, तो भाई ने मुझसे पूछा कि वह क्यों नहीं आई?

मैंने कहा—किसी काम में लग गई होगी, आदमी भेज कर

बुलाती हूँ। फिर उसी साधु को भेज कर उसको बुलाया ; और समझा-बुझा कर आश्वासन दिया। दो-तीन दिन बाद फिर उसको भाई के कमरे में भेज दिया और भाई का उससे सम्बन्ध हो गया तथा वेश्या से पीछा छूट गया। मुझे इस काम की सफलता से बड़ी खुशी हुई ; परन्तु इस बात में मुझे अपनी सब बातें छोड़नी पड़ीं ; और उस वैश्य के आदमी का मेरे पास आना बन्द करना पड़ा ; क्योंकि उसके आने से अपने घर का भेद छिपा न रहता।

एक दिन मैंने खिड़की से एक मुसलमान चूड़ीगर को रास्ता चलते देखा। वह इतना सुडौल और ख़ूबसूरत था और उसकी लटक ऐसी सुहावनी थी कि मेरा चित्त उसकी तरफ़ खिंच गया। मैं अपना दिल न रोक सकी और उसको अपने घर में बुलाया। उसने समझा किसी को चूड़ी पहनाने के लिए बुलाया होगा। वह घर में आ गया। मैंने उसका सब हाल, पता-ठिकाना पूछा और थोड़ी देर तक बातें करती रही। वह बेचारा कुछ न समझ सका कि मैंने उसको क्यों बुलाया ? उसकी भोली-भाली सूरत मेरे दिल पर काम कर गई। उसको कहीं पर चूड़ी पहनाने की ताक़ीद थी, अतः उठ कर जाने लगा। तब मैंने कहा—हमारे यहाँ एक स्त्री को चूड़ी पहनानी हैं, सो कल आना। यह सुन कर वह चला गया ; परन्तु उसकी सूरत मेरे हृदय पर अङ्कित हो गई। दूसरा दिन आना बहुत लम्बा हो गया। जब वह आया, तो मैंने अपने भाई की आशना को चूड़ी पहनने को बुलाया। इस बीच में उससे इधर-उधर की बातें होती रहीं। वह चूड़ी पहनने आई, तब एक

ख़ास क़िस्म की चूड़ी, जो उस समय उसके पास नहीं थी, लेकर दूसरे दिन फिर आने को कहा। असल में मैं उसको देखने और बातें करने में तृप्त नहीं होती थी। तीसरे दिन फिर आया। चूड़ी पहनाई। मैंने उससे बहुत बातें कीं; परन्तु अपने मन का हाल कुछ कहते नहीं बना और न उसकी हिम्मत ही मुझसे कुछ कहने की पड़ी। तीन-चार दिन इस तरह गुज़र गए कि एकाएक मेरे पिता जी की बीमारी का तार विदेश से आ गया; और हम सब घर वालों को फ़ौरन वहाँ जाना पड़ा। मैं उस चूड़ीगर की मूर्ति अपने हृदय-पटल पर खिंची हुई साथ ले गई।

रेल के मार्ग में मैंने सैकड़ों मनुष्यों को देखा; परन्तु उस चूड़ीगर-जैसा ख़ूबसूरत मेरी नज़र में एक भी नहीं चुभा। हम लोगों के वहाँ पहुँचने पर पिता जी को कुछ-कुछ आराम होने लगा और एक महीने के अन्दर वे अच्छे हो गए। तब उन्होंने तीर्थ-यात्रा की तैयारी की। हम लोग वहाँ से रवाना होकर पहले-पहल जिस स्थान पर पहुँचे, वहाँ एक बड़े प्रसिद्ध साधु-महन्त का स्थान नदी के बीच में एक टापू पर बना हुआ था। यहीं हम लोग ठहरे। महन्त जी की उस प्रान्त में बड़ी प्रतिष्ठा थी; और हज़ारों गृहस्थ उनके शिष्य थे, जिनकी उन पर बड़ी अन्ध-श्रद्धा थी। उनको लाखों रुपए की आमदनी प्रति वर्ष थी। बहुत से रुपए साधुओं को माल खिलाने में स्वाहा होते थे। मेरे पिता ज़ी का भी साधुओं पर अन्ध-विश्वास था, अतः उन्होंने भी उनकी ख़ासी भेंट की। दोपहर के समय और तो सब सो गए, मुझे नींद न आई। मैं एक

अलग स्थान में बैठी किताब पढ़ रही थी। सुनसान देख कर महन्त जी मेरे पास आए; और मुझ पर अपना बड़प्पन, पवित्रता और ईश्वर की ठेकेदारी का प्रभाव जमा कर मेरा सतीत्व नष्ट करने को सन्नद्ध हो गए। मैं ऐसे सण्ड-मुसण्ड से प्रेम कैसे कर सकती थी, चट वहाँ से उठ खड़ी हुई; और जहाँ मेरी माता वग़ैरह सोई थीं, आकर बैठ गई। महन्त जी अपना सा मुँह लिए रह गए। यह हुआ हमारी तीर्थ-यात्रा का श्री गणेश!

यहाँ से हम हरिद्वार पहुँचे। वहाँ एक मन्दिर में ठहरे। वह मन्दिर भी एक बड़े महन्त के अधिकार में था। महन्त जी अपने व्यभिचार के लिए प्रसिद्ध थे। यद्यपि उस समय उनकी आयु चालीस वर्ष से कम न रही होगी। जब मैं महन्त जी को भेंट चढ़ाने गई, तो उनकी कुटिल नज़र से मैं उनका भाव समझ कर सावधान हो गई; और इसलिए अकेली एक मिनिट तक भी वहाँ न ठहरी।

पिता जी ने वहाँ पर श्रीमद्भागवत का सप्ताह सुनने का निश्चय कर रक्खा था, इसलिए एक बड़े पण्डित जी को, जो काव्यतीर्थ और वेदान्त-रत्न की उपाधियों से विभूषित थे, पञ्जाब की तरफ़ से बुलाया था। पण्डित जी को साथ लेकर हम लोग बैलगाड़ी पर हृषीकेश गए। रास्ते में मैं बैलगाड़ी के धक्के से थक कर उतर गई और पैदल चलने लगी। गाड़ी बहुत धीरे-धीरे जाती थी। मैं अकेली तेज़ी से आगे बढ़ गई; और मेरा उनका बहुत फ़ासला पड़ गया। इतने में हृषीकेश के एक चेत्र के महन्त जी मोटर पर उस रास्ते से जा रहे थे। मुझे देख कर मोटर पर चढ़ने को कहा।

मुझे मोटर की सवारी की बड़ी रुचि थी, तुरन्त बैठ गई । हृषीकेश में पहुँचने पर महन्त जी ने क्षेत्र में एक अच्छा कमरा हमारे लिए खुलवा दिया, जिसमें मैं बैठ कर अपने घर वालों के आने की बाट देखने लगी । थोड़ी देर बाद महन्त जी आए और मेरे रूप-लावण्य की प्रशंसा करके पाप-कामना प्रकट की तथा मुझे पकड़ने के लिए हाथ फैलाए। मैं घबड़ाई और पैंतरा बदल, कमरे के बाहर आकर खड़ी हो गई । महन्त जी लज्जित होकर चले गए ; और जब तक मेरे घर वाले न पहुँचे, मैं कमरे में न गई !

दूसरे दिन हम सब लोग पैदल लछमनझूले गए। कोई आगे और कोई पीछे चलने लगा । पण्डित जी का मेरा साथ हुआ। रास्ते में काव्य की चर्चा चलने लगी । पण्डित जी मेरी बातें सुन कर मुझ पर आसक्त हो गए। समझा कि इस तरह की शृङ्गार-रस की बातें करने वाली यह विधवा अवश्य व्यभिचारिणी होगी, अतः इधर-उधर देखा । जब आगे-पीछे किसी को आते न देखा, तो मेरा हाथ पकड़ कर प्यार करने को झपटे । यद्यपि पण्डित जी बहुत खूबसूरत और कुशल-वक्ता थे, एवं अपने को बहुत चतुर नायक समझते थे, अतः मेरी जैसी स्थिति में कोई काम की सताई हुई विधवा होती, तो पण्डित जी का अनादर कदापि न करती ; परन्तु मेरी दशा भिन्न थी । मुझे पण्डित जी की अधेड़ अवस्था से घृणा थी ; अतः मैंने तुरन्त अपना हाथ छुड़ा लिया और उनकी धृष्टता के लिए उनको कुछ भी न कह कर रास्ता चलने लगी ।

जाति-धर्म—पहले-पहल महन्त और फिर पण्डित जी तुम पर अत्याचार करने को उद्यत हुए, तब तुमने उनको फटकारा क्यों नहीं; और अपने घर वालों से कह क्यों न दिया ?

सुशीला—मुझे ऐसा करने की क्या आवश्यकता थी ? पाप-कर्म तो मेरी इच्छा बिना वे कर नहीं सकते थे। जब वे मेरे रूप-रङ्ग और गुणों के उपासक हुए, तो इस बात से मैं अत्यन्त प्रसन्न हुई। अतः उनका तिरस्कार करने का मुझे कुछ भी कारण प्रतीत न हुआ; किन्तु इतने उच्च-कोटि के पुरुष मेरे उपासक हैं, इस बात से मैं तो अपने आप फूली नहीं समाती थी। हाँ, यदि इन लोगों की कार्रवाई को यदि कोई तीसरा आदमी देख लेता, तो मैं अवश्य हो-हल्ला कर, उनकी इज्ज़त बिगाड़, अपने को निर्दोष सिद्ध कर देती।

जाति-धर्म—दूसरा कोई न देखता, तो ईश्वर तो अवश्य देखता था।

सुशीला—क्षमा करें महाराज, मैं ईश्वर को नहीं मानती थी। मेरा यह विचार था कि यदि ईश्वर कहीं होता, तो संसार में इतने ज़ुल्म, इतने पक्षपात क्यों होवे ? लोग ईश्वर को सर्व-व्यापक, जगत्पिता, न्यायकारी आदि विशेषण देते हैं; परन्तु यदि वह सर्व-व्यापक होता, तो उसके रहते लोग छुप कर घोरातिघोर दुराचार करते ? और स्थानों की बात जाने दीजिए, ख़ास उसी के मन्दिरों में, उसी के तीर्थों में, जहाँ वह मूर्तिमान् माना जाता है, उसी के ठेकेदार महन्त, आचार्य, पुजारी, पण्डित और कथक्कड़ लोग

ऐसे-ऐसे पाप-कर्म करते हैं, जिनको सुन कर ही साधारण लोग भय से काँप उठते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उसके ठेकेदार स्वयं ही उसको नहीं मानते; किन्तु निर्बल आत्मा के लोगों को उसके नाम से डरा-धमका कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उन्होंने उसके अस्तित्व की कल्पना कर ली है। यदि वह ईश्वर जगत् का पिता होता, तो पिता अपनी सन्तानों में इतनी विषमता कदापि न रखता कि एक तो संसार के सब पदार्थों का भोग करता हुआ अघा जाय; और दूसरा जड़-पाषाण से भी गया-गुज़रा जन्म बिताने को मजबूर किया जाय। पुरुष और स्त्री में इतना भेद रहे कि एक के जन्म में आनन्द-मङ्गल मनाया जाय और दूसरे के जन्म में रोया जाय। एक भोक्ता और दूसरी भोग्य-पदार्थ मानी जाय। पुरुष हज़ार स्त्रियाँ भोगने को स्वतन्त्र हों और स्त्री को एक पुरुष की प्राप्ति का सौभाग्य भी न मिले। स्त्री के मरने पर पुरुष चिता की बाट देखता हुआ भी एक नवीन कन्या का जीवन नष्ट करे; और विधवा होने पर एक छः वर्षीया बालिका को भी आजीवन सतीत्व-रक्षा करते हुए जीवन बिताने पर मजबूर किया जाय। कहाँ है उसका जगत्पितापन? यदि उसका वास्तविक अस्तित्व है; और वह किसी का पिता है, तो केवल पुरुषों का पिता है, जगत् का नहीं। यदि ईश्वर न्यायकारी होता, तो क्या उसकी महान् अत्याचारी नर-पिशाच सन्तान इस तरह के अनर्थ करती हुई भी धन-धान्य और कीर्ति से परिपूर्ण रह सकती? अस्तु, भगवन्! ईश्वर के अस्तित्व का ढोंग पुरुषों ने

केवल अपने स्वार्थ के लिए रच लिया है—ऐसी मेरी धारणा थी।

जाति-धर्म—क्या तुम पाप-पुण्य को भी नहीं मानती?

सुशीला—नहीं प्रभो! मैं नहीं मानती। यह पाप-पुण्य का ढोंग भी इन पुरुषों ने ही अपने स्वार्थ के लिए रच लिया है। धर्मशास्त्र पुराणादि सब पुरुषों के ही बनाए हुए हैं, अतः उन्होंने अपनी अनुकूलता वाले व्यापार को पुण्य और अपनी प्रतिकूलता के व्यवहारों को पाप मान लिया। तिस पर भी सन्तोष नहीं हुआ, तो अपने लिए हर बात में स्वतन्त्रता रख ली; और स्त्रियों को परतन्त्र बना दिया। पुरुष चाहे जितना व्यभिचार करे, वह पापी नहीं माना जाता; परन्तु स्त्री यदि किसी पुरुष के साथ एकान्त में निर्दोष वार्तालाप भी कर ले, तो उस पर अनेक तरह के इल्ज़ाम लगा कर पापिनी, अभागिनी कह कर उसका मुँह काला किया जाता है।

जाति-धर्म—अनेक पापी पुरुष तथा स्त्रियों के पापों का फल उसी जन्म में थोड़े दिनों बाद होता हुआ तथा उन्हें दुख भोगते हुए तुमने अपनी आँखों देखा होगा।

सुशीला—मैंने कई लोगों को दुख पाते और पछताते देखा है; परन्तु इससे पाप-पुण्य सिद्ध नहीं हुआ। उन्होंने काम करने में ग़लती की, इससे उन्हें दुःख सहना पड़ा।

जाति-धर्म—अब भगवान् धर्मराज की कचहरी का दृश्य देख कर भी क्या तुम पाप-पुण्य तथा ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानती?

सुशीला—अब मुझे निश्चय हुआ है कि कर्मों का अच्छा-बुरा

परिणाम अवश्य होता है और उन परिणामों को भुगाने वाला ईश्वर भी अवश्य है; परन्तु वह न्यायकारी है कि नहीं इसका निश्चय भगवान् धर्मराज द्वारा हम लोगों का फ़ैसला होने पर होगा।

इस बात पर सब देवता हँस पड़े।

कुल-धर्म—जब तुम ईश्वर को और पुण्य-पाप को नहीं मानती थी, तो तीर्थ-यात्रा को क्यों गई?

सुशीला—मेरे तीर्थ-यात्रा जाने के ये कारण थे:—

(१) विधवा स्त्री का तीर्थ-यात्रा करना अत्यन्त आवश्यक समझा जाता था। जो ज़्यादा तीर्थ-यात्रा करती है, उसकी ही तारीफ़ होती है; और वही सबमें बैठ कर घमण्ड कर सकती है। यह पहले कह आई हूँ कि मैं अभिमान की पुतली थी। अपने रूप-यौवन, विद्या-बुद्धि और शौक़ीनी के गर्व में सब स्त्री-पुरुषों को गँवार और तुच्छ समझती थी। जो मूर्खा या भोंदू होती थी, उससे तो मैं बोलती तक न थी। जो धूर्त, चपल तथा व्यभिचारिणी होती थी, उससे ही बातें करती थी; परन्तु उसको भी मैं गँवार ही समझती थी। ऐसी स्थिति में तीर्थ-यात्रा बिना मेरे घमण्ड में त्रुटि रहती, इसलिए यात्रा करना ज़रूरी था।

(२) मेरे माता-पिता आदि सब घर वाले यात्रा करने गए, तब मेरा जाना भी आवश्यक था।

(३) घर में बैठे-बैठे चित्त उदास रहता था, इसलिए घूमने-फिरने तथा सैर करने के लिए मैं बहुत लालायित थी।

(४) जगह-जगह भ्रमण कर अनेक स्थान तथा अनेक तरह के तमाशे देखने का मुझको बहुत शौक़ था।

(५) सबसे अधिक तीर्थ-यात्रा करने का प्रयोजन यह था कि मुझे अपने जोड़ का पुरुष प्राप्त करने की उत्कट लालसा थी। भ्रमण में हज़ारों पुरुष देखने में आएँगे, उनमें से कोई मेरे पसन्द आता है कि नहीं, इसकी भी मुझे बड़ी उत्कण्ठा थी। इन्हीं कारणों से मैं तीर्थ-यात्रा करने गई थी।

हृषीकेश में रात को सब एक ही स्थान में सोए। पण्डित जी ने अपना बिस्तर मेरे बिस्तरे के निकट लगाया, तब मैं वहाँ से हटा कर दूसरे स्थान पर अपना बिस्तर ले गई। पण्डित जी निराश हो गए; और फिर मुझसे किसी तरह की छेड़-छाड़ न की।

जब हम हरिद्वार से लौटे, तो हमारी फूफी परिवार-सहित श्रीमद्भागवत का सप्ताह सुनने के लिए हरिद्वार आ गई थी। उसका बेटा भी साथ था, जो मुझ पर आशिक़ था। वह मेरे पास बहुत बैठता और गङ्गा-स्नानादि में मेरे साथ चलता तथा अपने आभूषण मुझे पहनाता। एक दिन मैं उसकी हीरे की अँगूठी पहन, एक ब्राह्मण-लड़की को साथ लेकर दोपहर के समय गङ्गा-स्नान करने गई। अँगूठी कुछ ढीली थी, इसलिए गिरने के डर से उसको अँगुली से निकाल कर अलग रख दी और मैंने बड़ी देर तक गङ्गा में स्नान किया। एक बम्बई की तरफ़ का भाटिया-युवक घाट के ऊपर बैठा हुआ, मुझे नहाते समय टकटकी लगाए देखता रहा। उसको इस तरह देखते हुए लक्ष्य कर मैंने और अधिक

देर लगाई। दोपहर का समय था, जलक्रीड़ा का मुझे शौक़ ही था, उसपर एक सुन्दर युवक देखने वाला मिल गया। आख़िर बाहर निकल कर, भीगी हुई बारीक धोती को बदल कर सूखी धोती इस ढङ्ग से पहनी कि उसको मेरे अङ्गों की शोभा अच्छी तरह दीख जाय। कपड़े पहन कर अपने अङ्गों को देख-देख कर प्रसन्न होती हुई अठखेलियाँ खेलती हुई चली आई। अँगूठी वहीं भूल आई। जब रहने की जगह पर पहुँची, तो अँगुली ख़ाली पाकर उस लड़की को साथ ले फिर घाट पर गई; पर वहाँ अँगूठी नहीं थी! भाटिया बैठा हुआ था। हमको परेशान देख कर पूछने लगा। तब मैंने तो कुछ उत्तर नहीं दिया, लड़की ने अँगूठी भूल जाने की बात कही। भाटिए ने कहा, पानी में गिर गई होगी। यह कहता हुआ वह दो पौड़ी नीचे उतर, पानी में हाथ डाल कर अँगूठी निकाल ली और ऊपर चला आया। मैंने अँगूठी लेने के लिए लड़की को उसके पास भेजा, तो उसने कहा—अपनी बाई साहब को अँगूठी लेने भेज दो।

वह युवक बड़ा ही सुन्दर और सुडौल था। उसकी लटक और बात करने का ढङ्ग मेरे हृदय में चुभ गया। उसकी रसीली आँखें और चितवन ने मेरा कलेजा छेद दिया। उसने लड़की से मुझे भेजने को कहा, तब मैं लज्जित हो गई और लड़की को दुबारा भेजा; परन्तु उसने अँगूठी न दी। तब मैं वहाँ से निराश होकर लौट पड़ी। थोड़ी दूर जाने पर उसने हँसते हुए लड़की को आवाज़ दी—तुम्हारी बाई साहब नाराज़ होंगी; ले, अँगूठी ले जा। लड़की

सङ्कल्प किया। अब मेरा उसके साथ किसी तरह का भेद-भाव का परदा न रहा। मैं उसे अपना समझने लगी; और वह मुझे अपनी।

तीर्थ-यात्रा समाप्त कर चुकने पर हम लोग बम्बई पहुँचे, जहाँ धनजी का घर था। हमारे ठहरने के लिए उसने तार द्वारा पहले ही से मकान का प्रबन्ध करवा रक्खा था। वहाँ पहुँचने पर शाम के वक्त वह अपना मकान दिखाने तथा स्त्री से मिलाने के बहाने मोटर पर चढ़ा कर मुझे ले गया। उसके फाटक पर सन्तरी खड़े थे। मोटर अन्दर गई और सदर दरवाजे पर ठहरी। मोटर से उतर कर मुझे कमरे में ले गया, जहाँ से सीढ़ियाँ ऊपर को जाती थीं। मुझे सीढ़ियों से चढ़ना नहीं पड़ा। धनजी मुझे हाथ का सहारा देते हुए सीधे एक लोहे के जङ्गले की तरफ़ ले गया, जिसके अन्दर एक आदमी खड़ा हुआ था। उसने तुरन्त सलाम करके दरवाजा खोल दिया, हम दोनों बाँह में बाँह डाले हुए अन्दर घुसे और एक मखमल की कुर्सी पर बैठ गए। धीरे-धीरे वह जङ्गला ऊपर उठने लगा; और चौथे मञ्जिल पर जाकर खड़ा हुआ। हम दोनों निकल कर एक कमरे के अन्दर से होते हुए दूसरे कमरे में गए, जिसको ड्राइङ्ग-रूम (Drawing-Room) कहते थे। उसकी सजावट देख कर मेरी आँखें चकाचौंध में पड़ गईं। मैं सोचने लगी कि मैं स्वप्न में स्वर्ग का कोई दृश्य देख रही हूँ। थोड़ी देर वहाँ बैठने पर एक घण्टी बजी। धनजी ने कहा—खाना तैयार है, चलो भोजन करें। मुझसे कुछ कहते न बना। उसके साथ दूसरे कमरे में

गई। बिजली की रोशनी में चाँदी और काँच के चमकते हुए बर्तनों में अनेक तरह के भोज्य-पदार्थ बने हुए तैयार थे। धनजी ने मुझे अपनी बग़ल में एक कुर्सी पर बैठाया और एक साथ खाने लगे। कुर्सी-मेज़ पर बैठ कर खाने का यह मेरा प्रथम अवसर था। यद्यपि वह काँटे-छुरी आदि का भी प्रयोग करता था; परन्तु मैं उनको पकड़ना भी नहीं जानती थी, इसलिए बहुत शर्माती थी। उसने मुझे अपने हाथ से खिलाया। भोजन करने के बाद वह उठा और दूसरे कमरे में जाकर टेलीफ़ोन द्वारा नाटक बाइसकोप कौन सा अच्छा है, इसकी तलाशी करके एक स्थान रिज़र्व कराया और अपने पोशाक के कमरे (Dressing-room) में मुझे ले जाकर पारसियों की बहुत क़ीमती पोशाक पहना कर मोटर पर सवार करा एक अङ्गरेज़ी कुत्सित शृङ्गार-रस का बाइसकोप दिखाने ले गया। बारह बजे तक बाइसकोप देख कर वापस आए, तब उसके सोने के कमरे (Bedroom) में गए। वहाँ की सजावट का भी वर्णन नहीं किया जा सकता। रात भर हम दोनों ने खूब आनन्द किया। सवेरा होने से पहले धनजी मुझे अपने ठहरने के मकान पर मोटर में बैठा कर पहुँचा गए। पिता जी ने पूछा—रात भर कहाँ रही? मैंने यह कह कर समाधान कर दिया कि धनजी की बहू ने नहीं आने दिया। वहीं खिला कर अपने पास सुला लिया।

मेरे उत्तर से पिता जी का तो समाधान हो गया; परन्तु मेरी माता बहुत बुद्धिमती और चतुर थी, मेरे चेहरे और शरीर के ढङ्ग से उसको खटका हो गया। इसके अतिरिक्त हमारे साथ एक

जमादार रहता था ; वह बड़ा ही चालाक था और स्वयं इन कामों में प्रवीण था। वह हमारे रास्ते के व्यवहारों से ही ताड़ गया था ; और आज तो उसे पूरा निश्चय हो गया। उसका मुझे भी खटका था, इसलिए मैंने उसको मिलाना ठीक समझा। अतः उससे बातें बना कर धनजी के साथ जो मेरा प्रेम था, उसका कुछ हाल कहा तथा इस काम में उसकी सहायता माँगी। लोभ बुरी बला होती है। वह राजी हो गया। माँ को भी मैंने धनजी के मकान और उसके बड़प्पन का सब हाल कहा और खूब सब्ज़-बाग़ दिखा कर शान्त किया। माँ जानती थी कि बेटी कहीं न कहीं तो सम्बन्ध करती ही, इतने बड़े आदमी से सम्बन्ध हुआ, तो अच्छा ही है। माँ और जमादार की सहायता से मैं नित्य धनजी के यहाँ जाती और तरह-तरह के आनन्द-उपभोग करती ; परन्तु हम तो रास्ता-चलते यात्री थे। बम्बई में पाँच-सात दिन से अधिक ठहरना नहीं था। धनजी से मेरा उमर भर किस तरह सम्बन्ध रह सकेगा, इसकी मुझे बहुत चिन्ता थी, धनजी तो कहता था कि तुम खुले-आम मेरी घरनी होकर रहो ; परन्तु यह बात मेरे दिल में नहीं बैठती थी ; क्योंकि धनजी की स्त्री मौजूद थी। वह कुरूप और भोंदू थी, इसलिए धनजी ने उसे एक प्रकार से छोड़ रक्खा था। मैं उसके ऊपर सौत होकर रहना नहीं चाहती थी। दूसरे उसकी स्त्री होकर रहने से माता-पिता को छोड़ना पड़ता। अतः धनजी से मैंने कहा कि मेरे पिता को उपदेश देकर बम्बई में दूकान करवा लो। उनके साथ में यहाँ रहने लगूँगी, तो हम दोनों का

प्रेम-सम्बन्ध बना रहेगा। धनजी ने यही किया और उसे सफलता भी मिल गई। दूकान करने का निश्चय होने पर पिताजी वहाँ सब प्रबन्ध करने के लिए महीने भर ठहर गए।

दूसरा खटका मुझे गर्भ रहने का था। मुझे इसका बड़ा डर था। यद्यपि गर्भ गिरवाना धनजी की कृपा से सरल कार्य था; परन्तु मुझे अपने रूप-यौवन बिगड़ने का ख्याल बेचैन कर रहा था। इसके बन्दोबस्त के लिए धनजी प्रथम तो मुझे एक अङ्गरेज़ी डॉक्टर की दूकान पर ले गया; और वहाँ अनेक तरह के औज़ार ख़रीदे, जिनके व्यवहार में लाने से गर्भ की स्थिति नहीं होती। फिर वहाँ से ताजमहल होटल में पाँचवीं मञ्ज़िल पर एक कमरे में गए, जिसमें धनजी की रखैल एक मेम रहती थी। उसके साथ धनजी ने प्रेमपूर्वक मिल कर मेरा परिचय दिया; और प्रयोजन बताया। तब उस मेम ने मुझे ऐसी क्रियाएँ बताईं कि जिनको काम में लाने से गर्भ कभी नहीं रह सकता। मैं गर्भ की ओर से अब निश्चिन्त हो गई; परन्तु धनजी और मेम के मिलने का विचित्र ढङ्ग मैंने बड़े ही कौतूहलपूर्वक देखा; और उस समय से धनजी पर मेरा उतना विश्वास नहीं रहा, जितना पहले था; क्योंकि पहले उसने अन्य स्त्री के सम्बन्ध की बात मुझसे न कही थी और एकमात्र मुझ से ही प्रेम करता था। इस तरह एक महीना बम्बई में चैन करते हुए कटा।

दूकान का मुहूर्त नज़दीक का ही ठीक हुआ; अतः थोड़े दिन के लिए हम लोग बम्बई से विदा होकर अपने गाँव चले गए। धनजी से

बिछुड़ते समय मेरी और उसकी दशा बहुत बुरी हुई। गाँव पहुँचने पर धनजी को नित्य-प्रति अपनी राज़ी-ख़ुशी का तार देती; और उसका भी तार प्रतिदिन आता। लम्बे-लम्बे प्रेम से भरे हुए पत्र नित्य-प्रति आते-जाते। मुहूर्त से कई दिन पहले ही मेरी ताकीद से माँ के द्वारा पिता जी को कह-सुन कर हम लोग बम्बई चले गए, हमारे रहने के लिए स्वतन्त्र मकान धनजी ने ले रक्खा था। बिछुड़े हुए फिर मिले। अब की बार सदा के लिए साथ रहने के विचार से मिले, इसलिए ख़ुशी हद दर्जे की थी। मैं ऐसा जानती थी कि मेरा जैसा भाग्यवान् जीव संसार में दूसरा शायद ही होगा। धनजी का मेम से सम्बन्ध होने के कारण उनके ऊपर मेरा विश्वास कम हुआ था, अतएव वे मुझसे ऐसा बर्ताव करते थे कि जिससे मेम की बातों का मेरे ऊपर कुछ असर न हो।

मैं अधिकतर धनजी के ही पास रहती। उसको अपना धर्म-भाई होना प्रसिद्ध कर दिया। उसके साथ मैं नित्य मोटर पर बैठ कर हवा खाने जाती। नाटक-तमाशे आदि देखने जाती। घुड़-दौड़ में उसके घोड़े दौड़ते थे, अतः वह मुझे ले जाता और पारसिनों के साथ मुझे बैठा देता। कोई बड़ी सभा आदि होती, जहाँ उसके व्याख्यान होते, तो मुझे ले जाकर सुनाता। बढ़िया से बढ़िया नए-नए फ़ैशन के कपड़े और बड़ी-बड़ी क़ीमत के ज़ेवर पहिनाता। छुरी-काँटों से अङ्गरेज़ों की तरह भोजन करना, काँच के प्यालों में चाय, काफ़ी, शराब आदि पीना भी मैं अच्छी तरह सीख गई।

धनजी के मित्रों की एक मण्डली थी, जिसमें एक मुसलमान खोजा और एक पारसी बहुत घनिष्ट थे। ये दोनों भी पहले नम्बर के ऐयाश थे। इनके भी रखैल स्त्रियाँ थीं। खोजे के एक मुसलमान पञ्जाबी वेश्या बहुत ही खूबसूरत और गाने वाली थी। पारसी के एक पारसिन थी। वे अक्सर हमारे यहाँ खाने के लिए आते और कभी-कभी हम भी उनके यहाँ जाते। हम सब एक साथ बैठ कर अङ्गरेजी ढङ्ग से सब प्रकार का खाना खाते। खाने के बाद गाना-बजाना होता। तीन स्त्रियों में से कभी कोई गाती कभी कोई। साथ में बाजा वे लोग बजाते। पारसिन अङ्गरेजी गाना अच्छा जानती थी। मुसलमान-वेश्या ग़ज़लें खूब गाती थी। मैं भी जो कुछ जानती, गा देती थी तथा हारमोनियम बजाती थी। गाना होने के बाद कभी कोई किसी स्त्री से, कभी कोई किसी स्त्री से मिलता था। आपस में कोई भेद-भाव न था। मैं कभी खोजे और कभी पारसी से मिलती, जैसा कि सबकी सम्मति से निश्चय हो जाता। कभी-कभी सबके सब नाटक, बाइसकोप अथवा अन्य किसी खेल में चले जाते, तो कोई किसी स्त्री को बग़ल में लेकर बैठ जाता, कोई किसी को।

इस तरह राग-रङ्ग में दो वर्ष बीत गए। एक दिन एकाएक धनजी और उसके दोनों साथी वारण्ट में पकड़े गए। मालूम हुआ कि इन तीनों ने साजिश करके लाखों रुपयों के जाली नोट छाप कर चलाए थे। इनके मकान की तलाशी हुई, उनमें नोट बनाने के सब औजार तथा बने और अधबने कुछ नोट भी

मिले। जो इनसे सम्बन्ध रखने वाले थे, उनके भी मकानों की तलाशी हुई। मेरे पिता के मकान पर भी पुलिस वालों ने सब कुछ ढूँढ़ा; परन्तु सौभाग्यवश कुछ भी फँसने वाली चीज़ न मिली। मेरे पिता बहुत घबड़ाए और भाग कर देश जाने का निश्चय कर लिया; यद्यपि मैं सर्वथा इसके विरुद्ध थी। धनजी को जमानत पर छुड़ाने के लिए उसके मित्रों ने बहुत कोशिश की; परन्तु वह नहीं छूट सका। हवालात में मिलने के लिए मैं एक बार गई; परन्तु बहुत-कुछ लोभ-लालच देने पर भी पहरेदार ने उसके दर्शन तक न कराए। मैं कलेजा मसोस कर लौट आई। उस पर जुर्म इतना सङ्गीन था कि पाँच वर्ष से कम क़ैद नहीं हो सकती थी। छुटकारे का कोई रास्ता न था।

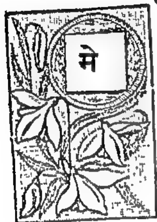
पिता जी के आग्रह करने पर मैं निराश होकर देश जाने को राज़ी हुई; और हम लोग रवाना हो गए। देश में मेरी बहुत बदनामी हो चुकी थी। ससुराल वालों ने भी मुझे अपने घर बुलाने से साफ़ इन्कार कर दिया, अतः पीहर में ही रहने लगी। कई महीने तक तो धनजी की याद और उसकी चिन्ता में डूबी रही; फिर जब उसके मुक़दमे का फ़ैसला सुन लिया, जिसमें पाँच साल की सख्त क़ैद की सज़ा हुई थी, तो हताश होकर बैठ गई।

जिस वैश्य के मकान पर पहले मैं गई थी, उसकी स्त्री मर गई थी; और उसने दूसरा विवाह कर लिया था, अतः उसे अब मेरी चाह न थी। मेरा रङ्ग-रूप भी पहले सा न रहा था, मोती वाली आब उतर चुकी थी।

कई दिन बाद फिर उस चूड़ीगर को घर के आगे से निकलते देखा और उसे बुलाया। उसका सौन्दर्य पहले की तरह न था। शरीर बहुत दुबला और पीला हो गया था; और उसके अन्दर कोई भीतरी बीमारी प्रतीत होती थी। तो भी मैंने दो-चार दिन उसको बुलाया और बातें करके दिल को ढाढ़स देने का प्रयत्न किया; परन्तु वह दिन-दिन चीण होता गया। अन्त में चलने-फिरने लायक़ न रहा। तब उसका आना बन्द हुआ। दो महीने खाट सेवन कर वह मर गया; और उसके थोड़े दिन बाद यह भूकम्प हुआ! बस, यही मेरा जीवन-चरित्र है !!



गंगा का बयान



रा नाम गङ्गा है। मैं एक ब्राह्मण-जाति के शिरोमणि पञ्च के घर में उत्पन्न हुई। मेरे पिता की आर्थिक स्थिति साधारण थी। मेरा विवाह उच्च कुल में हुआ था। विवाह के समय मेरी आयु नौ साल और मेरे पति की दस-ग्यारह साल की थी। विवाह के कुछ महीने बाद ही मेरा पति साहूकारी का काम सीखने के लिए, मेरे जेठ के साथ बम्बई चला गया। मेरा जेठ दलाली किया करता था। मेरे पति को काम सिखाने के लिए उसने एक महाजन की दूकान पर बैठा दिया; पर थोड़े ही समय में उसे बम्बई का पानी लग गया और वह बीमार होकर देश आ गया। बदपरहेज़ी से बीमारी बढ़ती गई; और विवाह के एक साल के अन्दर ही वह मर गया। मेरी उससे कभी भेंट भी नहीं हुई थी। स्त्री-पुरुष के सांसारिक व्यवहार को मैं बचपन ही से समझने लग गई थी; क्योंकि मेरे बड़े भाई की पत्नी तथा अन्य पड़ोसिनों को रात के समय हमेशा राग-रङ्ग करते देखा करती थी। हम लोगों के मकान छोटे-छोटे और ऐसे बने हुए होते थे कि ये काम छिपे नहीं रह सकते

थे। इसके अतिरिक्त मेरी बड़ी बहिन की एक सेठ से दोस्ती थी। पिता जी उस सेठ के पास बहुत आया जाया करते थे। उनका आपस में बहुत मेल था; और बहिन से सेठ जी को भीतरी सम्बन्ध होने से पिता पर उनकी विशेष कृपा रहती थी। बहिन भैरव जी के दर्शन के बहाने मुझे साथ लेकर अक्सर जाया करती। भैरव जी के पास सेठ जी सवारी लिए तैयार रहते, जिस पर हम दोनों बैठ कर उसके साथ शहर से कुछ दूर पर स्थित देव-स्थानों में जाते। नियत स्थान में पहुँचने पर सेठ जी बहिन से उन देवस्थानों में मेरे सामने ही मिलते और मैं बैठी देखती रहती। पुजारी लोगों को सेठ जी इनाम दे दिया करते थे। फिर सेठ जी मुझे कहते—देख गङ्गा, अभी तू बालिका है, तू इन बातों को कुछ नहीं समझती। जब बड़ी होगी, तो तुझे भी इससे बढ़िया सवारियों पर बैठा-बैठा कर सैर कराएँगे; और आनन्द उड़ाएँगे। उस समय मुझे उसकी बातें अच्छी नहीं लगती थीं। मैं उसके कहने से चिढ़ती और अपनी बहिन से कहती—सेठ जी मेरे साथ मसखरी करते हैं, मैं तेरे साथ अब न आऊँगी। माँ से तेरी सारी बातें कह दूँगी। इस पर वह मुझसे बहुत लाड़-प्यार करती; और पीछे लौटते समय मिठाई-पान आदि दिला दिया करती तथा दूसरी बार अधिक दिलाने का वादा करती।

पति के मरने के बाद छः महीने तक तो मेरे पीहर में बहुत शोक रहा। माँ मुझे देख-देख कर बहुत रोया करती; परन्तु

ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया, शोक भी कम होता गया। हमारे मुहल्ले में एक रहीमबख्श नाम का मुसलमान रङ्गरेज रहता था। उसको कबूतर पालने की बड़ी रुचि थी। एक स्थान उसने कबूतर रखने के लिए ले रक्खा था। मैं अपने शिशु-भतीजे को खेलाया करती; और उसे कबूतर दिखाने के लिए रङ्गरेज के स्थान में ले जाया करती। सदा की तरह एक दिन जब मैं गई, तो वह अकेला बैठा कबूतर चुगा रहा था। आकाश में बादल छाए हुए थे। एकाएक वर्षा होने लगी। मैं उसके कहने से भतीजे को लेकर अन्दर के मकान में चली गई। वह कबूतरों को उनके स्थान में डाल कर भीगा हुआ मेरे पास आया; और अश्लील बातें करने लगा। मैं भी समझ गई और चुपचाप उसकी बातें सुनती रही, कुछ उत्तर नहीं दिया। इस बीच में मेरे भतीजे को नींद आ गई। रङ्गरेज ने एक गद्दी बिछा दी, जिस पर बच्चे को सुला दिया। फिर वह निडर होकर मेरे साथ छेड़-छाड़ करने लगा। मैंने पहले तो कुछ चीं-चपड़ की, पीछे विवश हो कर चुप हो गई। उसने मुझे पकड़ कर गोद में बैठा लिया और प्यार करता हुआ आश्वासन देने लगा। अन्त में उसने अपनी काम-वासना पूरी की। वर्षा बन्द होने पर मैं बालक को लेकर अपने घर आई; मगर इज्जत जाने के डर से किसी से कुछ भी नहीं कहा। उस दिन से फिर मैं कभी रङ्गरेज के स्थान पर नहीं गई; क्योंकि मुझे पुरुष-सहवास से भय हो गया।

इस घटना के कुछ दिनों बाद हमारे मुहल्ले में रहने वाले एक

उच्च घराने की वृद्धा ब्राह्मणी, जो कुटनी का कार्य करती थी, मेरे पास आई और इधर-उधर की बातें करने के बाद मुझे मेरी बड़ी बहिन के दोस्त सेठ जी के भतीजे के पास चलने के लिए कहा ; और अनेक प्रकार के लोभ दिखाए। मैं पुरुष-सहवास से डरी हुई थी, अतः उसे सूखा मुँहतोड़ उत्तर दे दिया। फिर कुछ दिनों बाद शहर से कुछ दूर एक मेला लगा। यह मेला प्रति वर्ष लगता है; और लोग सवारियों पर बैठ-बैठ कर जाया करते हैं। हमने भी एक बैलगाड़ी किराए पर की। मेरी बहिन, भावज तथा दूसरी मेल-जोल की एक-दो स्त्रियों के साथ मैं मेले में गई। गाड़ी पर छतरी लगती है; परन्तु उसके आगे का भाग खुला रहता है; और उस खुले भाग में जो सबसे अधिक खूबसूरत तथा कम उमर की स्त्री होती है, वही बैठाई जाती है; ताकि मेले में आने वाले रसिक लोग सब उस गाड़ी पर ही टूट पड़ें। उस समय अपनी सहेलियों में सबसे अधिक रूपवती नवोढ़ा मैं ही थी ; अतः सज-धज कर मैं ही अग्रभाग में बैठी।

कुल-धर्म—तुम तो विधवा थी। ऐसे मेलों में सजावट के साथ क्यों गई ?

गङ्गा—महाराज, उस समाज में विधवाओं के लिए मेलों में जाने की कोई रुकावट नहीं है, वे सुहागिनों के समान वस्त्राभूषण भी पहन सकती हैं। केवल शीशफूल, विशेष प्रकार के एक-दो गहने तथा गोटे-किनारी के वस्त्रों के सिवाय दूसरे बढ़िया से बढ़िया शृङ्गार कर सकती हैं।

क्षमा—और फिर उनसे आजन्म ब्रह्मचारिणी रहने की आशा की जाती है ?

गङ्गा—मेले में छैले पुरुष झुण्ड बाँध कर गाड़ियों के पास आकर खड़े हो जाते हैं। गाड़ी में बैठी हुई स्त्रियाँ उनके नाम ले-लेकर अश्लील से अश्लील गालियाँ गाती हैं, जिनके पुरस्कार-स्वरूप वे उनके मर्मस्थानों पर तक-तक कर नींबू, अनार, नासपाती, खटाई की पुड़ियाँ तथा पान आदि फेंकते हैं। केवल इतना ही नहीं, वे उनके मर्मस्थानों पर हाथाबाँही करते और चुटकी काटते हैं। इससे स्त्रियाँ खूब प्रसन्न होती हैं; और अश्लील गाने गाती हैं। जिस गाड़ी के आगे बैठने वाली, जितनी अधिक सुन्दरी होती है, उतनी ही उस गाड़ी के पास अधिक भीड़ होती है। पुरुषों के आघातों की वर्षा अधिकतर आगे बैठने वाली पर ही होती है। मेरे प्रताप से मेले भर में सबसे प्रथम नम्बर मेरी गाड़ी का रहा; अर्थात् सबसे अधिक भीड़ हमारी गाड़ी के पास ही जुटी रही; और आमदनी भी सबसे अधिक हुई। मेरे शरीर पर चारों ओर से इतने आघात होते थे कि एक क्षण भर भी अवकाश नहीं मिलता था। इस पर भी जितनी व्यथा मुझे होनी चाहिए थी, उतनी यौवन के जोश में नहीं हुई; यद्यपि मेरे अङ्ग ताड़ना से लाल अवश्य हो गए थे! पीड़ा होने पर भी वे आघात मुझे नागवार नहीं गुज़रते थे। गाड़ी के पास आने वाले ग्राहकों में मेरी बहिन के दोस्त का भतीजा मुझ पर मुख्य आशिक़ था, जिसके सन्देशे बुढ़िया कुटनी के द्वारा मेरे पास आ चुके थे। गाड़ी

के पास जब यह धूम मची हुई थी, उसके नौकर ने मेरी बहिन के साथ अलग होकर मेरे लिए बातचीत कर सौदा तय कर लिया। उससे मेरे मिलने के लिए ३००) रुपए ठहरे; और उसी रात को बहिन के साथ मैं उससे मिलने गई।

एक देवता—क्या यह किसी वेश्या का बयान हो रहा है?

क्षमा—भगवन्, मालूम होता है आपका ध्यान कहीं दूसरी ओर चला गया है। यह बयान एक बहुत उच्च कुल में उत्पन्न हुई ब्राह्मणी का है, जिसका समाज अपने कृत्यों से वेश्याओं को भी मात करता है, जिसके चरित्र सुन-सुन कर लज्जा को भी लज्जा आती है। जिस समाज की यह घोर पापमयी परिस्थिति है, जिस समाज की युवतियों को यह शिक्षा मिलती है, वह अपनी स्त्रियों को सदाचारिणी और विधवाओं को आजन्म ब्रह्मचारिणी तथा सच्चरित्र रखने की डींग हाँकता है!

गङ्गा—उस सेठ के लड़के के पास मैं सदा दोपहर को जाने लगी। दो वर्ष तक उससे मेरा सम्बन्ध रहा। फिर उससे मेरे गर्भ रह गया, जिसे उसने एक दाई की सहायता से निकलवा कर पास ही के एक तालाब के नाले में गिरवा दिया। यह बात उसके पिता को मालूम हो गई। उसने अपने लड़के को कुछ भी नहीं कहा; क्योंकि वह स्वयं पौत्रों का पितामह होकर भी अपने पुत्र-पुत्रियों की जानकारी में अनेक विधवाओं एवं सधवाओं का सतीत्व नष्ट करता था: और गर्भ गिरवाता था। अतः पुत्र को कुछ कहता, तो वह सामना करता; इसलिए उसने मेरी माँ से मुझे रोकने

के लिए कहलाया; और उसी दिन से उससे मेरा सम्बन्ध टूट गया।

प्रसव-पीड़ा से आराम होने पर मेरी काम-वासना फिर जाग्रत हुई; और मेरे पिता के गुरु-वंश के एक ब्राह्मण से, जो गुरु-यजमानी के नाते हमारे घर आया करता था, मेरा सम्बन्ध हुआ। उसका घर हमारे मुहल्ले ही में था; अतः मैं नित्य उसके घर जाया करती; और उसकी मार्फ़त कभी किसी धनाढ्य के पास और कभी किसी के पास जाया करती। चार-पाँच साल तक इसी तरह काम चला। इस बीच में मेरे दो बार गर्भ रहा, जिसको मैंने उसी की सहायता से गिराया। एक बार वह मुझे एक सेठ के पास ले गया। उससे उसने १२५) रुपया लिए; परन्तु मुझे केवल २५) ही दिए। तब से मैंने उसके साथ जाना बन्द कर दिया। फिर भी उसके घर जाती रही; क्योंकि मुझे भय था कि वह रूठ जाने पर सारी बातें प्रकट कर देगा। इसके बाद मैंने उस बुड्ढी *ब्राह्मणी कुटनी से मेल किया;* और उसके द्वारा मैं अनेक पुरुषों से मिली। आसपास के मुहल्लों में शायद ही कोई पुरुष मुझसे बचा होगा!

जाति-धर्म—तुम्हारे मुहल्ले में अधिकतर तुम्हारे पिता के कुटुम्बी ही बसते होंगे?

गङ्गा—वहाँ इस काम में बहू-बेटी, भानजी-भतीजी का कोई परहेज़ नहीं था। न जाति-पाँति की ही रुकावट थी। जैसे पशुओं में नर-मादा के मिलने की आवश्यकता मात्र रहती है, उसी तरह

उस समाज में स्त्री और पुरुष मिलने चाहिए; फिर किसी तरह के विचार का प्रयोजन नहीं है।

धर्मराज—फिर पशुओं में और उनमें भेद ही क्या है ?

गङ्गा—जब आसपास के लोग मुझसे नफ़रत करने लगे, तो मैं एक सुथारी के अड्डे में जाने लगी।

धर्मराज—अड्डा क्या ?

गङ्गा—कुटनियों का मकान, जहाँ पर स्त्री-पुरुष व्यभिचार के लिए जाते हैं, उसे अड्डा कहते हैं। वहाँ सब जातियों की, सब तरह की स्त्रियाँ जा बैठती हैं। उनके रूप और उमर के अनुसार फ़ीस नियत की जाती है। फिर भाँति-भाँति के पुरुष आते हैं। जिसके जो स्त्री और जितने मूल्य की पसन्द आती है, वह उसके विषय में कुटनी से ठहराव करता है; और फिर उससे मिलता है। कुटनी अपनी दलाली और किराया काट कर बाक़ी फ़ीस स्त्री को दे देती है।

धर्मराज—यह तो एक प्रकार का वेश्यापन ही समझना चाहिए ?

गङ्गा—नहीं महाराज, वेश्या तो अपने घर ही में जिससे चाहे उससे मिलती हैं, अड्डे में कभी नहीं जातीं। वहाँ जाना वे अपनी मर्यादा के प्रतिकूल समझती हैं। अड्डे में जाने से कुटनी जिससे मिलाती है, उसीसे मिलना पड़ता है। अनेक बार भङ्गी, चमार मुसलमान और क़साइयों तक से सहवास करने का मुझे अवसर मिला है। दोपहर के समय में नित्य सुथारी के अड्डे में जाकर दो-

एक देवता—इनके जो कर्म तुमने बताए, वह शूद्रों से भी गए बीते हैं !

मनोरमा—कर्म तो अच्छे-अच्छे उच्च जाति के ब्राह्मणों के भी आपने पूर्व बयानों में सुने ही हैं ; परन्तु उन कर्मों से वे शूद्र थोड़े ही हो गए ? वे नाते थोड़े ही कर सकते हैं।

मेरा विवाह नौ साल की उमर में एक बत्तीस साल के धनाढ्य दूजहेवर से हुआ। उसे फेफड़े की बीमारी लगी हुई थी। इसलिए विवाह के दो साल बाद ही वह मर गया। मेरे सास-ससुर नहीं थे, केवल जेठ-जेठानी थे। उन्होंने मेरे पति के मरने तक मुझे कभी नहीं बुलाया; अतः मैंने पतिका मुँह भी नहीं देखा था। उसके मरने से मुझे कुछ भी शोक नहीं हुआ ; क्योंकि उस समय मैं बिलकुल अज्ञान थी। मेरी भावज बड़ी बदमाश थी। मैं उसके साथ बाजार में जाया करती और अपने घर तथा सेठानियों के लिए सौदा लाया करती। घूमने-फिरने में मुझे कोई रोक-टोक नहीं थी ; और हमारे समाज की शिक्षानुसार हमें कहीं भी जाने में किसी प्रकार का भय न था। मेरी भावज के अनेक दोस्तों में से एक पण्डित जी प्रधान दोस्त थे। ये पण्डित जी बड़े चलते पुर्ज़े थे। इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। शहर के बड़े-बड़े कार्यों तथा सभा-सोसाटियों में प्रधान भाग लेते थे। व्याख्यान देते थे। धर्म के बड़े कट्टर थे। कई घण्टों तक पूजा-पाठ करते थे। बहुत से देवताओं की मूर्तियाँ इनके पूजन में रहती थीं। जिनकी वे विधिपूर्वक पूजा करते थे। इनकी धर्मपरायणता शहर में प्रसिद्ध

थी। व्यभिचारी भी पहले दर्जे के थे। स्त्री को यदि चित्र में भी देखते, तो इनका मन चले बिना न रहता। जाति-पाँति नाता-रिश्ता आदि का विचार उनके दिल में बिलकुल न था। पुरुष के लिए व्यभिचारी होना कोई ऐब नहीं, वरन् बड़प्पन समझा जाता है। अतः इससे पण्डित जी की प्रतिष्ठा में कोई बाधा न पहुँचती। बड़े-बड़े आदमी सदैव इनके घर पर बैठे रहते थे। उनके सामने भी पण्डित जी की आशनाएँ उनके आस-पास आ बैठतीं, तो भी कोई अनुचित बात न समझी जाती। पण्डित जी के बैठने का मकान घर से अलग था। वे अपना पूजा-पाठ बैठक में ही करते थे। मेरी भावज पण्डित जी के पास अधिकतर पूजा-पाठ के समय बैठक में ही जाया करती। मैं भी कभी-कभी भावज के साथ जाती। पण्डित जी हाथ से तो ठाकुर जी का स्नान, चन्दन, पुष्प आदि से पूजन करते और मुँह से मेरी भावज से व्यभिचार की बातें करते रहते। भावज उनको पान लगा कर खिलाती और मिलती-मिलाती।

देवता लोग—क्या इस तरह के पण्डित को तुम धर्म का कट्टर समझती हो ?

मनोरमा—महाराज, पण्डित जी सभाओं में जाते तो आर्य-समाजियों से बड़ा शास्त्रार्थ होता। उस समय वे मूर्ति-पूजा और श्राद्ध का मण्डन तथा विधवा-विवाह का खण्डन इस तरह करते कि इनके सामने कोई खड़ा भी न हो सकता। सभाओं में बेचारे सामाजियों को मुँह की खानी पड़ती। सुनने वाले सभी उनको गालियाँ देते और पीछे लग जाते। उन्हें झखमार कर वहाँ

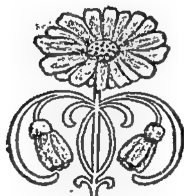
से भाग जाना पड़ता। पूजा के समय लोग उनके पास आते और जीत की तारीफ़ करते, तब मैं भी बैठी-बैठी सुनती। जब कोई आर्य-समाजी पण्डित जी के पास आता और उस समय मैं भी वहाँ बैठी रहती, तब वे उसको ख़ूब फटकारते और गालियाँ देकर निकाल देते! सामाजी लोग अधिकतर विधवा-विवाह की बातें इनके सामने करते, जिस पर ये आपे से बाहर हो जाते। इन बातों से इनकी धर्म की कट्टरता स्वयं सिद्ध होती। मैं भावज के साथ पण्डित जी के यहाँ जाती, तब कभी वे मुझे मिठाई खिलाते; और कभी दो-चार आने नक़द दे देते।

कुछ समय के बाद जब मेरे शरीर में जवानी के चिह्न उत्पन्न हो गए, तो एक दिन भावज ने मुझे उनके यहाँ कुछ मिठाई दे आने को कहा। मैं उनके यहाँ गई, उस समय वे अकेले ही थे। उन्होंने मुझे अन्दर लेकर किवाड़ बन्द कर लिए; और तरह-तरह के लालच दिखाने लगे। पहले तो मैं उनकी बातें कुछ भी न समझ पाई; परन्तु जब वे हाथ लगाने लगे और मुझे ज़बरदस्ती उठा कर कमरे के अन्दर ले गए, तो मैं चिल्लाने और उनसे छोड़ देने की प्रार्थना करने लगी; मगर उन्होंने इस पर ध्यान न देकर जबरन मेरा धर्म नष्ट कर दिया! इस पर मैंने रोना-पीटना शुरू किया; परन्तु उन्होंने कुछ दे-लेकर मुझे राज़ी कर लिया और मैं लालच के मारे चुप होकर घर आ गई। मैंने इस विषय में किसी से कुछ न कहा। कुछ दिन तक मेरा उनके यहाँ आना-जाना नहीं हुआ। घर पर मैं अपने भाई-भौजाई को रात के समय आनन्द करते देखती।

इससे मेरी कामाग्नि भभकने लगी; और उसका रोकना मेरे लिए जब असम्भव हो गया, तो मैं फिर उन्हीं पण्डित जी के पास गई। वे पहले से ही तैयार थे। उनसे बहुत दिन तक मेरी दोस्ती रही।

अपनी जाति की रिवाज के अनुसार मैं कुएँ से और बरसात में तालाबों से पानी लाया करती। पँनघट पर गागर उठा कर सिर पर रखने के लिए दूसरों की सहायता की आवश्यकता पड़ती थी। वहाँ पर खड़े रहने वाले युवक स्त्रियों से छेड़-छाड़ करते; मगर हम लोग उसकी पर्वाह न करतीं। फिर उनसे मिलने का ठहराव वहीं हो जाता, उसी के अनुसार मिलाप होता। पनघट की इश्क़बाज़ी की लावनियाँ तथा ख्याल हमारे यहाँ और ख़ास कर हमारी जाति की स्त्रियों द्वारा सदा गाए जाते हैं। पानी-भरी गागर लेकर घर आते समय रास्ते में बदमाश लोग ख़ूब सताते और मिलने के लिए तङ्ग करते। यदि कोई आना-कानी करती, तो उसको पीटते भी। इस भय से बदमाशों के साथ भी व्यभिचार करना पड़ता। मैं पानी लाने जाती, तो पनघट पर तथा मार्ग में बदमाश लोग मुझे पण्डित जी की रखैल कह कर पुकारते; और जब मैं पर्वाह न करती, तो गालियाँ सुनाते, फिर पीटने आते। एक-दो दिन तक तो मैंने इक़रार करके छुटकारा पाया। अन्त में अपने भाई तथा पण्डित जी से मैंने सब हाल कह सुनाया; परन्तु उनसे कुछ न बन पड़ा। जब मैंने बदमाशों के साथ इक़रार पूरा नहीं किया, तब एक दिन उन्होंने मुझे बेंतों से मारा।

अधेड़ बनिये से सम्बन्ध किया, जिसके कोई आगे-पीछे नहीं था। उसके घर में रहती, उसकी रसोई करती; और रखैल की तरह रहती हुई आयु बिताने लगी। भूकम्प के समय मेरी आयु पैंतीस वर्ष की थी !!



आनन्दी का कथानक



मे रा नाम आनन्दी है। मेरा जन्म ब्राह्मण-कुल में हुआ था। विवाह कब हुआ, मुझे कुछ मालूम नहीं; परन्तु बड़ी होने पर मैंने सुना कि अपने चचा के सट्टे में मैं दी गई थी; और विवाह के थोड़े ही दिनों बाद मेरा पति हैज़े की बीमारी से मर गया। युवावस्था प्राप्त होने पर मुझे पुरुष की इच्छा हुई; पर मिलने का कोई उपाय नहीं सूझा। मेरे पिता एक चालाक आदमी थे, अतः मुझे किसी ग़ैर-आदमी से बात भी न करने देते। हमारे मुहल्ले में एक महा धूर्त्ता बुढ़िया रहती थी। वह नित्य वल्लभ-सम्प्रदाय के मन्दिरों में दर्शन करने जाती। इन मन्दिरों में दर्शन करने के सात समय होते हैं। वह बुढ़िया प्रायः सातों समय दर्शन करने के लिए दौड़-धूप किया करती थी। उस दुष्टा ने जब मेरा यौवन खिला देखा, तो उसे मुझे फाँस कर लाभ उठाने की फ़िक्र हुई। एक दिन मैं अपने चबूतरे पर बैठी थी। वह दुष्टा हाथ में माला लिए मेरे पास आई और हिंडोले के दर्शनार्थ मन्दिर में चलने को कहा। मैं अपनी माँ की आज्ञा लेकर उसके साथ प्रति दिन दर्शन को जाने लगी। जब उसके साथ जाते मुझे

चार-पाँच दिन हो गए, तो वह मुझे व्यभिचारी आदमियों की बातें कह-कह कर व्यभिचार करने में अनेक तरह के आनन्द और लोभ के सब्ज़ बाग़ दिखाने लगी। मैं उसकी बातें बड़ी दिल-चस्पी से सुनने लगी, जिससे मेरे चित्त में पुरुष-सहवास की कामना ज़ोर पकड़ने लगी। थोड़े दिनों बाद एक गुसाईं-बालक का आगमन हुआ; और वे मन्दिर ही में पीछे की ओर ठहरे। बुढ़िया की प्रेरणा से मैं भी महाराज के दर्शन करने गई। हाथ जोड़ कर दण्डवत् की। महाराज ने आध घण्टे तक बुढ़िया से इधर-उधर की बातें कीं। फिर मेरी तरफ़ दृष्टि करके हाल पूछा। बुढ़िया ने मेरी पहचान कराई। जब मैंने चलने के लिए जल्दी की तो बुढ़िया महाराज की आज्ञा लेकर उठ खड़ी हुई। मैं चली तो बुढ़िया पीछे रह गई; और महाराज से कुछ बातें कर मेरे पास चली आई। तीसरे पहर दर्शन के समय से कुछ पहले बुढ़िया मुझे फिर वहाँ ले गई; और हम दोनों सीधी महाराज के पास गईं। इस समय वे अपने कमरे में अकेले ही थे। हमारे अन्दर जाने पर कमरा बन्द कर लिया गया; और महाराज ने मेरे साथ सहवास किया।

देवता—तुमने तो अभी कहा था कि महाराज बालक थे?

आनन्दी—नहीं वे बच्चे न थे, युवा थे। वल्लभ-कुल के सभी आचार्य बालक ही कहलाते हैं। "गुसाईं-बालक" उनकी एक प्रकार से उपाधि है।

देवता—इस तरह के पापी आचार्यों को निर्दोषी बालक की उपाधि! कैसा अन्धेर है!!

आनन्दी—गुसाईं जी महाराज से मेरे पवित्र होने की बात मन्दिर के कर्मचारियों से छिपी न रही। फिर मन्दिर के मुखिया जी मुझसे मौक़ा पाकर छेड़-छाड़ करने लगे, अतः उनसे भी मैं मिली।

अब मेरे रङ्ग-ढङ्ग से पिता के दिल में कुछ सन्देह हुआ : और उन्होंने बहुत कुछ सोच-विचार के बाद मुझे एक बहुत भले-मानस सेठ के यहाँ नौकर रख दिया। सेठ जी बहुत सच्चरित्र, पक्की उमर के थे ; अतः इनके यहाँ रहने से मेरे सुरक्षित रहने का पिता जी को पूर्ण विश्वास था। सेठ जी और उनकी स्त्री दोनों ही बहुत भले थे। इनके लड़के-लड़कियों का ख़ासा परिवार था। मैं सेठ जी के घर में अन्य कामों के अतिरिक्त उनकी लड़कियों के काम विशेष रूप से किया करती थी। उनके साथ उन मेलों में जाती, जिनका ज़िक्र राधा और गङ्गा के बयान में आया है। मेलों में जो अनाचार उन्होंने बतलाया है, वह सब हम पर भी होता था ; और मैं भी पुरुषों का शिकार बनती थी। इश्क़बाज़ लोग मेरे हाथ सेठ जी की लड़कियों को व्यभिचार के सँदेशे भेजते। सेठ जी की बड़ी लड़की को उसकी ससुराल से बुलाने जाती, तो जाते समय जिस सवारी पर बैठ कर जाती, उसका हाँकने वाला मुझसे छेड़-छाड़ किए बिना न रहता। बाई की ससुराल में उसके कमरे में झाड़ देती, बिस्तर उठाती। कभी बाई नीचे अपनी सास के पास चली जाती, तो मैं ऊपर काम करती, तब बाई के पति मुझे अकेली पाकर मेरे पास आ जाते और छेड़-छाड़ करते।

मेरे चित्त में इस छेड़-छाड़ की चाह रहती ही थी। कभी बाई पीहर से अपने पति के पास मेरे द्वारा कोई सँदेशा भेजती या कोई गहना मँगाती, तो उनसे मेरा एकान्त में मिलने पर सहवास हो जाता।

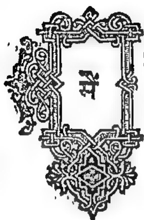
सेठ जी के रसोइए की मेरे ऊपर बुरी दृष्टि रहती थी। मैं सेठ जी के घर पर ही भोजन करती, अतः रसोइया मुझे रूखे-सूखे जले हुए टुकड़े फेंक देता; और बड़बड़ाता रहता। मैं उस का मतलब समझ गई, और उसके साथ हँसी-मसख़री करने लगी। अन्त में जब घर में एकान्त पाकर उससे मिली, तब वह सन्तुष्ट हुआ। अब वह मुझे ख़ूब अच्छी तरह खिलाता। सेठानियों के खाने की चीज़ें भी मुझे परोस देता। रसोइयाँ कुँवारा था। रात को सेठ के घर पर ही सोता था। अतः उस समय मुझे उसके साथ मिलने का अवसर मिलता रहता।

रसोइए से मेरा प्रेम होना दूसरे नौकरों से छिपा न रहा; परन्तु यह कोई नई बात नहीं थी; क्योंकि सेठ लोगों के घरों में नौकर-नौकरानियों में व्यभिचार होते ही रहते हैं। अनेक स्थानों में तो सेठों का नौकरानियों से और नौकरों का सेठानियों से भी अनुचित सम्बन्ध रहता है। सेठ जी की लड़कियों पर भी नौकर लोग हाथ साफ़ किए बिना नहीं रहते। हमारे सेठ जी की बड़ी लड़की का कोचवान के साथ अनुचित सम्बन्ध था। मैं शौच करने के लिए घुड़साल में जाती, तो वहाँ सईस लोग मुझे बुरी तरह सताते; परन्तु मैं उनकी कुछ पर्वाह न करती।

कुछ समय बाद सेठ जी की छोटी लड़की का विवाह हुआ। मैं सब कामों में बहुत होशियार थी; और बड़ी फुर्ती से काम करती थी, इसलिए सेठानी जी की मुझ पर पूरी मेहरबानी थी। विवाह में मेरे लिए बहुत बढ़िया कपड़े बनवा दिए। गहने भी पहनने को दिए, जिनसे मेरा रूप-यौवन दूना हो गया। उधर विवाह में नित्य माल खाने को मिलते, अतः काम-वासना का भी ज़ोर रहने लगा। विवाह में जिस समय सम्बन्धियों के घर पर जाना होता है, तो उस समय उनको गालियाँ गाने की रिवाज है। इस काम के लिए गाने वाली किराए पर रक्खी जाती हैं; परन्तु अधिक अश्लील गालियाँ स्वयं घर वाली अपनी नौकरानियों के साथ मिल कर गाती हैं। इस विवाह में मैंने अपने मन की सब उमङ्गों को अश्लील से अश्लील गालियों के रूप में मुँह द्वारा बाहर निकाल दिया। स्त्री-पुरुषों के अश्लील से अश्लील नङ्गे व्यवहार कड़ियों (उड्डों) में गा दिए। पहले मैं अकेली कड़ी कहती; और फिर सब मेरे पीछे उसे दुहरातीं मेरी आवाज़ ऐसी महीन, सुरीली और लचकदार थी कि सुनते ही मनुष्यों की भीड़ लग जाती; और मेरे गाने के पुरस्कार में पुरुषों द्वारा वाह-वाह की बौछार के अतिरिक्त मेरे शरीर पर कितने ही आघात होते; और मिलने के लिए भी कितने ही सँदेशे आते थे।

विवाह के कई कार्य रात के समय देर तक होते रहते थे। तब किसी न किसी बहू-बेटी को उसके घर पहुँचाने के लिए एक चिराग़ वाले नाई को साथ लेकर मैं जाया करती। वापिस लौटते समय मैं

कमला का बयान



मैं एक वैश्य जाति की स्त्री हूँ। मेरी माता ने लोभ में आकर मेरा विवाह एक साठ वर्ष के बुड्ढे के साथ कर दिया। जब तक वे जीते रहे, तब तक मेरे मन में कितनी उमङ्गें उठती थीं, यह मेरा ही जी जानता है; परन्तु डर के मारे कुकर्म करने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। फिर थोड़े समय बाद ही मद्रास में उनका देहान्त हो गया। उस समय मेरे ननदोई वहाँ थे। उन्होंने जबरदस्ती हमारी दूकान खोल कर उसमें से सब माल असबाब निकाल लिया। मेरे हाथ एक पैसा भी न लगने पाया। अब मैं इसी ताक में रहने लगी कि किसी से प्रेम करूँ। एक ब्राह्मण-देवता मिले। तीन महीने तक उनसे सम्बन्ध रहा। पर जो उम्मीद थी, वह पूरी न हुई—वे तो उलटे मेरे ही जेवर आदि को हजम करने की चेष्टा करने लगे; और क़रीब सौ-पचास रुपए हजम भी कर गए। इसलिए उनसे सम्बन्ध छूट गया; और मैं देश चली आई। यहाँ मेरी सास की मृत्यु हो गई थी। उसका "औसर" नहीं हुआ था। इसलिए पड़ोस के सब लोग मुझे ताने देने लगे, जिससे तङ्ग आकर अपनी चूड़ियाँ छः सौ रुपए में गिरवी रख कर औसर आदि से निपटारा किया! मेरी एक देवरानी

भी थी। उसने मुझे इस औसर में एक पैसे की भी मदद नहीं दी। उस समय मेरी बीस वर्ष की अवस्था थी; अतः मुझे ख़र्च तथा एक पुरुष की आवश्यकता थी। इसलिए मैंने कई आदमियों से बातचीत की; मगर कोई सच्ची प्रीति निबाहने वाला मुझे न मिला। फिर मेरी सौत के जमाई ने आकर मुझसे कहा—अपने मकान के पीछे का नौहरा मेरे नाम से रजिस्ट्री कर दो, तो इस नौहरे में जब हिस्सा पत्ती होगी, तब तुम्हारो देवरानी को आप ही औसर के रुपए का हिस्सा देना पड़ेगा। उसके कहने से मैंने रजिस्ट्री के काग़ज़ पर अँगूठा कर दिया। इसके दो-चार महीने बाद मेरी देवरानी का देहान्त हो गया। उसका तीन-चार हज़ार का ज़ेवर वग़ैरह जो कुछ था, सब उसका भाई दबा बैठा। बहुत आदमियों ने उसे समझाया, मगर उसने न माना।

मैं नित्य मन्दिर में दर्शन करने जाया करती थी। उस समय मेरी पुरुष-सहवास की इच्छा प्रबल हो जाती; और यह विचारने लगती कि कोई ऐसा आदमी मिले, जो मुझे उम्र भर निबाह ले। ईश्वर की कृपा से मेरी इच्छा पूरी हुई और एक वैश्य-जाति का ही आदमी मुझे मिल गया। हम दोनों ने मिल कर यह विचार किया कि देवरानी के भाई से झगड़ कर अपनी जायदाद लेना चाहिए; मगर हमारे पास झगड़ने के लिए ख़र्च न था। इसलिए हमने गाँव में जाकर अपनी एक दूकान १२००) रुपयों में बेची और वापिस आकर झगड़ा आरम्भ किया। उस झगड़े में मुझे कई आदमियों की ख़ुशामद तथा अनेकों से कुकर्म करने पड़े, जिनके फल-स्वरूप

एक बार गर्भ भी गिराया। अन्त में मैं जीत गई; और देवरानी के भाई पर ३०००) की डिगरी हुई।

फिर सौतेला जमाई आया; और जिस आदमी से मेरा प्रेम था उससे छुड़ाने की कोशिश करने लगा; पर मैंने ऐसा करना एकदम अस्वीकार कर दिया; क्योंकि जो आदमी इतनी प्रतिज्ञा करके खड़ा हुआ था; और जो मेरे झगड़े में अपना सब काम-काज इतना ख़राब कर चुका था, उसको मैं कैसे छोड़ सकती थी? इससे नाराज़ होकर उसने मेरे ऊपर उस फ़र्ज़ी रजिष्ट्री का दावा कर दिया। उससे मुझे तीन वर्ष तक झगड़ना पड़ा; और आख़िर में मैं ही जीती। इस झगड़े में मुझे एक आदमी से बहुत काम निकलने की आशा थी, इसलिए मैं उसके घर पर उसकी औरत की धर्म-बहिन का बहाना कर, तीन महीने तक रही। उससे मेरे गर्भ रहा, जिसे मैंने पुष्कर में जाकर गिराया।

मेरे ऊपर बहुत कर्ज़ हो गया था, इसलिए मैं अपना मकान ८०००) में बेच कर दूसरी जगह रहने लगी। सब कर्ज़ चुकाने के बाद मेरे पास पाँच हज़ार रुपया बचा। उसमें से एक हज़ार का मैंने ज़ेवर बनवा लिया; और चार हज़ार जमा रक्खे। इन रुपयों की देख-भाल मेरा प्रेमी ही करता था।

एक दिन मैंने विचार किया कि अब अपनी अवस्था बहुत हो चुकी है, इसलिए किसी को गोद ले लेना अच्छा है। मैंने अपनी जाति वालों के सामने अपनी इच्छा प्रकट की; मगर उन्होंने मुझे लानत-मलामत कर, इन्कार कर दिया। तब मैंने पञ्जाब में

अपनी बिरादरी के एक लड़के को गोद लिया; और उसकी औरत को दो हज़ार के गहने भी बनवा दिए। उसने मुझे १५) मासिक देने का वादा किया; किन्तु कभी एक पैसा भी नहीं भेजा। फिर उसकी औरत मर गई। मैंने अपना आदमी भेज कर पञ्जाब से उसे बुलाया; और कहा तुमको मैंने दो हज़ार का ज़ेवर दिया था वह, कुछ तुम्हारी औरत का ज़ेवर है वह, कुछ तुम अपने पास से निकालो और कुछ मैं अपने पास से निकालती हूँ, सब मिला कर तुम्हारा दूसरा विवाह करा दूँ। इसको उसने स्वीकार नहीं किया; और कहा कि मेरे पास कुछ नहीं है।

उसने मुझे अपने प्रेमी के घर जाने से भी रोका; पर मैंने इसे अस्वीकार करते हुए कहा कि तुमने गोद आने के बाद अपने क़ौल के मुताबिक़ कुछ भी काम नहीं किया, इसलिए अब मुझे तुम्हारा यक़ीन कैसे हो सकता है; और न मैं इस आदमी को छोड़ ही सकती हूँ, जो आज कई वर्षों से मेरे साथ प्रेम निबाह रहा है। इस पर वह क्रोधित होकर विदेश चला गया। मेरा जो कुछ ज़ेवर इत्यादि उसके पास था, कुछ भी न मिला। फिर मैं उसी प्रेमी के साथ रह कर अपने दिन बिताने लगी !!




उत्तरार्द्ध

क्षमा (सहनशीलता) देवी की बहस





पूर्वार्द्ध में वर्णित आठ स्त्रियों के बयान हो चुकने पर भगवान् धर्मराज ने देवताओं से कहा—अब अन्य हिन्दू-स्त्रियों के बयान लेने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ; क्योंकि उनके भी बयान प्रायः इन आठ स्त्रियों के समान ही होंगे, अतः इस काम में समय नष्ट करने की आवश्यकता नहीं है ।

देवता लोग—नहीं भगवन्, अब अधिक हिन्दू-स्त्रियों के बयान लेने की आवश्यकता नहीं है । इस समाज की परिस्थिति आठ स्त्रियों के बयानों से अच्छी तरह मालूम हो गई ।

फिर धर्मराज ने क्षमादेवी की तरफ़ देख कर कहा—देवी जी, अब इन स्त्रियों के बचाव में आपको जो कुछ कहना हो, कहिए ।

क्षमादेवी ने अभियुक्त स्त्रियों के बचाव के लिए इस तरह कहना आरम्भ किया:—

महाराज, उच्च-वर्ण के हिन्दुओं में स्त्री-जाति पर जो घोरातिघोर अत्याचार होते हैं, उनका आरम्भ प्रस्तावना रूप में जो मैं

ने किया था, उसी का विस्तृत वर्णन आप राधा, कृष्णा, भानमती, सुशीला, गङ्गा, मनोरमा, आनन्दी और कमला के मुँह से सुना है। इससे आपके ध्यान में यह बात पूर्णतया बैठ गई होगी कि इस समाज के मनुष्य स्त्रियों पर केवल अत्याचार ही नहीं करते ; किन्तु अपने स्वार्थ और इन्द्रिय-लोलुपता के लिए बेचारी अबलाओं से कुकर्म करवाते हैं ; और उन सब अत्याचारों और कुकर्मों का दोष भी इन्हीं पर मढ़ते हैं। इनका धर्मशास्त्र कहता है कि ब्रह्मदेव की आधी देह से पुरुष और आधी देह से स्त्रियाँ उत्पन्न हुई हैं (मनु० अ० १, श्लोक ३२) जिससे, प्रमाणित है कि सृष्टि के लिए ईश्वर को पुरुष और स्त्री दोनों का होना एक समान अभिप्रेत है ; परन्तु इन धर्मात्माओं (?) के नजदीक तो स्त्री-जाति की आवश्यकता एक साधारण पशु के बराबर भी नहीं होती। तभी तो कन्या का उत्पन्न होना इनको इतना शोक और दुखजनक प्रतीत होता है कि उसके जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा समझते हैं। मानो वे लोग न तो स्त्रियों से पैदा हुए; और न उनको जीवन-काल में स्त्रियों की कोई आवश्यकता ही रहती है। अगर उनके वश की बात होती, तो शायद वे अपनी जाति में कन्या पैदा ही न होने देते। परन्तु परमात्मा को यह बात स्वीकार नहीं। अतएव वह उनको पुरुषों से कुछ अधिक संख्या में पैदा करता है। घर वालों का अनादर तथा अपमान सहना ही इनका बाल्यकाल का सुख है। माता-पिता तो घोड़े, बैल, भेड़, बकरी आदि के पालन-पोषण और रक्षा के लिए जितनी चिन्ता करते हैं, उतनी भी कन्याओं के लि

नहीं करते। 'राँड' कह कर पुकारना कन्याओं का सम्मान समझते हैं। मानों राँड होना कोई सुख का हेतु है। इनका धर्मशास्त्र बहुत आग्रहपूर्वक आदेश देता है कि कन्या सदा, सर्वदा पूजने योग्य है। जिस कुल में वह दुखी होती है, उस कुल का नाश हो जाता है (मनु० अ० ३, श्लोक ५५ से ६०; अ० ६ श्लोक २६ से २८); परन्तु ऐसे धर्मशास्त्रों की भी इन्हें कुछ पर्वाह नहीं। ये स्त्री-जाति से घृणा करना और उस पर अत्याचार करने ही में अपनी उच्चता और गौरव समझते हैं।

भला जो जन्म से ही स्त्री-जाति से इतना द्वेष करते हैं, वे उनको बाल्यावस्था में सुशिक्षा एवं धर्मोपदेश देने का तथा युवा होने पर उनको सन्मार्ग पर चलाने, कुसङ्ग से बचाने और दुष्टों से रक्षा करने का कष्ट क्यों उठाने लगे? चाहे धर्मशास्त्र कितना ही चिल्लाता रहे कि स्त्रियों को सुशिक्षा देना, कुसङ्ग से बचाना और दुष्टों से रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्त्तव्य है; चाहे वे पिता के आश्रित हों या पति के अथवा पुत्र के उन सबका कर्त्तव्य सदा उनकी रक्षा करना है। जो इन कर्त्तव्यों का पालन नहीं करता, वह धर्म से विमुख होता है; क्योंकि स्त्री स्वभाव ही से चञ्चल और निर्बल होने से स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ होती हैं। अतएव उनकी रक्षा करने का भार स्वयं उनके ऊपर ही न रख कर पुरुषों पर रक्खा गया है; और जो पुरुष इनकी रक्षा न करे, उसको पापी होना भी ठहराया गया है (देखिए मनु० अ० ६, श्लोक २ से १६ तक)।

परन्तु इनको धर्मशास्त्र के वचनों तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विचार से क्या प्रयोजन? इन्हें तो अपने स्वार्थ साधने और अपनी मनमानी करके धर्म-ध्वजी बनने का मिथ्या अभिमान करने से मतलब है। जब तक इनके स्वार्थ और बड़प्पन में आघात नहीं पहुँचता, तब तक न तो इन्हें धर्मशास्त्र याद आता है; और न किसी के भले-बुरे का विचार ही इनके ध्यान में बैठता है। जब इनके स्वार्थ में जरा भी बाधा आने की सम्भावना का चिह्न इनके चित्त में पैदा होता है, तो चट धर्म्मशास्त्र की दुहाई देने को तैयार रहते हैं; और अपने किए हुए धर्म-विरुद्ध आचरणों का तथा कुकर्मों का फल भोगने को स्वयं तैयार न होकर सब दोष बेचारी स्त्रियों के सिर मढ़ कर आप निर्दोष, पुण्यात्मा और धर्मध्वजी बने रहने का दावा करते हैं।

पिता का धर्म है कि बाल्यावस्था में कन्याओं को ऐसी शिक्षा दिलाए तथा ऐसे सहवास में रक्खे, जिससे वे बड़ी होने पर सदाचारिणी बनी रहें। बचपन ही से अदब के पहनावे की आदत डाले, ताकि बड़ी होने पर निर्लज्जता के पहनावे की तरफ़ उनकी स्वाभाविक रुचि न हो। बड़े-छोटे और अपने-परायों के साथ व्यवहार करने में उस तरह का अभ्यास डालें कि होश सँभालने पर तमीज़ से बात-चीत करें; और सब के साथ अपनी जाति और कुल की मर्यादा के अनुसार उचित व्यवहार करें। गार्गी, मन्दालसा, सीता, सावित्री, अनुसूया, दमयन्ती और तारा आदि की पुनीत कथाएँ प्रतिदिन पढ़ा कर नारी-धर्म का ज्ञान इनके कच्चे दिमाग़

में ही इस तरह जमा देना चाहिए कि फिर बुद्धि पकने पर अन्य बुरे भाव उनके हृदय में स्थान न करने पाएँ। सीना पिरोना, अन्न तैयार करना, रसोई बनाना आदि गृहस्थी के कामों की आदत आरम्भ ही में डाल दी जाय, ताकि गृहिणी बनने के बाद घर का समस्त काम करने का उनका व्यसन सा हो जाय; और उन कामों में ऐसी दत्त-चित्त रहें कि प्रमाद की तरफ़ प्रवृति जाने का अवसर ही न मिले। इस प्रकार कन्याओं की शिक्षा की जिम्मेवारी प्रत्येक पिता और उनकी अनुपस्थिति में भ्राता के ऊपर शास्त्रकारों ने रक्खी है; क्योंकि प्रमाद के कार्य तो स्त्रियों के स्वभाव से ही उत्पन्न हो जाते हैं, इनके सिखाने की आवश्यकता नहीं रहती। आवश्यकता रहती है—शुभ-संस्कारों के डालने की; और मनुष्य-जन्म सार्थक करने के लिए शुभ कर्मों की तरफ़ प्रवृत्ति उत्पन्न करने की। इसीलिए पिता के ऊपर इसकी जिम्मेवारी रक्खी गई है; परन्तु इस समाज के लोगों को अपने इस पवित्र और महान् उपयोगी कर्त्तव्य का कुछ भी ख्याल नहीं। ये लोग कन्याओं की सुशिक्षा के लिए कुछ भी नहीं करते। नतीजा यह होता है कि सुशिक्षा का प्रबन्ध न होने से कुशिक्षा एवं कुसङ्ग उन को स्वतः ही प्राप्त हो जाता है।

लड़कियाँ दुष्ट प्रकृति एवं बुरे आचरण की स्त्रियों के संसर्ग में छोटी से बड़ी होती हैं। घर में जो नौकर अथवा आने-जाने वाले होते हैं, वे अधिकतर दुराचारी होते हैं; और उनकी नीयत प्रायः बालक-बालिकाओं को कुमार्ग में प्रवृत्त करने की रहती है

गृह-स्वामी इस बात को जाँचने का कुछ भी विचार नहीं करते कि घर में रहने वाले स्त्री-पुरुषों का वास्तविक आचरण कैसा है; और उनका प्रभाव बालक-बालिकाओं पर किस तरह पड़ रहा है। उनको तो थोड़ी तनख्वाह में अधिक काम देने वाला, चञ्चल एवं चापलूस अर्थात् मुँह पर मीठी बातें करके बनावटी स्वामि-भक्ति दिखाने वाला नौकर चाहिए। फिर चाहे वह घर में छिपे-छिपे कितनी ही चोरियाँ करे; और चाहे घर के स्त्री-बालकों को बिगाड़ डाले, इसकी उनको कुछ भी चिन्ता नहीं (इस विषय में राधा और कृष्णा के बयानों को देखिए)। जिनके घर में नौकर तथा अन्य आने-जाने वाले नहीं होते, उनको अड़ोस-पड़ोस, नाते-रिश्ते व मेल-जोल वाले दुराचारी स्त्री-पुरुषों के कुसङ्ग का अवसर अधिकता से बेरोक-टोक मिलता रहता है (गङ्गा, मनोरमा और आनन्दी के बयान देखिए)।

पहनावे की यह दशा है कि कन्याओं को खूब बारीक से बारीक वस्त्र पहना कर उनकी माताएँ प्रसन्न होती हैं; और उन्हें ढकने योग्य अङ्गों को ढकने की पर्वाह न कर केवल मुँह ढाँकने की तालीम अवश्य दी जाती है (सो भी परायों से नहीं, केवल अपने ससुर-परिवार वालों से)। उसका नतीजा यह होता है कि पर-पुरुष जो पाप-दृष्टि से देखने वाले होते हैं, सब अङ्ग अच्छी तरह देख सकते हैं; और लड़कियाँ निर्लज्जता के फ़न में होशियार हो जाती हैं। बारीक कपड़ों की आदत पड़ जाने से बड़ी होने पर इन्हें लज्जा की रक्षा करने वाले मोटे वस्त्र पहनना नागवार गुज़रता है।

वस्त्रालङ्कारों के नए-नए फ़ैशन की, जो वेश्याएँ तथा दुराचारिणी स्त्रियाँ चलाती हैं, नक़ल कन्याओं की ख़ूबसूरती बढ़ाने में ही पहले-पहल की जाती है; और वे कन्याएँ जब बड़ी होती हैं, तो उनको उसी तरह का शृङ्गार प्रिय लगता है (राधा और कृष्णा के बयान देखिए)।

बोलने-चालने, उठने-बैठने, खाने-पीने आदि का व्यवहार किस तरह करना चाहिए, इस विषय की उन्हें कुछ भी तमीज़ नहीं होती। कुवाक्य तथा दूसरों के दिल दुखाने वाले व्यङ्ग भरे कठोर वचन तथा अपशब्द प्रायः उनके मुँह पर रहते हैं। अपने आत्मीय ,जनों से शील-युक्त, मधुर तथा मन्द स्वर से भाषण करने के बदले उदण्डता एवं तीखी -आवाज़ से निःशङ्क बोलने में उन्हें कुछ सङ्कोच नहीं होता। अपने देवर और बहनोई-चाहे वे रिश्ते में कितने ही दूर के हों—अथवा अपनी किसी सखी-सङ्गिनी का पति हो, उसके साथ अश्लील बातें करने और उसका नाम लेकर अश्लील गीत गाने में वे वेश्याओं के भी कान काटती हैं (आनन्दी का बयान देखिए)। सम्बन्धियों का नाम लेकर उनकी स्त्रियों के साथ अपने घर के पुरुषों के काल्पनिक व्यभिचार के गान गा-गा कर केवल अपने रिश्तेदार स्त्री-पुरुषों को ही व्यभिचार का लाञ्छन नहीं लगाती; बल्कि अपने हृदय पर भी कुसंस्कारों का भाव दृढ़ कर लेती हैं।

यह बात ध्यान में रहे कि इन गानों की शिक्षा बहुत ही छोटी उमर से उन्हें घर में मिलने लगती है। अपने घर के बाहर बैठ

कर गीत गाने का अभ्यास करने की प्रथा है। ताकि उनके गाने में किसी की शर्म या भय न रहे। इस गान-शिक्षा में ऐसे गान भी अधिकता से सिखाये जाते हैं, जिनमें सास-ससुर, ननद-जेठ, देवर-देवरानी और जेठानी से द्वेष करने के भाव भरे होते हैं। इस शिक्षा का नतीजा वही होता है, जो प्रकृति के नियमानुसार होना चाहिए। उत्सव, पर्व आदि के अवसरों पर देव-स्थानों में मेले होते हैं, जिनमें प्रायः कम आयु की लड़कियाँ व्याही और कुवाँरी वही निर्लज्जता का पहनाव पहन और शृङ्गार कर बड़े चाव से जाती हैं। दूसरी तरफ़ कम उमर के लड़के और युवा पुरुष मेले में जाते हैं। लड़कियाँ उनका नाम ले-लेकर गीत गाती हैं। वे लोग उनके साथ हँसी-मज़ाक तथा कुत्सित व्यवहारों के साथ छेड़-छाड़ करते हैं। उस समय यदि कोई अन्य-समाज का आदमी इस लीला को देखे, तो उसको यह विश्वास न हो सकेगा कि ये लोग सद्गृहस्थों के लड़के-लड़कियाँ हैं (राधा और गङ्गा के बयान देखिए)।

इस समाज के पुरुषों के होलिकोत्सव पर किए हुए निर्लज्ज और पैशाचिक व्यवहारों तथा खेल-तमाशों से कन्याएँ महान् अनर्थकारी भ्रष्ट शिक्षा प्राप्त करती हैं (भानमती का बयान देखिए)।

धार्मिक कथाओं और सदुपदेशों के बदले ये लोग दुश्चरित्र लोगों के क़िस्से-कहानियाँ कहने-सुनने तथा इश्क़ की लावनियाँ आदि सीखने में और पराई निन्दा करने में प्रेम रखती हैं। घर-

गृहस्थी के काम-काज सीखने की जगह कुसंस्कार पैदा करने वाले खेल खेलने, शृङ्गार करने, हँसी-दिल्लगी करने और सोने में समय नष्ट करती हैं। इस तरह दिन-रात प्रमोद के कामों में लगे रहने से अनुचित आहार-विहार आदि के कुव्यसन लग जाते हैं। घर की बनी हुई खाद्य वस्तुओं पर उनकी रुचि नहीं होती, अतएव बाज़ार की बनी हुई तरह-तरह की चीज़ें खाती-पीती हैं। विदेशी साबुन, सुगन्धित तेल, इत्र, लवेण्डर, सेन्ट और खूबसूरती बढ़ाने के रोग़न, पाउडर, सिर पर चिपकाने के बाल तथा अन्य शृङ्गार की तरह-तरह की विदेशी अपवित्र सामग्री बचपन ही से काम में लाने लगती हैं। इन सब चीज़ों और आहार-विहार की सामग्रियों को बाज़ार से मँगाने के लिए पर-पुरुषों तथा नौकरों के आधीन रहना पड़ता है; क्योंकि घर वालों से ये चीज़ें प्रायः छिपा कर ही मँगाई जाती हैं। इनके लिए ख़र्च की भी बहुत तङ्गी रहती है, जिसके लिए चोरियाँ करने पर उतारू होती हैं; और क़र्ज़ लेना भी सीखती हैं। (राधा और कृष्णा के बयान देखिए) सारांश यह कि स्त्रियोपयोगी शिक्षा नहीं मिलती, तब वे प्रकृति के नियमानुसार कुशिक्षा में स्वयं पड़ जाती हैं। जिसका नतीजा यह होता है कि बड़े होने पर वे जाति तथा कुल के अनुसार आचरण न कर दुराचार में पड़ जाती हैं; और जाति तथा कुल दोनों को कलङ्कित करती हैं; परन्तु इसका दोष किस पर है? इस समाज में तो सब दोष स्त्रियों के ही सिर मढ़ा जाता है; क्योंकि यहाँ सब एकतरफ़ा इन्साफ़ है। जो काम पुरुष करते हैं, वे सब धर्म हैं। बुरे काम स्त्रियों के सिर

मढ़ दिए जाते हैं। बुरे कामों की असली बुनियाद क्या है, इसका विचार कौन करे ? परन्तु वास्तव में स्त्रियों के बुरे कामों का कारण पुरुषों की कर्त्तव्य-विमुखता और स्वार्थान्धता ही है; क्योंकि पुरुष यदि बालिकाओं को सुशिक्षा दें, तो वे बड़ी होने पर अवश्य ही सच्ची सद्गृहिणी और सदाचारिणी हों, जैसे कि पहले ज़माने में हुआ करती थीं।

अन्य स्त्रियों की अपेक्षा हिन्दू-स्त्रियों का स्वभाव अधिक सुशील, धर्मभीरु और निर्मल हुआ करता है। उचित शिक्षा मिलने पर ये कदापि उच्छृङ्खल नहीं हो सकतीं। स्त्रियों के दुराचारों का अपराध सब इस समाज के पुरुषों का ही है, चाहे इस समाज के लोग कुछ भी कहें। यह तो भगवान् धर्मराज की अदालत है, जहाँ अच्छे-बुरे कर्मों का इन्साफ़ केवल उनके ऊपरी दिखाव पर ही नहीं होता; किन्तु उनके असली कारणों को दृष्टि में रख कर होता है। इसलिए मैंने बालिकाओं की शिक्षा का हाल वर्णन किया। अब इस समाज में बालिकाओं के विवाह करते समय तथा उनके युवा होने पर उनकी तथा उनके स्वत्वों की रक्षा करने के सम्बन्ध में पुरुष लोग अपना कर्त्तव्य किस तरह पालन करते हैं; और इन पर किस तरह के अत्याचार करते है, इस पर मैं संक्षेप रूप से निवेदन करती हूँ।

कन्याओं की सगाई करने के लिए उमर नियत नहीं है। जन्म से लेकर विवाह से पहले तक वह चाहे जब कर दी जाती है! वर की आयु का कोई बन्धन नहीं। कन्या से छोटा हो,

समान हो, उससे बड़ा या उसके पितामह की अवस्था का भी क्यों न हो, केवल होना चाहिए धनवान् और अपनी बराबरी का जातिवान्। वर के गुणों की तरफ़ ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं। जब दस-ग्यारह वर्ष की अवस्था में पूर्व ही विवाह कर दिया जाता है, तो उस बालक के गुण-अवगुण का पता ही कैसे चल सकता है? रहे-सहे स्वास्थ्य की जाँच करने की भी जरूरत नहीं रहती; क्योंकि बालक-वर के स्वास्थ्य की तो जाँच ही क्या हो सकती है? और वृद्ध-वर का स्वास्थ्य अधिकतर बीता हुआ होता ही है। वर के माता-पिता और कुटुम्ब के आचरण का भी कुछ विचार नहीं किया जाता; और न यह देखा जाता है कि इनके घर में स्त्री-पुरुषों का परस्पर कैसा व्यवहार है। मैं ऊपर कह चुकी हूँ कि यदि विचार किया जाता है, तो सिर्फ़ धन और जाति की बराबरी का। जब ये दोनों गुण मिलें, तो फिर तीसरी किसी बात के देखने की जरूरत नहीं। झट सगाई कर ली जाती है; और सगाई करने का काम प्रायः स्त्रियों के अधिकार में देकर पुरुष निश्चिन्त हो जाते हैं। इन स्त्रियों के पास धूर्त बातें बना कर कन्याओं की मँगनी करते हैं; और वे उनकी बातों में आकर बिना सोचे-विचारे दे डालती हैं। सगाई पक्की हो जाती है। नतीजा यह होता है कि ऊँट का बिल्ली के साथ और चूहे का भैंस के साथ विवाह होने के उदाहरण इस समाज में घटित होते हैं। सगाई हो जाने के बाद वह ऐसी पक्की हो जाती है कि फिर कभी टूट नहीं सकती, चाहे वर में कोई अवगुण ही प्रतीत हो;

बेजोड़ का हो अथवा सम्बन्धियों का दुराचार ज़ाहिर हो जाय। अगर किसी अवगुण के कारण कोई सगाई छोड़ दे, तो जाति के लोग सिर पर चढ़ आते हैं। सगाई क्या हुई, मानो विवाह ही हो गया।

धर्मशास्त्र और वैद्यक सिद्धान्तानुसार अठारह वर्ष से प्रथम विवाह होना सर्वथा वर्जित है; परन्तु शास्त्रों को या कन्या के भावी सुख-दुख को कौन देखता है? यहाँ तो मतलब अपने स्वार्थ से है। सम्बन्धी प्रतिष्ठित हुआ, तो अपनी प्रतिष्ठा बढ़ती है; और धनवान् होता है, तो उससे येन-केन प्रकारेण सहारा या आपत्ति-काल में सहायता की आशा रक्खी जाती है। यदि और कोई आशा न भी रक्खी जावे, तो इतना भाव तो अवश्य होता है कि धनवान् के घर कन्या देने से उसका बोझ हम पर कुछ न रहेगा। धर्मशास्त्रानुसार कन्या-दान वर के प्रति होना चाहिए; परन्तु इनके यहाँ कन्या-दान समधी को दिया जाता है; क्योंकि वर तो अबोध रहता है; और वर को देने से इनकी स्वार्थ-सिद्धि भी नहीं होती। यदि धनवान् तथा प्रतिष्ठावान् के कुँवारे लड़के का संयोग न बैठा, तो फिर दूजवर अर्थात् जिसकी प्रथम स्त्री मर गई हो, उसकी तलाश की जाती है; और चालीस-पचास वर्ष तक के धनी एवं प्रतिष्ठित रँडुओं को दस-ग्यारह वर्ष की कन्या दे डालने में इनको कुछ भी सङ्कोच, दया, लज्जा एवं भय प्रतीत नहीं होता! कन्या देते समय ये लोग इस बात का कुछ भी विचार नहीं करते कि हिन्दू-जाति की स्त्री के लिए इस लोक और परलोक

का वास्तविक सुख सिर्फ़ पति पर ही निर्भर है। यदि पति सुयोग्य, सदाचारी और निरोग हुआ, तो उन्हें अन्य सुखों की पर्वाह कम रहती है; परन्तु यदि पति का सुख समुचित रूप से न हो, तो त्रैलोक्य के राज्य की सुख-समृद्धि भी उसे जरा भी आनन्ददायक नहीं होती। इतना होने पर भी कन्या देने में ये लोग भेड़-बकरियों को बेचने के समय जितना विचार करते हैं, उतना भी नहीं करते। फिर वे अभागिनें यदि दुःख पाकर कुमार्गगामिनी हों, तो उनका सब अपराध भी उन्हीं के सिर मढ़ने को तैयार रहते हैं।

किसी स्वार्थ-पूर्ति के लिए कन्या देना शास्त्रों ने राक्षसी विवाह माना है; परन्तु इस समाज में कोई धन लेकर, कोई पीछे से अर्थ-प्राप्ति के भाव से, कोई अपने पुत्र के सट्टे में और कोई अन्य प्रयोजन की सिद्धि के लिए अपनी कन्या देकर उसका सर्वनाश करते हैं। इस तरह के आसुरी कार्य करते हुए भी ये लोग अपने को असुर नहीं मानते; बल्कि परम धार्मिक होने का घमण्ड करते हैं।

बालक-वर के साथ विवाह करने से स्त्रियों को किस तरह के दुःख उठाने पड़ते हैं; और कैसे-कैसे अत्याचार सहने पड़ते हैं, इसका दिग्दर्शन राधा, भानमती, गङ्गा और आनन्दी के बयानों से एवं वृद्ध-विवाह से उत्पन्न होने वाले दुःख और आपत्तियों का कुछ हाल कृष्णा, मनोरमा और कमला के बयानों से मालूम हुआ ही है, उसे दुहरा कर मैं आपका ज्यादा समय लेना नहीं

चाहती ; किन्तु इतना निवेदन करना मैं आवश्यक समझती हूँ कि इस तरह के हजारों अत्याचार बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह से उत्पन्न होने वाले विविध प्रकार से नित्य प्रति होते रहते हैं; जिनका अगर पूरा वर्णन किया जाय, तो आप लोगों के वर्षों तक सुनते रहने पर भी अन्त न आए। इन अत्याचारों को स्त्री-जाति बिना किसी ऐतराज के सहन करती चली जा रही है ; परन्तु पुरुषों को कुछ भी तरस नहीं आता, यद्यपि वे इन अत्याचारों का हाल अच्छी तरह जानते हैं; क्योंकि ये अत्याचार उन्हीं के किए हुए होते हैं।

भगवन् ! कितने घोर अन्याय की बात है कि पुरुष तो संसार का सब सुख भोग कर लड़के-लड़कियों के पिता, पितामह होकर भी पिछली अवस्था में एक दस-ग्यारह वर्ष की अबोध बालिका का जन्म बिगाड़ने के लिए एक, दो, चार, दस—चाहे जितने पुनर्विवाह करलें ; किन्तु पुरुषों की कर्त्तव्यहीनता, स्वार्थलोलुपता एवं दुष्टता के परिणाम से जबरदस्ती विधवा की गई आठ, दस, बारह, पन्द्रह वर्ष की अबोध एवं निर्दोष बालिकाएँ, जिनको यह भी पता नहीं कि संसार का सुख और पति का प्रेम किस चिड़िया का नाम है, जन्म भर के लिए संसार के सब सुखों को त्याग कर बाल-ब्रह्मचारिणी, तपस्विनी या योगिनी बने रहने के लिए बाध्य की जाती है।

धर्मराज—क्या पुरुष स्त्रियों को ज़बरदस्ती विधवा करते हैं ?

क्षमा—हाँ महाराज, ज़बरदस्ती और जान-बूझ कर। एक आठ-दस वर्ष के निर्बल लड़के को बिना जाँच किए कन्या

देते समय क्या उनकी अक्ल में यह बात नहीं आती कि उस लड़के का कभी उमर में ब्रह्मचर्य टूट जानेसे छोटी अवस्था में ही उसका पूरा हो जाना अवश्यम्भावी है। क्या वृद्ध रँडुओं के लिए कन्याओं की क़ुर्बानी करते समय इनकी बुद्धि में यह बात नहीं आती कि वे शरीर का सत्व तो पहले ही खो बैठे हैं, केवल पिण्ड मात्र रह गया है। वे कन्याओं को कितने दिन तक सुख दे सकेंगे। यह ज़बरदस्ती विधवा करना नहीं तो और क्या है ?

भगवन्, ये स्वार्थान्ध और अन्यायी पुरुष तो इन अभागिनी विधवाओं को जन्म भर संसार के विषयों से उपराम रख कर जड़ की तरह शरीर-यात्रा समाप्त करने को बाध्य करते हैं; परन्तु प्रकृति को, जो न इन पुरुषों के और न इन बेचारियों के ही आधीन है, यह बात मन्जूर नहीं। इन पुरुषों की असावधानी एवं कर्त्तव्य-हीनता के कारण कन्याओं के बालपने की प्राप्त हुई क़ुशिक्षा और क़ुसंस्कार प्रकृति के सहायक होते हैं।

बालिकाएँ चाहे जिस उमर में विधवा हो जायँ, इनका रूप-यौवन उसी तरह खिलता है, जिस तरह सधवाओं का; बल्कि विधवाओं का रूप-यौवन सधवाओं से अधिक प्रभावशाली और स्थायी होता है। अनेक प्रकार के सांसारिक विषय-भोगों की वासना क़ुदरती तौर से इन्हें भी सधवाओं की तरह या उनसे भी अधिक उत्पन्न होती है। सधवाओं को तो सब प्रकार के भोग प्राप्त हो जाने से शान्ति मिल जाती है; परन्तु विधवाओं की वासनाएँ कभी तृप्त न होने से बढ़ती ही रहती हैं। विधवाओं के अङ्ग भी

सधवाओं की तरह ही बढ़ते हैं। किसी प्रकार की न्यूनाधिकता नहीं होती। इन बातों से सिद्ध होता है कि प्रकृति के सम्मुख विधवा और सधवा में कुछ भी फ़र्क़ नहीं होता। प्रकृति के विपरीत चलने से संसार में कोई भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता; और न प्रकृति के विरुद्ध बँधी हुई कोई समाजिक मर्यादा ही धर्म-सङ्गत हो सकती है। श्रुति, स्मृति, वेद, पुराण, इतिहास आदि पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि ब्रह्मज्ञानियों के सिवाय प्रकृति को उल्लङ्घन करने की सामर्थ्य न तो आज तक किसी में हुई है; और न भविष्य में होगी। अनेक बड़े-बड़े देवता, ऋषि, महर्षि और राजर्षि भी इस प्रकृति के चक्कर में आकर अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित हो गए, जिनकी सैकड़ों कथाएँ शास्त्रों में मौजूद हैं; और ईश्वर स्वयं कहते हैं—"मम माया दुरत्यया।" तब इन साधारण अबोध, अशिक्षित और मूढ़ जीवों को प्रकृति के नियमों के उल्लङ्घन करने को बाधित किया जाता है, इससे अधिक अन्याय और मूर्खता किसी के विचार में भी नहीं आ सकती।

इन्द्रियाँ और इनके विषय प्रत्येक देहधारी के शरीर के साथ ही उत्पन्न हो जाते हैं। जब तक शरीर है, तब तक ये उसके साथ रहते हैं। कोई इनसे पीछा नहीं छुड़ा सकता। आहार, निद्रा, भय, मैथुन सब प्राणी मात्र में स्वभाव से ही होते हैं। इनके वेगों से कोई बच नहीं सकता; परन्तु दूसरे जीवों की अपेक्षा मनुष्य में यह विशेषता है कि बुद्धिमान् प्राणी होने के कारण शरीर के

इन वेगों को मर्यादा से अर्थात् नीतिमत्ता से शान्त करता है, ताकि उनसे अनर्थ उत्पन्न न हो; और समाज का सङ्गठन ठीक बना रहे। पशु-पक्षियों की तरह वह बेमर्यादा से इन्द्रियों के विषयों को नहीं भोगता। भूख के वेग को भक्ष्याभक्ष्य के विचार से खाने योग्य पदार्थ यथा समय उचित स्थान में खाकर ही शान्त करता है। निद्रा भी उचित समय में ही लेता है। मैथुन अपने लिए नियत की हुई स्त्री के साथ करता है; पशुओं की तरह नहीं। इसी तरह अन्य इन्द्रियों के विषय-भोग की मर्यादाएँ बाँध दी है; और इन मर्यादाओं को ही धर्म कहते हैं। परन्तु मर्यादा, नीति या धर्म जो कुछ कहो, वह शरीर के प्राकृतिक व्यवहारों को सिर्फ़ नियमित करने के लिए होते हैं; उन व्यवहारों या उनमें से किसी को सर्वथा बन्द करने के लिए नहीं होते। अगर कोई मर्यादा नीति या धर्म शरीर के किसी प्राकृतिक व्यवहार को क़तई बन्द करने की व्यवस्था करे, तो वह प्रकृति के प्रतिकूल होने से चल नहीं सकती। अतएव धर्मशास्त्र इस तरह की मर्यादा बाँध ही नहीं सकते कि किसी मनुष्य या स्त्री को उसके प्रकृति-जन्य व्यवहारों को सर्वथा रोक देना पड़े; क्योंकि वे व्यवहार तो शरीर के साथ ही रहते हैं; अतः उनको करने या भोगने का उसका जन्म-सिद्ध अधिकार होता है। श्रीकृष्ण भगवान् स्वयं कहते हैं :—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौव्यवस्थितौ।
तयोर्नवशमागच्छेत्तौह्यस्यपरिपन्थिनौ॥

—*श्रीमद्भगवतगीता ; अ० ३, श्लोक ३४*

इससे स्पष्ट है कि ईश्वर की मर्जी प्रकृति के विरुद्ध प्राणियों के विषय-भोग के अधिकार सर्वथा मार डालने की नहीं है; परन्तु इस समाज को ये बातें मन्जूर नहीं है। इनका तो यही कहना है कि मनुष्यों के लिए तो प्राकृतिक और अप्राकृतिक सब विषयों को चाहे जैसी मर्यादा या अमर्यादा से भोगना धर्म है। मर्यादा है, तो केवल सधवा स्त्रियों के लिए; और विधवाओं के लिए तो शरीर के वेगों को शान्त करने के लिए मर्यादा की भी आवश्यकता नहीं; क्योंकि उनके लिए तो ईश्वर ने इन्द्रियों के सब भोग बन्द ही कर डाले हैं, मानो विधवा होते ही उनका रूप-यौवन, इन्द्रियों के रस सब मृत-पति के साथ उसकी चिता में जल जाते हैं। वास्तव में यदि ऐसा होता, तो इन पुरुषों का कहना बिलकुल उचित होता; परन्तु बात ऐसी नहीं है। विधवाओं का रूप-यौवन, इन्द्रियों के रस उसी तरह बने रहने से तथा भोग की सब सामग्रियाँ उपस्थित रहने से एवं पुरुषों की उनकी तरफ़ प्रवृति होते रहने से साफ़ प्रकट है कि ईश्वर को इन लोगों की यह कल्पना कदापि स्वीकार नहीं। अगर ईश्वर की यह मर्ज़ी होती कि विधवा होने से संसार के विषयों से रहित हो जाय, तो वह विधवाओं के रूप बिगाड़ देता, यौवन छीन लेता, विषय-वासना हर लेता तथा विषय-भोग के सब सामान नष्ट कर देता; और पुरुषों की प्रवृत्ति उनसे हटा लेता, जैसे कि बिना ऋतु के पशुओं की प्रवृत्ति नहीं होती। कम से कम उनको गर्भ-स्थिति के अयोग्य तो अवश्य कर देता, ताकि गर्भपात और भ्रूण-हत्याएँ न होतीं!

दम—यदि इन्द्रिय-निग्रह भगवान् को स्वीकार न होता, सब शास्त्रों में इसकी इतनी आवश्यकता एवं प्रशंसा क्यों ती ?

क्षमा—इन्द्रिय-निग्रह की आवश्यकता एवं प्रशंसा से इन्द्रियों व्यवहार सर्वथा बन्द करने का मतलब नहीं; किन्तु मर्यादा के न्दर रखने का है। जिस तरह रथ के सारथी की बागडोर तथा ड़ों को वश में रख कर मार्ग चलाने का दृष्टान्त सब शास्त्रों में है, सका तात्पर्य बुद्धि-रूपी सारथी, मन-रूपी लगाम को थाम न्द्रिय-रूपी घोड़ों को क़ाबू में रख कर धर्मानुकूल मर्यादित षय-भोग रूपी सन्मार्ग में चलाने का है, न कि घोड़ों को चलने रोक कर रथ की गति ही सर्वथा बन्द कर देने का। अतः ये ग बेचारी इन अबलाओं के जन्म-सिद्ध अधिकार ज़बरदस्ती नते हैं। यदि कोई किसी के ऐश-आराम में बाधा डाले या त्व-हरण करे, तो लौकिक न्यायालयों से वह दण्ड का भागी ता है; परन्तु ये धर्म की ओट में शिकार करके इन बेचारियों के रीर के क़ुदरती वेगों को शान्त करने के जन्म-सिद्ध अधिकारों था स्वत्वों को छीन कर भी उन न्यायालयों में दण्ड से बच जाते परन्तु धर्मराज भगवान् के न्यायालय में ये लोग अपने कर्मों फल भोगे बिना नहीं बच सकते।

महाराज, ये लोग विधवाओं के जन्म-सिद्ध अधिकारों तथा त्वों को ही नहीं छीनते; बल्कि उनका यह मनुष्य-जन्म तथा लोक बिगाड़ कर सदा के लिए उनको कल्याण के साधनों से

इससे स्पष्ट है कि ईश्वर की मर्जी प्रकृति के विरुद्ध प्राणियों के विषय-भोग के अधिकार सर्वथा मार डालने की नहीं है; परन्तु इस समाज को ये बातें मन्जूर नहीं है। इनका तो यही कहना है कि मनुष्यों के लिए तो प्राकृतिक और अप्राकृतिक सब विषयों को चाहे जैसी मर्यादा या अमर्यादा से भोगना धर्म है। मर्यादा है, तो केवल सधवा स्त्रियों के लिए; और विधवाओं के लिए तो शरीर के वेगों को शान्त करने के लिए मर्यादा की भी आवश्यकता नहीं; क्योंकि उनके लिए तो ईश्वर ने इन्द्रियों के सब भोग बन्द ही कर डाले हैं, मानो विधवा होते ही उनका रूप-यौवन, इन्द्रियों के रस सब मृत-पति के साथ उसकी चिता में जल जाते हैं। वास्तव में यदि ऐसा होता, तो इन पुरुषों का कहना बिलकुल उचित होता; परन्तु बात ऐसी नहीं है। विधवाओं का रूप-यौवन, इन्द्रियों के रस उसी तरह बने रहने से तथा भोग की सब सामग्रियाँ उपस्थित रहने से एवं पुरुषों की उनकी तरफ़ प्रवृत्ति होते रहने से साफ़ प्रकट है कि ईश्वर को इन लोगों की यह कल्पना कदापि स्वीकार नहीं। अगर ईश्वर की यह मर्जी होती कि विधवा होने से संसार के विषयों से रहित हो जाय, तो वह विधवाओं के रूप बिगाड़ देता, यौवन छीन लेता, विषय-वासना हर लेता तथा विषय-भोग के सब सामान नष्ट कर देता; और पुरुषों की प्रवृत्ति उनसे हटा लेता, जैसे कि बिना ऋतु के पशुओं की प्रवृत्ति नहीं होती। कम से कम उनको गर्भ-स्थिति के अयोग्य तो अवश्य कर देता, ताकि गर्भपात और भ्रूण-हत्याएँ न होतीं!

दम—यदि इन्द्रिय-निग्रह भगवान् को स्वीकार न होता, तो सब शास्त्रों में इसकी इतनी आवश्यकता एवं प्रशंसा क्यों होती ?

क्षमा—इन्द्रिय-निग्रह की आवश्यकता एवं प्रशंसा से इन्द्रियों के व्यवहार सर्वथा बन्द करने का मतलब नहीं; किन्तु मर्यादा के अन्दर रखने का है। जिस तरह रथ के सारथी की बागडोर तथा घोड़ों को वश में रख कर मार्ग चलाने का दृष्टान्त सब शास्त्रों में है, जिसका तात्पर्य बुद्धि-रूपी सारथी, मन-रूपी लगाम को थाम इन्द्रिय-रूपी घोड़ों को क़ाबू में रख कर धर्मानुकूल मर्यादित विषय-भोग रूपी सन्मार्ग में चलाने का है, न कि घोड़ों को चलने से रोक कर रथ की गति ही सर्वथा बन्द कर देने का। अतः ये लोग बेचारी इन अबलाओं के जन्म-सिद्ध अधिकार ज़बरदस्ती छीनते हैं। यदि कोई किसी के ऐश-आराम में बाधा डाले या स्वत्व-हरण करे, तो लौकिक न्यायालयों से वह दण्ड का भागी होता है; परन्तु ये धर्म की ओट में शिकार करके इन बेचारियों के शरीर के क़ुदरती वेगों को शान्त करने के जन्म-सिद्ध अधिकारों तथा स्वत्वों को छीन कर भी उन न्यायालयों में दण्ड से बच जाते हैं; परन्तु धर्मराज भगवान् के न्यायालय में ये लोग अपने कर्मों का फल भोगे बिना नहीं बच सकते।

महाराज, ये लोग विधवाओं के जन्म-सिद्ध अधिकारों तथा स्वत्वों को ही नहीं छीनते; बल्कि उनका यह मनुष्य-जन्म तथा परलोक बिगाड़ कर सदा के लिए उनको कल्याण के साधनों से

वञ्चित रखते हैं; और इनसे अनेक प्रकार की हत्याएँ करवा कर कलङ्कित करते हैं।

धर्मराज—ये लोग इनका यह लोक तथा परलोक दोनों किस तरह बिगाड़ते हैं ?

क्षमा—सुनिए महाराज, यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि मनुष्य-जन्म बड़ी ही मुश्किल से प्राप्त होता है; और जीव के कल्याण के साधन का द्वार इस मनुष्य-देह के सिवाय दूसरा कोई नहीं है। यह कल्याण तभी प्राप्त हो सकता है, जब इन्द्रियों के विषयों को धर्म की मर्यादा के अन्दर भोग कर शरीर के प्राकृतिक वेगों को शान्त करते हुए बुरे कामों को छोड़ कर, ईश्वर की उपासना एवं परोपकार आदि सत्कर्मों में लग कर क्रम से उन्नति करता हुआ मनुष्य अपना श्रेय आप सिद्ध करे; परन्तु इन विधवाओं के लिए तो इन्होंने ऐसे नियम बनाए हैं कि वे बेचारी अपने शरीर के प्राकृतिक वेगों को मर्यादा के अन्दर कभी शान्त कर ही नहीं सकतीं; और प्राकृतिक वेग किसी से रुक भी नहीं सकते। तब वे विवश हो कर मर्यादा को उल्लङ्घन करती हैं, फिर भी वेग शान्त नहीं होते; क्योंकि बेमर्यादा के भोगों से कभी शान्ति नहीं मिल सकती; और जब शरीर के वेग शान्त नहीं होते, तब ईश्वरोपासना एवं परोपकार आदि सत्कार्य करने में प्रवृत्ति कहाँ से हो ? जीव अपना कल्याण स्वस्थ शरीर ही से कर सकता है। क्षुधा, तृषा आदि शारीरिक वेगों से पीड़ित मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। अतएव पुरुषों के अत्याचार के कारण ये लोग इस दुर्लभ

मनुष्य-देह को पाकर भी इसे व्यर्थ गँवा देती हैं। इस लोक के भोग व्यवस्थित-रूप से भोगना तो दूर रहा, जीवन घोर दुख-यातना में व्यतीत करती हैं; और इस तरह की यातना में रह कर परलोक अर्थात् कल्याण साधने की तो बात ही व्यर्थ है। पुरुषों ने अपने भोगों के लिए जो-जो अपने अनुकूल मर्यादाएँ बाँध ली हैं, उससे शतांश भी यदि स्त्रियों के लिए उदारता दिखा कर प्रकृति के नियमों को ध्यान में रखते हुए बाँध देते, तो मुझे विश्वास है कि हिन्दू-स्त्रियों को अपना कल्याण साधने में कुछ भी अड़चन न होती; क्योंकि ये स्वभाव ही से श्रद्धालु होती हैं, अतएव स्वतः शास्त्रोक्त मार्ग में श्रद्धा रखती हुई अपना जन्म सुधार लेतीं। पुरुषों के लिए इतनी सुविधायें होने पर भी उनमें अनेक घोर दुराचारी, दुष्ट और अन्यायी होते हैं; परन्तु स्त्रियों के प्राकृतिक अधिकार यदि ये लोग न छीनते और अपना कर्त्तव्य यथोचित पालन करते, तो इनमें एक भी दुराचारिणी न होती; परन्तु यह बात इनको स्वीकार नहीं थी कि स्त्रियाँ सदाचारिणी होकर उन्नति करके अपना कल्याण कर लें; और पुरुष स्वयं दुराचारी पड़े रह जायँ। फिर उनको स्त्रियाँ मिलेंगी ही कहाँ से? जब दोनों दुराचारी हों, तभी तो दोनों का साथ ठीक रहता है। इसलिए स्त्रियों को ले डूबना इन्होंने अपना कर्त्तव्य मान लिया। धन्य है इन पुरुषों की धर्मशीलता को!

धर्मराज—ये लोग इनसे हत्या आदि पाप किस तरह करवाते हैं?

मानो भूख से आतुर जीव को जञ्जीर से बाँध कर उसकी नज़र के सामने खाने की सामग्री रख कर उसे चिढ़ाते और व्याकुल करते हैं। यही नहीं, यदि उनको कोई धार्मिक ग्रन्थ गीता, सहस्रनाम आदि पढ़ाने आता है, तो उसको एकान्त में बैठ कर पढ़वाते हैं; परन्तु वह उनको पढ़ाने की ओर ध्यान न रख कर, पाप-दृष्टि से विगाड़ने की फ़िक्र में रहता है (राधा का बयान देखिए)। कोई कथा-वार्त्ता सुनाने आता है, तो उसकी भी दृष्टि उसी प्रकार की होती है। यदि कोई उनके दुःखों में सहानुभूति दिखा कर नज़दीक होता है, तो वह भी अन्दर से दुष्ट-भावों से भरा होता है। यदि वे किसी धर्माचार्य या गुरु की शरण में जाती हैं, तो वहाँ भी सब साज-बाज इन्द्रियों को उत्तेजना देने वाले ही होते हैं; और अक्सर देखा जाता है कि वे लोग वैराग्य एवं संन्यास का उपदेश देने के बदले अपने स्वार्थ के लिए उसे भोग-विलासों में ही घसीटते हैं। (सुशीला का बयान देखिए) राधा-कृष्ण के शृङ्गार-रस के गान तथा रास-लीला आदि से उनको उत्तेजित किया जाता है (राधा का बयान देखिए)। देवालय और तीर्थ-स्थान, जहाँ इनके जाने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं समझी जाती, स्वतन्त्रतापूर्वक इनको विषय-भोगों में प्रवृत्त करने के लिए सुरक्षित क़िले ही हैं।

उत्तेजनाओं का उपरोक्त वर्णन प्रतिष्ठित एवं धनी विधवाओं के सम्बन्ध में है; परन्तु जो दरिद्र घर की विधवाएँ होती हैं, उनकी दशा वर्णनातीत है। बेचारी जहाँ जाती हैं, जहाँ बैठती हैं, वहीं उनको सब प्रकार के विषयों की उत्तेजनाएँ ही नहीं मिलतीं;

किन्तु ये पुरुष-व्याघ्र सर्वदा उन्हें हड़पने के लिए तैयार रहते हैं। बाल्यावस्था में माता-पिता अपने कामों के लिए उन्हें कहीं भेजते हैं, तो दुष्ट लोग मार्ग में तथा जहाँ जाती हैं, उन स्थानों में सताते रहते हैं (मनोरमा का बयान देखिए)। यदि किसी की नौकरी करती हैं, तो वह स्वामी और उसके घर के अन्य नौकर-चाकर उससे छेड़-छाड़ करके भ्रष्ट करते हैं। उस स्वामी की स्त्रियों के साथ मेलों, उत्सवों आदि में बाहर जाती हैं, तो अश्लील गायन और दुष्टों के धावे झेलने में सबसे पहला नम्बर उन्हीं का आता है। (आनन्दी का बयान देखिए)। अपनी स्वामिनि के शृङ्गार, भोग-विलास और शय्यादि तैयार करने का काम उन्हें ही सौंपा जाता है; और कई अवसर तो ऐसे भी आ जाते हैं कि स्त्री-पुरुष निर्लज्ज होकर हास्य-क्रीड़ा भी उनके सामने कर लेते हैं (आनन्दी, मनोरमा और सुशीला के बयान देखिए)। इससे अधिक उत्तेजना संसार में और क्या हो सकती है? घोर वीभत्स राक्षसीय होलिकोत्सव का वर्णन भानमती के बयान में है, क्या इससे अधिक उत्तेजना देने वाले किसी अभिनय की कल्पना की जा सकती है?

क्या इस तरह की उत्तेजनाओं में रह कर इन्द्रियों का विषयों से विरोध करना सम्भव है? क्या कोई पुरुष, चाहे वह पण्डित हो या ब्रह्मचारी, आचार्य हो या वैरागी, भोगी हो या संन्यासी, साधू हो या ज्ञानी, चाहे देवता ही क्यों न हो, यह दावा कर सकता है कि इस तरह की स्थिति में रह कर इन्द्रियों को बस में रख सकेगा? ब्रह्मा उत्तेजना पाकर अपनी लड़की के पीछे भागे,

ईश्वर की मर्ज़ी के विरुद्ध, बर्तने में असम्भव और अन्याययुक्त व्यवस्था धर्म की कभी नहीं हो सकती। सबसे प्रथम यह विचार कीजिए कि धर्म क्या वस्तु है? मेरी सम्मति में मनुष्य-शरीर पाकर जिस मार्ग के अवलम्बन करने से यह लोक और परलोक दोनों सुधरें, उसी का नाम धर्म है। बुद्धि और मन से देह के सब व्यवहार चलते हैं। अतः बुद्धि को शुद्ध रखते हुए मन और इन्द्रियों द्वारा नियमित मर्यादा से सांसारिक व्यवहार करना ही धर्म है। मन और इन्द्रियों को सर्वथा मार डालने या उनके समस्त व्यवहारों को सर्वथा बन्द कर देने से तो धर्म की भी सिद्धि नहीं होती; क्योंकि जो व्यवहार है ही नहीं, उसकी मर्यादा ही क्या हो सकती है? 'धर्म' शब्द का अर्थ है—धारण करना; और जो व्यवस्था धारण ही न की जा सके, वह धर्म नहीं हो सकती। अस्तु—

धर्म वह है, जिसे समय-समय पर बड़े-बड़े विद्वान, बुद्धिमान् और महान् पुरुष देश, काल और पात्र के अनुसार बहुत ही सूक्ष्म और गहरा विचार कर नियत करते हैं; और वह देश, काल तथा पात्रों की स्थिति के साथ बदला भी जाता है। युग-युग के धर्म अलग होते हैं। विविध देशों के धर्म भी नाना भाँति के होते हैं और जाति-जाति के धर्म पृथक्-पृथक् होते हैं। वे भी सब बदलते रहते हैं। जैसे एक समय अहिंसा के बराबर कोई धर्म नहीं होता, दूसरे समय युद्ध के मौक़े पर शत्रुओं को मारना ही परम धर्म होता है। सब जीवों पर दया करना धर्म है; परन्तु चोर, डाकुओं और हिंसक पशुओं को

दण्ड देना धर्म हो जाता है। सतयुग में ज्ञान, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में दान की प्रधानता वर्णित है; एवं कलियुग में भक्ति-उपासना श्रेष्ठ मानी गई है। सरांश यह कि अन्य सांसारिक पदार्थों की तरह धर्म भी परिवर्त्तनशील है, अतः धर्म वही होना चाहिए, जो देश, काल और पात्र के अनुकूल हो; और जिसका व्यवहार सब लोग कर सकें। हिन्दुओं के धर्मशास्त्र इसी नींव पर बनाए गए हैं। इनके सम्बन्ध में यह कहना कि विधवा स्त्रियों के लिए जड़वत् जीवन-यात्रा समाप्त करने की व्यवस्था के सिवाय इनमें कुछ नहीं है, धर्म पर लाञ्छन लगाना है। धर्मशास्त्रकार ऐसे अन्यायी, सङ्कुचित हृदय, पक्षपाती एवं अदूरदर्शी कदापि नहीं हो सकते। मनु आदि कृत धर्मशास्त्रों में अन्य व्यवस्थाओं के समान विधवाओं के लिए जो विशेष रूप से विस्तृत व्यवस्था नहीं देखने में आती, उसका मतलब यह नहीं कि मनु महाराज इन पर इस तरह के घोर अत्याचार कराने में सहमत थे, जैसे कि वर्तमान समय में हो रहे हैं; और न वे इनको बाल-ब्रह्मचारिणी बनाए रख कर, हनुमान और भीष्म की योग्यता में पहुँचा देना सम्भव समझते थे। वास्तव में बात यह थी कि जो धर्मशास्त्र इस समय उपलब्ध हैं, वे जब बने थे उस समय आजकल की तरह विधवाएँ नहीं होती थीं; क्योंकि लोग अपने-अपने कर्त्तव्य-पालन में आरूढ़ थे; और अपने-अपने धर्म के अनुसार चलते थे। अतएव रोगादि अधिक न होते थे और न कम उमर की मृत्यु-संख्या ही अधिक होती थी। युद्धादि के विशेष अवसरों पर जब

बहुत सी स्त्रियाँ विधवा हो जाती थीं, तो उनमें से अधिकांश सती हो जाया करती थीं। अतएव विधवाओं के लिए विस्तृत व्यवस्था बाँधने की आवश्यकता न थी; और न ऐसा करना समय के अनुकूल ही था। उस पर भी उनका यह भाव साफ़ ही प्रकट होता है कि इनको जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचारिणी बना कर रखना उचित नहीं।

पिता रक्षति कौमारे, भर्त्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थाविरे पुत्रा, न स्त्री-स्वातन्त्र्य मर्हति॥

—मनु०; अ० ९, श्लोक ३

इस श्लोक का तात्पर्य यही है कि स्त्रियों की रक्षा का भार पिता, पति या पुत्र ही पर है, अन्य किसी पर नहीं; और स्वतन्त्र अर्थात् अरक्षित दशा में वे कभी न रहें, यही धर्म की मर्यादा है। ऐसी अवस्था में विवाह के बाद स्त्री के लिए पति और पुत्र दोनों में से एक का होना नितान्त आवश्यक है। इससे मालूम होता है कि उस समय पुत्र-हीना बाल-विधवा विरली ही हुआ करती थी। यदि पुत्र के हुए बिना ही किसी का पति मर जाता, तो उसके लिए दूसरे पति की व्यवस्था भी हुआ करती थी। मनु० अ० ९ श्लो० १७५-१७६; याज्ञवल्क्य स्मृति अ० १, श्लोक ६७; शातातपस्मृति श्लोक ४४—४५; वसिष्ठस्मृति अ० १७, श्लोक ६६ में अक्षत-योनि स्त्री का पुनः संस्कार करने की साफ़ व्यवस्था है; और मनु० अ० ९, श्लो० ५९ से ६३ में पुत्र-हीना स्त्रियों के लिए नियोग का विधान

है, अतः शास्त्रकारों को बिना पुत्र के स्त्री का विधवा रहना सम्मत नहीं।

कुल-धर्म—पुत्र न होने की हालत में दत्तक पुत्र गोद लिया जाता है, वह रक्षा कर सकता है।

क्षमा—दत्तक पुत्र केवल धन के उत्तराधिकारी बनाने के लिए गोद लिए जाते हैं। धन के बिना कोई किसी के गोद नहीं आता। निर्धन विधवाओं के दत्तक पुत्र हो ही नहीं सकते; और जो धनी विधवाएँ दत्तक पुत्र गोद लेती हैं, उनका परस्पर माता-पुत्र का वात्सल्य एवं प्रेम-भाव नहीं हो सकता; न दत्तक पुत्र गोद जाने वाली माता की रक्षा करने की चिन्ता ही करता है। उसको फ़िक्र सिर्फ़ धन-प्राप्त करने की रहती है। इसलिए वह उस माता की स्वतन्त्रता में बाधा देकर, उसे अप्रसन्न नहीं कर सकता; और न माता ही उसका कोई दबाव मानती है। दत्तक पुत्र यदि कम उमर का हुआ, तो माता को उलटे उसकी हिफ़ाजत करनी पड़ती है और यदि युवावस्था का होता है, तो कृत्रिम माता-पुत्र का भाव सिर्फ़ दिखावे मात्र का होता है। ये अपना वास्तविक कर्त्तव्य-पालन कुछ भी नहीं करते। सारांश यह कि दत्तक पुत्र पितरों को पिण्ड देने और सम्पत्ति पाने का अधिकारी भले ही हो जाय, परन्तु युवती माता की कुछ भी रक्षा नहीं कर सकता।

कुल-धर्म—मनुस्मृति अ० ९, श्लो० ६४-६८ में नियोग का प्रतिपादन करके फिर उसी जगह उसकी निन्दा भी तो की है?

क्षमा—यह निन्दा सपिण्डी को छोड़ कर अन्य से नियोग करने की है ; क्योंकि सपिण्डी से तो नियोग करने की विधि ही है। फिर उसकी निन्दा कैसे करते ? धर्मशास्त्र-प्रणेता कोई साधारण पुरुष तो थे ही नहीं कि अपनी ही बनाई हुई व्यवस्थाओं आदि-अन्त का ध्यान न रख कर असम्बद्ध प्रलाप कर जाते। यदि नियोग उनके नज़दीक निन्दित ही था, तो उसका विधान करने के लिए उन्हें कौन बाधित करता था ? साफ़ लिख जाते कि नियोग न करना चाहिए। उनमें लिप्सा, भ्रम, प्रमाद या भय तो था नहीं कि वे अधर्म को धर्म बताते। वास्तव में उनको पति या पुत्र के बिना अरक्षित दशा में स्त्रियों को रखना कदापि स्वीकार न था ; और न वे प्रजा की वृद्धि में किसी प्रकार की रुकावट ही रखना चाहते थे; परन्तु साथ ही साथ वर्ण-सङ्करों की उत्पत्ति जो उच्च वर्ण की स्त्री और नीच वर्ण के पुरुष से होती है, एवं उसकी वृद्धि को रोकना वे इससे भी अत्यावश्यक समझते थे। इसलिए मनु० अ० ९, श्लो० ५९-६३ तक कही हुई विधि के सिवाय अशृङ्खलता से नियोग करने की मनाही की गई है ; अर्थात् गुरु-जनों की आज्ञा लेकर पति के सपिण्डी के साथ ही नियोग करना चाहिए। श्लोक ३७ में यह खुलासा कर दिया है कि अन्य प्रकार के नियोग से वर्ण-सङ्कर उत्पन्न होते हैं, अतः यह निन्दा अन्य वर्ण के साथ नियोग करने की है। सपिण्डी से नियोग करने से वर्ण-सङ्कर नहीं होते।

प्राचीन-काल के इतिहास से भी प्रमाणित है

करना उस समय में निन्दित नहीं माना जाता था। कौरव-पाण्डवों की उत्पत्ति और परशुराम जी के निःक्षत्रीकरण पर क्षत्रिय-स्त्रियों में ब्राह्मणों से पुनः क्षत्रियों की उत्पत्ति प्रसिद्ध ही है। इनसे उत्पन्न होने वाले कुल शुद्ध क्षत्री माने गए।

धर्मराज—क्या आपकी सम्मति में पुरुषों की तरह स्त्रियों को भी अनेक पति करने का अधिकार है?

क्षमा—नहीं महाराज, मैं पुरुषों और स्त्रियों के समान अधिकार का प्रतिपादन नहीं करती। हिन्दू-धर्मशास्त्र के अनुसार पुरुष एक पत्नी की मौजूदगी में ही दूसरी अनेक पत्नियाँ, विशेष कारण से या बिना कारण भी, कर सकते हैं और सम्भवतः पुरुषों के इस तरह की स्वेच्छाचारिता के अधिकार, जो वर्तमान-काल में बहुत ही अनुचित प्रतीत होते हैं, उस समय के अनुकूल उचित प्रतीत होते रहे होंगे; परन्तु स्त्रियाँ ये अधिकार नहीं चाहतीं और न स्त्रियों को यह अधिकार मिलना उचित ही है। स्त्री और पुरुष में जो प्राकृतिक भेद है, उसे कोई नहीं मेट सकता। स्त्री अपने पालन-पोषण एवं रक्षा करने के लिए स्वभाव ही से असमर्थ होती है और उसका मन एवं बुद्धि पुरुषों की अपेक्षा स्वभाव ही से कमजोर एवं चञ्चल होते हैं। इसलिए उसको सदा पुरुष के संरक्षण एवं आश्रय में रहना नितान्त आवश्यक है। इसीलिए शास्त्रकारों ने उन्हें स्वतन्त्र रहने की मनाही की है और पुरुष के लिए उसकी रक्षा आदि का कर्त्तव्य नियत किया है; परन्तु जब वह एक पति की स्त्री रहे, तभी वह इसकी रक्षा आदि

कर सकता है । अनेक पति होने से उसकी रक्षा आदि की ज़िम्मेदारी किसी के ऊपर नहीं रहती ।

इन्हीं कारणों से धर्म की मर्यादा बाँधने वालों ने स्त्री के लिए एक ही पति की व्यवस्था बाँधी, जिसका मतलब यह है कि एक स्त्री के एक साथ अनेक पति नहीं होने चाहिए, जैसे कि एक पुरुष के अनेक स्त्रियाँ होती हैं, परन्तु इस एक पति की व्यवस्था का यह प्रयोजन नहीं कि एक पति के मौजूद न रहने पर भी फिर वह कभी दूसरा पति कर ही न सके, चाहे उसने पति का सुख भोगा हो या नहीं अथवा उसके सन्तान हो या नहीं। स्त्री के एक पति के होने का प्रयोजन यदि यही होता कि एक बार केवल विवाह-संस्कार होकर ही पति मर जाय, तो फिर दूसरा पति कभी हो ही नहीं सकता, तो पति और पुत्र के रक्षा करने की व्यवस्था निरर्थक हो जाती ; और ऐसी निरर्थक व्यवस्थाओं को धर्मशास्त्रकार कभी न बाँधते ।

धर्मशास्त्र समाज को सुव्यवस्थित रखने के लिए बने हैं, न कि उसे विशृङ्खल करने के लिए। अतः स्त्रियों पर अत्याचार करवा कर, समाज को विशृङ्खल करने का विधान कदापि नहीं किया गया है।

जाति-धर्म—धर्मशास्त्र कहते हैं कि जिसके साथ स्त्री का एक बार विवाह हुआ, उसके रहते हुए वा मरने के बाद किसी अन्य का नाम भी न ले (मनु० अ० ५ श्लोक १५६ से ५७ तक)। इससे साफ़ स्पष्ट है कि विधवा स्त्री के लिए दूसरा पति नहीं हो सकता ।

क्षमा—इन श्लोकों का भावार्थ शास्त्र-विरुद्ध अपनी इच्छा से पर पुरुष के साथ व्यभिचार के निषेध करने का है। शास्त्र की व्यवस्था के अनुसार तथा अपने पिता, भ्राता और गुरुजनों आदि की आज्ञा से अक्षतयोनि स्त्री के लिए पुनर्विवाह एवं क्षतयोनि के लिए, नियोग का निषेध करना इन श्लोकों का प्रयोजन कदापि नहीं है; क्योंकि शास्त्र की विधि एवं गुरुजनों आदि की आज्ञा से पुनर्विवाह तथा नियोग से जो पति होता है, वही रक्षण आदि करने वाला धर्म की मर्यादा के अनुसार स्त्री का सच्चा पति हो जाता है, अतः उसके सेवन से अधर्म एवं पाप कैसे हो सकता है ? जैसे प्रथम पति के साथ धर्माचरण करने की विधि शास्त्रों में प्रतिपादित हैं, वही सब इस मर्यादा के अनुसार दूसरे पति के लिए भी उपयोगी होती है। अतएव 'पति' शब्द का अर्थ इसी दृष्टि से किया जाना चाहिए। जिस तरह एक स्त्री के बाद पुरुष दूसरी स्त्री से विधि-विहित विवाह करता है, तब वह उसकी पत्नी समझी जाती है, उसी तरह स्त्री प्रथम पति की अनुपस्थिति में दूसरे पुरुष से विधिवत् विवाह या नियोग करती है, तो वह उसका पति हो जाता है। यही व्यवस्था धर्मशास्त्र को मान्य है।

अत्यन्त प्रचीन-काल में विवाह की व्यवस्था नहीं थी। स्त्री-पुरुष आपस में स्वेच्छानुसार व्यवहार करते थे और समाज की कुछ भी व्यवस्था न थी। फिर श्वेतकेतु राजा ने व्यवस्था बाँधने की आवश्यकता समझ कर विवाह करने की मर्यादा बाँधी (देखिए महाभारत आदि-पर्व)। विवाह की व्यवस्था बाँधने का

प्रयोजन यही था कि स्त्री-पुरुष अपने काम के वेग को व्यवस्थित रूप से शान्त करें; और उससे अच्छी प्रजा उत्पन्न हो। इस व्यवस्था के बाँधने का यह प्रयोजन नहीं था कि एक ओर तो पुरुष मनमाने अनेक स्त्रियों को बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक पत्नियाँ बना कर भोगता रहे और दूसरी तरफ़ स्त्रियों को जन्म से लेकर मरण-पर्यन्त ब्रह्मचारिणी रहने के लिए बाधित किया जाय ; उनके जन्म-सिद्ध अधिकार, जो पशु-पक्षियों तक को प्राप्त हैं, छीन लिए जायँ और प्रजा की वृद्धि में ज़बरदस्ती रुकावट डाली जाय।

बड़े ही दुःख का विषय है कि विवाह की मर्यादा बाँधने के असली प्रयोजन की अवहेलना कर शास्त्रों के तात्पर्य की खींचातानी करके यही सिद्ध किया जाता है कि विधवाओं के लिए ईश्वर की यही आज्ञा है कि धर्मपूर्वक वे दूसरा विवाह कर शरीर के वेगों को शान्त कर ही नहीं सकतीं ; और यही बात बेचारी भोलीभाली स्त्रियों के मस्तिष्क में जन्म से ही बैठा दी जाती है, जिससे वे अपने धर्म को सुरक्षित रखने तथा मनुष्य-जीवन का परम-साध्य इहलोक और परलोक सुधारने का एकमात्र साधन, धर्मयुक्त इन्द्रियों के व्यवहार करने के लिए व्यवस्थित रूप से दूसरा विवाह या नियोग करने का विचार अथवा कल्पना तक भी नहीं कर सकतीं।

कैसे घोर अन्याय की बात है कि अपनी मनमानी करने के लिए भी ईश्वर की ओट ली जाती है ? सृष्टि के आरम्भ में जब

विवाह की मर्यादा ही न बँधी थी और आवश्यकता होने पर श्रेष्ठ पुरुषों ने पीछे बाँधी है, तो यह नियम ईश्वर का बनाया हुआ किस आधार पर कहा जाता है, कहने वालों की आत्मा ही जाने।

जाति-धर्म—मनुस्मृति में विधवाओं के लिए ब्रह्मचारिणी-वृत्ति से रहने की बहुत प्रशंसा और दूसरा पति करने की बहुत निन्दा लिखी है (मनु० अ० ५ श्लोक १५८ से १६०)। इससे सिद्ध होता है कि विधवा के लिए दूसरा पति अभिप्रेत नहीं था।

क्षमा—यह बात कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि सांसारिक सुखों को भोगने की अपेक्षा उनसे उपरत होना श्रेष्ठ है। अतएव शास्त्रकारों के ये वचन एक दूसरे के तारतम्य के हैं। जब किसी श्रेष्ठ धर्म का निरूपण किया जाता है, तो उसकी श्रेष्ठता प्रतिपादन करने में मुक़ाबले के लिए उससे हीन धर्मों की निन्दा करना आवश्यक होता है; क्योंकि एक की निकृष्टता दिखाए बिना दूसरे की श्रेष्ठता सिद्ध ही नहीं होती। ब्रह्म-ज्ञान का महत्व प्रतिपादन करते समय संसार के अन्य सब धर्म तुच्छ और त्याज्य कहे जाते हैं। निर्गुण उपासना की उच्चता का वर्णन करने में सगुण उपासना मूर्खों के करने योग्य बताई जाती है; और निष्काम कर्म की महिमा गाते समय सकाम कर्मों की खूब निन्दा की जाती है। तो क्या जो ब्रह्म-ज्ञान तक न पहुँच सकें, वे संसार के सब अन्य धर्मों को ही छोड़ बैठें? जिनका मन निर्गुण

उपासना में न लगे तो क्या वे सगुण उपासना से भी घृणा करने लगें या जो कर्म का फल-त्याग न कर सकें, वे सत्कार्य करना भी छोड़ दें ? नहीं। शास्त्रकारों का प्रयोजन यह कदापि नहीं है। धर्मशास्त्र का प्रयोजन यही है कि जिसे जैसा धर्मानुसार अधिकार हो, वह उसी तरह व्यवहार करे। कर्म करने ही की योग्यता वाले को ब्रह्म-ज्ञान ठूँस देने का परिमाण कदापि ठीक नहीं हो सकता। बिना अधिकार और बिना योग्यता के जबरदस्ती किसी पर बोझ लाद देने से अनर्थ के सिवाय और कुछ भी नहीं हो सकता। सारांश यह है कि तारतम्य दिखाने के लिए शास्त्रों ने उच्चकोटि के धर्मों की प्रशंसा करते समय निम्न-कोटि के धर्मों की निकृष्टता दिखाई है। इससे यह न समझना चाहिए कि निम्न-कोटि का धर्म सर्वथा त्याज्य है। जिनकी पहुँच उच्चकोटि के धर्म तक नहीं हो सकती, उनको निम्न-कोटि का धर्म अवश्य पालन करना चाहिए, नहीं तो घोर अनर्थ हो जायगा। यही शास्त्रकारों का वस्तविक सिद्धान्त है। मनु महाराज के "न मांस भक्षणे दोषो न मध्ये न च मैथुने" का असली तात्पर्य भी यही है।

विधवाओं के सम्बन्ध में यह बात निर्विवाद है कि वर्त्तमान स्थिति में वे जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचर्य-व्रत में कदापि नहीं रह सकतीं। खासकर इस घोर कलिकाल और बीसवीं शताब्दी में, जबकि उनके इस व्रत के पालन करने का एक भी साधन नहीं और उसे भङ्ग करने के कल्पना से भी अधिक उत्तेजना में मौजूद

है; और जबकि चारों ओर से उन पर अत्याचारों की वर्षा हो रही है, ऐसी अवस्था में उनके जन्म-सिद्ध अधिकार छीन कर शरीर के प्राकृतिक व्यवहार धर्मानुकूल करने के लिए दूसरे पति की व्यवस्था न करना और दिखावे की ब्रह्मचारिणी बनाए रखने का मिथ्या ढोंग करना समाज को समूल नष्ट करने का साधन है।

जाति-धर्म—प्राचीन-काल में विधवा-विवाह और नियोग की व्यवस्था थी, तो पीछे बन्द क्यों हुई?

क्षमा—बन्द होने का प्रधान कारण यही है कि यति-धर्म अर्थात् इन्द्रिय-निग्रह करना बहुत ही ऊँचे दर्जे का धर्म सदा से माना जाता है और जो कोई इस धर्म का पालन करता है, वह उच्चकोटि का समझा जाता है; उसकी बहुत ही महिमा होती है। अतएव पुराने ज़माने में जो थोड़ी सी विधवाएँ होती थीं, उनमें से जो पुनर्विवाह और नियोग न कर, यति-धर्म पालन करती थीं, उनकी बड़ी कीर्ति और पूजा हुआ करती थी; और जो विधवा यति-धर्म पालन न कर, पुनर्विवाह या नियोग करतीं, वह यति-धर्म पालन करने वाली के मुक़ाबले में निकृष्ट श्रेणी की गिनी जाती थीं। श्रेष्ठ बनने की सब को इच्छा रहती थी। निकृष्ट कहलाना कोई पसन्द नहीं करती और श्रेष्ठ तभी कहलाती, जब यति-धर्म का पालन करती। यति-धर्म पालन करने वाली को श्रेष्ठ गति मिलने के भी शास्त्रों के वचन हैं। अतः जो स्त्री विधवा हुई, वह यति-धर्म ही स्वीकार करने लगी। धीरे-धीरे समय पाकर

यही विधवाओं का आचार हो गया। श्रेष्ठ वर्णों में विधवा का पुनर्विवाह या नियोग करना घृणित कार्य होकर अधर्म माना जाने लगा। इसलिए यह द्विजातियों में बन्द हो गया। यद्यपि यति-धर्म का बाना तो सबने बना लिया; पर उसका यथावत् पालन करना कोई साधारण खेल तो है ही नहीं। कोई विरली ही इसका यथावत् पालन कर सकती होगी। परन्तु जो रिवाज (रूढ़ि) श्रेष्ठ धर्म के विचार से पड़ गई और जिस रिवाज के होने से ही जाति में श्रेष्ठता का अभिमान हो गया, वह इतनी मजबूत जम गई कि धर्म का प्रधान अङ्ग मानी जाने लगी। स्त्रियों ही में क्यों, पुरुषों में भी यही बात है। यति-धर्म की इतनी महिमा ही के कारण तथा पूजा, क़ीर्ति और अच्छी गति के लोभ से ही बहुत से लोग गेरुआ वेश बनाकर साधू, फ़क़ीर, संन्यासी आदि का स्वाँग धारण कर लेते हैं, जिनकी संख्या वर्तमान भारतवर्ष में साठ-लाख के क़रीब बताई जाती है। क्या ये लोग वास्तव में महात्मा हैं या इनसे संसार की कोई भलाई होती है? कुछ भी नहीं। इनमें से अधिकांश के दुराचार प्रसिद्ध ही हैं; परन्तु फिर भी बढ़ते ही जाते हैं। लोगों का अन्ध-विश्वास इतना है कि गेरुओं को आदेश करना अपना परम-धर्म मान कर इन सबको पूजते हैं। योग्यता और करनी पर कुछ भी ध्यान नहीं देते; परन्तु वास्तव में ये सब शास्त्र के विरुद्ध हैं। सारांश यह कि जिस तरह यति-धर्म की श्रेष्ठता के लाभ प्राप्त करने के लोभ से साधु बनने का अत्याचार बढ़कर जाति का नाश कर रहा है,

उसी तरह और उससे भी अधिक परिमाण में विधवाओं का हाल है।

रिवाज को दृढ़ करने में एक और कारण सहायक हुआ। वह यह कि भारतवर्ष में हिन्दुओं में पारस्परिक तथा अन्य धर्मावलम्बियों के साथ युद्ध बहुत हुआ करते थे; जिसमें बहु-संख्यक पुरुष मारे जाते थे। उन वीर पुरुषों की विधवाएँ दूसरा पति करने के विचार तक को अपनी मर्यादा के विपरीत समझ कर उससे नफ़रत करती थीं; और समाज को भी इस बात की आवश्यकता थी; क्योंकि उस समय पुरुषों के मारे जाने से स्त्रियों की संख्या अधिक हो जाती थी और यदि विधवाएँ पुनर्विवाह कर लेतीं, तो कुँआरियों को पर्याप्त संख्या में पुरुष मिलने कठिन हो जाते। अतएव कुमारियों को जन्म भर अविवाहित रखने से और भी अधिक अनाचार होता, जैसा कि वर्त्तमान काल में पश्चिमीय देशों में हो रहा है। कन्याओं को कुमारी रखने की अपेक्षा उन विधवाओं को जन्म भर विधवा रखना कम हानिकर था, जो पति का कुछ सुख देख चुकी थीं, जिनका पति के साथ प्रेम हो चुका था, जिनके चित्त में अपने मृत-पति और उसके कुल के महत्व और प्रतिष्ठा का अभिमान पूरी तरह उत्पन्न हो जाने से अन्य का नाम लेना भी अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध प्रतीत होता था। इन्हीं कारणों से पुनर्विवाह और नियोग बन्द हो गए; और ऐसा होना उस समय की परिस्थिति के लिए उचित ही था। परन्तु आज वह स्थिति नहीं है, उसके

बिलकुल विपरीत है। न तो विधवाएँ यति-धर्म निभा सकती हैं, न वे पूजनीया हो सकती हैं और न उनकी कोई कीर्ति ही है; न भारत में पहले की तरह युद्धों में पुरुष ही मारे जाकर कम होते हैं। मनुष्य-गणना में स्त्रियों से पुरुषों की संख्या अधिक है। अतएव स्त्रियों के कुँआरी रहने का भय तो कहाँ, उलटे पुरुष ही करोड़ों की संख्या में कुँआरे फिरते हैं। ऐसी हालत में विधवा स्त्रियों के पुनर्विवाह प्रचलित कर पुरुषों के पुनर्विवाह बन्द करने की आवश्यकता है; न कि विधवा स्त्रियों के पुनर्विवाह बन्द करने की।

जाति-धर्म—कलियुग में तो नियोग करने की भी मनाही है।

क्षमा—यह बात मेरी समझ से बाहर है कि जो बात एक साधारण समझ का मनुष्य भी नहीं कह सकता, वह धर्मशास्त्रकार महर्षि कैसे कहते? एक स्थान पर तो नियोग का विधान करते और दूसरे स्थान पर उसी की निन्दा करते। ऐसी असम्बद्ध बातें महर्षि नहीं कर सकते। कलियुग में नियोग का निषेध करने से ऋषियों का प्रयोजन यह नहीं कि कलियुग में विधवा स्त्रियाँ द्वितीय बार पति न करें; परन्तु इस निषेध का मतलब दूसरा है। सतयुग आदि में जब लोग अपने-अपने कर्त्तव्य पर आरूढ़ थे, पूरा-पूरा धर्म का आचरण करते थे, जङ्गलों में रह कर कन्द-मूल, फल-फूल आदि खाते थे, इन्द्रियों के विषय और काम-क्रोधादि वेग जीते हुए थे, सतोगुणी वृत्ति से जीवन-यात्रा करते थे, भोग-विलास का रजोगुणी ठाट कुछ भी नहीं था,

ऋतुकाल के सिवाय स्त्री-प्रसङ्ग के लिए जिनका मन भी न चलता था, व्यभिचार के लिए उत्तेजित करने वाला कोई भी साधन न था, पर-धन और पर-स्त्री की तरफ़ आँख उठा कर देखना भी घोर पाप समझा जाता था, न कोई रोग था और न कोई अल्पायु में मरता था—शुकदेव, याज्ञवल्क्य, जनक, वामदेव, वसिष्ठ, भीष्म जैसे ब्रह्मज्ञानी उत्पन्न होते थे। लक्ष्मण और हनुमान जैसे यति; और मदालसा, गार्गी, मैत्रेयी, अनुसूया, सीता और सावित्री जैसी देवियाँ होतीं थीं और पति के मरने पर स्त्रियाँ सती हो जाया करती थीं; पुत्र-रहित विधवा कोई विरली ही होती थी; उस जमाने में तो अक्षत-योनि विधवा स्त्री का पुनर्विवाह और क्षत-योनि का नियोग धर्म-विहित समझा जाता था। बड़े-बड़े उच्चकुलों में यह मर्यादा प्रचलित ही नहीं थी, किन्तु इसके द्वारा कुल की रक्षा करना परम-धर्म माना जाता था; और नियोगादि से उत्पन्न होने वाली सन्तान को वंश तथा जाति का गौरव माना जाता था; और अब इस कलिकाल में, जबकि धर्म की मर्यादा सब उच्छृङ्खल हो रही है, सब वर्ण और आश्रम अपने-अपने कर्त्तव्यों से च्युत हो रहे है, प्रमाद ने प्रायः समस्त प्रजा में अपना डेरा जमा लिया है, सात्विकी गुणों का ह्रास होकर रजो-गुण और तमोगुण की प्रधानता हो गई, सुशिक्षा का कुछ भी साधन न होकर कुसङ्ग और कुशिक्षा का पारावार नहीं है, अन्य धर्मावलम्बी एवम् अन्य देशों के लोग भारतवर्ष के प्रत्येक नगर और गाँव में आ बसे और साथ-साथ वहाँ के रीति-रिवाज,

आहार-व्यवहार ले आए, जो हिन्दुओं की प्राचीन मर्यादा के बिलकुल विपरीत है, विदेशी और विधर्मियों के शासन में प्राचीन धर्म-मर्यादा का उसी रूप में चलते रहना असम्भव हो गया और उन लोगों के संसर्ग से भोग-विलासादि की रजोगुणी सामग्री इतनी बढ़ गई कि इस परिस्थिति में रहते हुए सात्विकी जीवन निर्वाह करना असम्भव हो गया, ऐसी दशा में विधवा स्त्रियों के लिए पुनः संस्कार को सर्वथा रोक देने की व्यवस्था त्रिकाल-दर्शी ऋषि कैसे कर सकते थे ? जबकि रेल और मोटरों को दौड़ते देख एक स्थान पर बैठा रहना त्यागी महात्माओं से भी नहीं बन पड़ता। तार और डाक द्वारा आए हुए देश-देशान्तरों के मनोरञ्जक समाचार सुनने की उत्कण्ठा किसे नहीं होती ? रेशमी मुलायम रङ्ग-विरङ्गे चमकीले-भड़कीले, ख़ूबसूरत, बारीक, स्वच्छ वस्त्रों के अनायास ही प्राप्त होते हुए मोटा खद्दर किसके शरीर में न चुभेगा ? घर-घर में कलों के जल की नदियाँ बहते रहने पर साबुन रगड़-रगड़ कर शरीर की सफ़ाई कौन न रक्खेगा ? सुगन्धित सैण्ट और तेलादि से दुर्गन्ध-निवारण का शौक़ किसे पैदा न होगा ? मन की इच्छा करने मात्र से दिन की तरह रात में भी रोशनी हो जाय, तो अँधेरे में बैठे रहने से कौन प्रसन्न होगा ? षट्-रसों से बने पकवानों के स्थान-स्थान पर मौजूद रहने पर कठिन व्रतादि से भूखों मरना या रूखा-सूखा नीरस भोजन करना किसे रुचेगा ? कठिन शारीरिक परिश्रम से अन्न साफ़ करने, पीसने-पकाने की सिरपच्ची किसे अच्छी लगेगी ? देश-विदेश के रजोगुणी स्त्री-पुरुषों के मनोरञ्जक

चरित्रों को उपन्यासादि पुस्तक अपनी भाषा में घर बैठे पढ़ने के लिए प्राप्त होने पर संस्कृत के नीरस धर्म-ग्रन्थ सुनने में किसका जी लगेगा ? ग़ज़ल, चौबेले आदि चटकीले इश्क़ के गान गाने का अभ्यास होने पर सीता के सचरित्रों से भरी हुई रामायण की चौपाई किसे प्रिय लगेगी; और राम नाम के जाप में किसका मन लगेगा ? रुपए-आठ आने के व्यय मात्र से नाटक, बाइस्कोप और रास-लीला आदि खेल देखने न जाकर, घर के एक कोने में बैठी हुई अपने नसीब पर रोते रहने से किसे शान्ति मिलेगी ? सारांश यह कि इस आधिभौतिक उन्नति के ज़माने में चित्त को चञ्चल करने वाली अगणित सामग्रियों से घिरे रह कर चित्त-वृत्तियों का निरोध, स्वभाव ही से चञ्चल अबलाएँ कर सकेंगी—यह बात धर्मशास्त्र-रचयिता, त्रिकाल-दर्शी महर्षि कदापि प्रतिपादित नहीं कर सकते। जिस चित्त-वृत्ति-निरोध के लिए पातञ्जल-योग की कठिन क्रियाएँ एकान्त देश में बैठ कर आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि आदि से की जाती हैं, फिर भी सफलता होने में सन्देह रहता है; और जिस मन को वश में करने के उद्योग से हताश होकर अर्जुन जैसे धीर-वीर, जितेन्द्रिय, ज्ञानी पुरुष भी यह कहते हैं कि:—

चञ्चलं हि मनः कृष्णः प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥
—गीता; अ० ६, श्लोक ३४

इसके उत्तर में भगवान् कृष्ण मन-निग्रह के उपाय कहते हैं:—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

अर्थात् इसमें सन्देह नहीं कि मन चञ्चल है और उसका निग्रह करना कठिन है; परन्तु अभ्यास और वैराग्य से इसे आधीन किया जा सकता है।

इस महा कठिन काम का सम्पादन दिन-रात विषयों में निमग्न रहने वाली स्त्रियों से हो सकने की आशा धर्म-शास्त्रकार कैसे रख सकते थे ? जो काम घर-द्वार छोड़ कर वन में कन्द-मूल, फल-फूलादि पर सन्तुष्ट रहने और सांसारिक विषयों से कोसों दूर भागने वाले संन्यासियों से भी बन पड़ना बहुत दुष्कर समझा जाता है, वह काम प्रमाद से भरे हुए नगरों में रहने वाली, आठों पहर अत्याचारियों और विधर्मियों के दाँव-पेचों की शिकार बनी रहने वाली अबलाएँ किस तरह करने में समर्थ होंगी; इस बात से धर्मशास्त्रकार परिचित न थे। दिन-रात अपने माता-पिता, भाई-बहिन, सखी-सहेलियों आदि को संसार के समस्त व्यवहार करते देख और आप स्वयं उन सब व्यवहारों से वञ्चित रहते हुए ईर्ष्या-द्वेष आदि को त्याग कर चित्त को शान्त रखने में कैसे समर्थ होंगी, यह बात भी धर्मशास्त्रकारों के विचार से बाहर न थी। अतः धर्म-शास्त्रकार पुनर्विवाह और नियोग को सतयुग, त्रेता और द्वापर के लिए विधान करके, कलियुग में निषेध करते, यह बात ठीक नहीं जँचती।

धर्मराज—तब क्या आपके कथनानुसार धर्मशास्त्रकारों ने कलियुग में पुनर्विवाह और नियोग की व्यवस्था दी है?

क्षमा—नहीं महाराज, मैं यह दावा नहीं करती कि, कलियुग के लिए उन्होंने कोई खास तौर से व्यवस्था की है। मेरा यह कहना है कि उन्होंने इस विषय में निषेध भी नहीं किया। कलियुग में नियोग का जो निषेध है, उसका मतलब यह है कि नियोग की जो कठिन विधि शास्त्रों में कही गई है अर्थात् शरीर पर घृत का लेप करना और नियोग का प्रयोजन गर्भाधान सम्पन्न होने पर फिर वही पहले का भाव वर्तना—कलियुग में पालन नहीं हो सकती। अतः उस कठिन विधि से नियोग करने की व्यवस्था का निषेध है, न कि विधवा के लिए पुनः संस्कार का। मैं पहले कह आई हूँ कि धर्मशास्त्र जिस समय बनता है, उस समय के वर्त्तमान व्यवहारों की मर्यादा बाँधने के लिए ही बुद्धिमान्, सूक्ष्मदर्शी लोग समयानुकूल व्यवस्थाएँ बनाते हैं। जो विषय उस समय उपस्थित नहीं होते, उनके लिए व्यवस्थाएँ नहीं बनाई जातीं और समय पलटने पर जिस तरह समाज में परिवर्त्तन होता है, उसी तरह परिस्थिति के अनुसार धर्म की मर्यादा में भी परिवर्त्तन किया जाता है और किया जाना चाहिए। उस समय के बुद्धिमान्, विद्वान् श्रेष्ठाचारी महा पुरुष मिल कर धर्म की मर्यादा का समय के अनुसार परिवर्त्तन करते हैं; क्योंकि संसार परिवर्त्तनशील है और सांसारिक व्यवहारों की मर्यादा ही धर्म है, अतएव संसार के परिवर्त्तन के साथ धार्मिक मर्यादा का भी परिवर्त्तन आवश्यक

है। यदि उसमें समयानुकूल परिवर्तन न होकर सतयुग के धर्म ही कलियुग में जारी रक्खे जायँ, तो उस समय के प्रतिकूल होने के कारण उनका पालन होना असम्भव हो जायगा ; और प्रजा को स्वभावतः अधर्म में पड़ना होगा, जिससे समाज की सब व्यवस्थाएँ टूट जाँयगी। कहने का प्रयोजन यह है कि सतयुग आदि के सांसारिक व्यवहारों में और वर्त्तमान कलियुग के व्यवहारों में जमीन-आसमान का अन्तर पड़ गया है, अतएव उस समय की सब व्यवस्थाएँ वर्तमान काल में उपयुक्त नहीं हैं और न उनका पालन ही हो सकता है। उस समय कम उमर की विधवाएँ नहीं होती थीं। यदि कोई होती थीं, तो बहुत करके सती हो जाया करती थी। प्रमाद के कुछ भी साधन नहीं थे। इन्द्रिय-संयम के सब साधन उपस्थित थे। भारतवर्ष में केवल धार्मिक आर्य-जाति ही रहती थी, जिससे किसी प्रकार के दुराचार की आशङ्का न थी, अतएव उस समय यदि कोई विधवा होती, तो उसका इन्द्रिय-निग्रह द्वारा ब्रह्मचारिणी रहना सम्भव था। परन्तु वर्त्तमान समय उसके बिलकुल विपरीत है। लाखों की संख्या में युवती और बाल-विधवाएँ मौजूद हैं। उनकी संख्या बढ़ती ही जा रही है। सती होना बन्द हो गया। मन और इन्द्रियों को चञ्चल करने वाले अगणित साधन मौजूद हैं और दुराचारियों से देश भर गया है। विदेशी और विधर्मी लोग विधवाओं को अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर उनको भ्रष्ट करने के लिए सदा तत्पर रहते हैं; और उनको घर से निकाल कर कुमार्ग में ले जाने और अपने धर्म में मिलाने

को ही अपना परम धर्म समझते हैं। ऐसी अवस्था में पुनर्विवाह और नियोग की सरल एवं उपयोगी मर्यादा की व्यवस्था न कर उनको ब्रह्मचारिणी बने रहने को बाध्य करना ज़बरदस्ती उनसे कुकर्म करवाकर धर्मभ्रष्ट करना है; और उनका लोक-परलोक दोनों बिगाड़ना है।

धर्मराज—सरल और उपयोगी व्यवस्था से आपका क्या प्रयोजन है? क्या मनु की पुनर्विवाह और नियोग सम्बन्धी व्यवस्था आपको मान्य नहीं?

क्षमा—नहीं महाराज! मनु की व्यवस्थाएँ वर्त्तमान युग के लिए पर्याप्त नहीं हैं। मनु में केवल अक्षत-योनि के विवाह की आज्ञा ही है; किन्तु आज इतने से काम नहीं चल सकता। पुत्र-हीना विधवा मात्र के लिए पुनर्विवाह की व्यवस्था होनी चाहिए। मनु में नियोग के लिए घृतादि लेप करना और एक या दो पुत्र उत्पन्न करने के लिए ही नियोग की व्यवस्था है। उनका लक्ष्य केवल प्रजा-वृद्धि पर ही था; पर इस समय इससे काम नहीं चल सकता। विधवाओं के स्वाभाविक वेगों की शान्ति तथा दुष्टों से उनकी रक्षा करने के लिए सदा के वास्ते उनके लिए पति की व्यवस्था करने की आवश्यकता है। जिस तरह कि पुरुष को दुराचार से बचने के लिए पत्नी की आवश्यकता रहती है, उसी तरह स्त्रियों को भी पति की आवश्यकता है। हाँ, पुनर्विवाह और नियोग मृत-पति के सकुटुम्ब, सगोत्र और उसके अभाव में स्ववर्ण के पुरुष के साथ कुटुम्बियों, गुरु-जनों की आज्ञा से होने चाहिए। इस तरह की सुव्यवस्थाएँ

न होने से उनको लाचार होकर विधर्मी और विजातियों से भ्रष्ट होना पड़ता है। वे अपने पाप को छिपाने के लिए गर्भपात और भ्रूण-हत्याएँ करने को बाध्य होती हैं; परन्तु इसमें उनका कुछ भी दोष नहीं है—दोष सब पुरुषों का है, जो उनके लिए समय और परिस्थिति के अनुसार धर्म की व्यवस्थाएँ नहीं बनाते।

कुल-धर्म—हिन्दू-जाति में सबके लिए वे ही प्राचीन धर्मशास्त्र अब तक प्रचलित हैं। क्या पुरुष क्या स्त्री—किसी के लिए भी धर्मशास्त्रों में संशोधन नहीं हुआ; और न कोई नया धर्मशास्त्र ही बना है।

क्षमा—संशोधन क्यों नहीं हुआ? पुरुषों ने अपने मतलब के लिए मनमाने संशोधन एवं परिवर्त्तन कर लिए; परन्तु जब स्त्रियों के मतलब की बात आती है, तो उनके अधिकार छीनने के लिए उन्हीं धर्मशास्त्रों की दुहाई देते हैं। जहाँ उनके अधिकार छीनने में प्राचीन धर्मशास्त्र बाधा डालते हैं, वहाँ अपनी ज़बरदस्ती से नवीन व्यवस्थाएँ भी कर लेते हैं। वास्तव में पुरुषों ने अपना मतलब गाँठने के लिए ही प्राचीन धर्मशास्त्रों को मानने का स्वाँग रच रक्खा है; परन्तु वे उन्हें मानते कुछ भी नहीं। क्या कोई पुरुष, चाहे वह कितना ही धर्मात्मा क्यों न हो, छाती ठोक कर यह दावा कर सकता है कि मैं धर्मशास्त्रों के अनुसार चलता हूँ। मैं यह दावे के साथ कहती हूँ कि आज इस समाज में एक भी पुरुष उन धर्मशास्त्रों की मर्यादा का पूर्णतया पालन नहीं करता। हिन्दू-धर्म का सर्व-प्रधान अङ्ग वर्णाश्रम-व्यवस्था है। क्या कोई

हिन्दू यह निश्चयपूर्वक कह सकता है कि वर्णाश्रम की व्यवस्थाएँ धर्मशास्त्रानुसार चल रही हैं ? कदापि नहीं।

धर्मशास्त्रों में ब्राह्मण के धर्म (मनु० अ० १०, श्लोक ८८) वेद पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान देना और लेना लिखा है; और गीता अध्याय १८, श्लोक ४२ में ब्राह्मण के स्वभावजन्य कर्म शम, दम, तप, पवित्रता, शान्ति, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता वर्णन किए हैं; परन्तु शायद ही कोई ब्राह्मण निकले, जो इन धर्मों का पालन करता हो। इनके विपरीत प्रायः सभी ब्राह्मण करते हैं। इतना ही नहीं, किन्तु इनके लिए जो कर्म निषिद्ध हैं, वे ही अधिकता से किए जाते हैं। मनु० अ० ३, श्लोक १५० से १७० तक जो दोष दिखाए हैं, वे सब इनमें मौजूद हैं। मनु० अ० १०, श्लोक ८६ से ९३ तक आपत्काल में भी जो कर्म ब्राह्मण के लिए निषिद्ध हैं, उनको ही वे लोग करते हैं। शम, दम, पवित्रता, शान्ति, सरलता आदि की तो कथा ही क्या।

इसी तरह क्षत्रियों के लिए मनु० अध्याय १, श्लोक ८९ में प्रजा की रक्षा करना, दान-देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना और विषयासक्त न होना धर्म बताया गया है; किन्तु हो इसके विपरीत रहा है। विधर्मी लोग हिन्दुओं को बहुत ही सताते हैं; पर क्षत्रिय कुछ भी रक्षा नहीं करते। यज्ञ करना और वेद पढ़ना तो दूर रहा, यज्ञोपवीत भी बहुत कम पहनते हैं। विषयों में यहाँ तक आसक्त हैं कि खाने-पीने, ऐश-आराम और वेश्याओं के साथ व्यभिचार करने, शराब, अफ़ीम आदि के नशों में मस्त रहने और

तम्बाकू के धुएँ से बुद्धि को सदा मलीन करने में ही निमग्न रहते हैं।

वैश्यों का कर्त्तव्य (मनु० अ० १, श्लोक ९०) पशुओं की रक्षा, दान देना, विद्याध्ययन, यज्ञ, खेती और व्यापार करना, है; परन्तु पशुओं का रक्षण, विद्याध्ययन और उद्योग-धन्धे छोड़ कर वे लोग जुआ खेलने में निमग्न रहते हैं; और जुए को ही व्यापार कह कर दम्भ करते हैं। यज्ञोपवीत इनका भी प्रायः लुप्त ही है; झूठ, कपट, जाल आदि अन्यायों से धन उपार्जन करने को ही इन्होंने अपना परम धर्म समझ रखा है।

शूद्रों के लिए द्विजातियों की सेवा करना ही धर्म बतलाया है; परन्तु वे लोग अपना धर्म छोड़ कर उच्च वर्णों के कर्म करते हैं।

धर्मराज—इससे तो यह विदित होता है कि चारों वर्णों ने धर्मशास्त्र के अनुसार आचरण करना छोड़ दिया। यह सिद्ध नहीं होता कि इन लोगों ने प्रचीन धर्म की व्यवस्थाओं की जगह नवीन धर्मशास्त्र बना लिए हैं।

क्षमा—महाराज! यदि प्राचीन धर्मों के विपरीत आचरण करने वाले पतित या पापी समझे जाते; और समाज से अलग कर दिए जाते, तब तो यह माना जा सकता था कि इन लोगों ने धर्म की व्यवस्था में परिवर्त्तन नहीं किया; परन्तु यहाँ तो प्रायः सभी समाजों के लोग शास्त्र-विरुद्ध आचरण करते हैं; और वे ही बड़े धर्मात्मा, पूजनीय तथा श्रेष्ठ समझे जाकर आदर पाते हैं। ऐसी

स्थिति में यही मानना पड़ेगा कि उन लोगों ने अपने मतलब के अनुसार प्राचीन धर्म-मर्यादाओं में परिवर्त्तन कर लिया है; और यह परिवर्त्तन सब को मान्य होकर धर्म ही समझा जाने लगा।

चारों आश्रमों की भी यही दशा है। ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ की तो इस युग में आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। गृहस्थाश्रम में पञ्च-महायज्ञ और देव-पितृ—श्राद्धादि धार्मिक कृत्य कुछ भी नहीं होते। पशुओं की तरह खाना-पीना, विषयों को भोगना और सन्तान उत्पन्न करना ही गृहस्थ का परम धर्म हो गया। संन्यास-आश्रम गेरुआ कपड़ा पहनने मात्र से सिद्ध हो जाता है; फिर चाहे वे सब संसार का धन बटोर लें, राजाओं की तरह महल बनवा कर उनमें अमीरी ठाट से सब भोग भोगें; और गृहस्थों की स्त्रियों—विशेष कर विधवाओं के सतीत्व नष्ट करें; इस पर भी वे परमहंस, परिव्राजकाचार्य महात्मा ही समझे जाकर आदर-पूजा प्राप्त करते रहते हैं। अस्तु—

आश्रमों के धर्मों में भी खूब परिवर्त्तन कर लिया गया। षोडस संस्कारों में उपनयन और विवाह के सिवाय अन्य संस्कार या तो लुप्त ही हो गए या उनमें इतना परिवर्त्तन कर लिया गया कि वे संस्कार-रूप में नहीं पहचाने जा सकते। उपनयन-संस्कार क्षत्रिय वैश्यों में तो लुप्तप्राय हो गया है। ब्राह्मण यद्यपि जनेऊ का तागा गले में डाल लेते हैं; परन्तु उसके विधि-नियम कुछ भी पालन नहीं करते। विवाह-संस्कार की यह दशा है कि अधिकांश बालिकाओं के विवाह तो धन के लोभादि से बहुत छोटे बालकों या बूढ़ों के साथ

बेमेल और बेजोड़ होते हैं, जिसका विस्तृत वर्णन मैं पहले कर आई हूँ ; अर्थात् आजकल विवाह प्राचीन धर्मशास्त्र से निश्चित की हुई वर-कन्या की आयु और गुणों की व्यवस्था के विपरीत होते हैं। विवाह के पुण्य-काल में शास्त्रोक्त सात्विक कर्मों के बदले नाच-रङ्ग, भोजन-तमाशे करवाना तथा गालियाँ गाना आदि राजस और तामस कृत्य श्रेयस्कर समझे जाते हैं; और जो प्रतिज्ञाएँ वर-कन्या के बोलने की होती हैं, उन्हें पुरोहित ही पोथी से पढ़ कर ख़तम कर देते हैं। यह विवाह की पद्धति आठ प्रकार के विवाहों में से किसी में भी नहीं आ सकती। अतः यह धर्म की नवीन व्यवस्था ही समझनी चाहिए। इनके अतिरिक्त दस प्रकार का धर्म मनुष्य मात्र के लिए धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित है (देखिए मनु० अ० ६, श्लोक ६२)। उनके विपरीत आचरण करने वाले ही धार्मिक समझे जाते हैं। स्त्रियों के सम्बन्ध में पुरुषों के लिए धर्मशास्त्रों में जो-जो कर्त्तव्य उनकी रक्षा करने और उनको प्रसन्न रखने आदि के रक्खे गए हैं, उनमें भी परिवर्तन कर, स्त्रियों को सदा ताड़ना देना, उन पर अत्याचार करना और उनकी उपेक्षा कर रक्षा के लिए कुछ भी पर्वाह न करना ही धर्म का प्रधान अङ्ग समझा जाने लगा है। जो स्त्रियों पर जितना ही अधिक अत्याचार करे, वह उतना ही अधिक धर्मात्मा समझा जाता है। विशेषकर विधवा स्त्रियों के लिए तो ये लोग यहाँ तक निश्चिन्त हो गए कि लावारिस माल की तरह इनको चाहे जो ले जाय; और इन पर कोई चाहे जैसा अत्याचार करे, कोई सिर उठाने वाला नहीं। यदि किसी भेड़-बकरी का

कोई विधर्मी हनन करे, तो ये नकली धर्म-वीर शोर-गुल मचा कर ज़मीन-आसमान एक कर डालने की बहादुरी का दिखाव करने को तैयार रहते हैं; परन्तु इनकी विधवाओं पर विधर्मी लोग कितने ही अत्याचार करें, कितनी ही भगा ले जायँ, कितनी ही का सतीत्व भ्रष्ट कर गर्भपात कराने में प्राण हर लें; और कितनी को सह-धर्मिणी बनालें; परन्तु उनके बचाव के लिए ये धर्मात्मा (?) लोग चूँ तक करना पाप समझते हैं। महाराज! कुमारी लड़की जब दस-ग्यारह वर्ष की हो जाती है, तो उसका विवाह करने के लिए माता-पिता को इतनी चिन्ता हो जाती है कि रात को नींद भी नहीं आती, भूख हराम हो जाती है; परन्तु जब वही कन्या विवाह होने के थोड़े ही समय बाद इन्हीं की करतूत के फल से पति-संयोग के बिना ही विधवा हो रात को तारे गिनती हुई दुःख-भरी आहों से इनकी जान को रोए, तो पिता को अपनी स्त्री के साथ सोते हुए खर्राटे लेने में कोई बाधा नहीं आती; और न नित नए माल उड़ाने में ही अरुचि होती है। यदि अविवाहित कन्या रजस्वला हो जाय, तो इनके मन में निश्चय ही इनका धर्म भ्रष्ट हो जाता है; और 'अष्ट वर्षा भवेद्गौरी' वाला श्लोक इनकी छाती पर सवार होजाता है; परन्तु वही कन्या विवाह की वेदी से अलग होते ही यदि विधवा हो जाय, तो फिर जन्म भर रजस्वला होती रहे तथा ऋतुकाल ही में गुप्त व्यभिचार कर गर्भपात और भ्रूण-हत्या करती रहे, इनके धर्म को ज़रा भी आँच नहीं आती। जब तक कन्या को किसी के गले डाल कर अपना स्वार्थ सिद्ध नहीं कर लेते, तब तक तो इनको बड़ा ही सङ्कट प्रतीत होता

है ; परन्तु जब एकबार विवाह-रूपी खिलवाड़ कर उसे अपने घर से विदा कर देने का स्वाँग करके निश्चिन्त हो जाते हैं; तब फिर उस पर कैसी भी आपत्ति पड़े, इनको चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं ! एक बार अग्नि के इर्द-गिर्द फेरे देने के बाद यदि वह पति-विहीना हो जाय, तो वह लावारिस माल हो जाती है । फिर उस पर लोग कितने ही अत्याचार करें, चाहे वह दुष्टों की शिकार बन कर कितने ही कष्ट उठाए—अपना धर्म-कर्म गँवा कर लोक और परलोक दोनों बिगाड़ दे, इनकी जाने बला ! मानो उसने इनके उदर में जन्म ही न लिया था । क्या धर्मशास्त्र का यह थोड़ा परिवर्त्तन है ? यही नहीं, पुरुषों द्वारा स्त्रियों के अपमान और स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारका विषय वर्णनातीत है । जो संन्यासी महात्मा समदर्शी अर्थात् प्राणी मात्र को समान रूपसे देखने वाले कहे जाते हैं, वे ही स्त्रियों का अपमान कर उनसे बड़ी घृणा करते है ; मानो वे लोग स्त्रियों के बिना ही संसार में आकाश से उतर आए हैं; तथा बिना स्त्रियों के गृहस्थियों से भिक्षा लेकर क्षुधा की शान्ति करते हैं ।

धर्मराज—संन्यासी लोग स्त्रियों से किस तरह घृणा करते हैं ?

क्षमा—महाराज, महात्मा लोग पुरुषों को तो ज्ञानोपदेश एवं धर्म्म-उपदेश बड़ी प्रसन्नता के साथ देते हैं ; परन्तु यदि कोई विधवा स्त्री दुखी होकर अपने उद्धार के लिए उपदेश सुनने जाय, तो ये लोग उससे मुँह फेर लेते हैं; और घृणा के साथ उसे दूर कर देते हैं । इस बात का वे विचार नहीं करते कि इन दीन-

दुखियों का उद्धार करने के लिए विरक्त संन्यासी-महात्माओं के अतिरिक्त और अधिक सुयोग्य उपदेश कौन दे सकता है ?

धर्मराज—संन्यासी लोग स्त्रियों के साथ वार्तालाप करना इसलिए उचित नहीं समझते होंगे कि कहीं उनका भी मन चञ्चल न हो जाय।

क्षमा—जब ज्ञाननिष्ठ महात्मा लोगों को भी अपने मन की दृढ़ता का विश्वास नहीं; और स्त्रियों को उपदेश देने से भी अपनी इन्द्रियों के निग्रह होने में बाधा पड़ने का भय करते हैं, तो इन अविद्यान्धकार में पड़ी हुई बेचारी विधवाओं का मनोनिग्रह किस तरह होना सम्भव हो सकता है, यह बात वे अपनी छाती पर हाथ रख कर नहीं सोचते। ऐसी दशा में पुरुषों को अहिंसा, दया, परोपकार आत्मौपम्य बुद्धि का उपदेश देते समय क्या इनको यह बात कभी स्मरण नहीं आती कि वे लोग स्त्री-जाति पर, विशेषकर विधवाओं पर अत्याचार करने से बाज आएँ। जो वेदान्त-शास्त्र चींटी से लेकर ब्रह्मा तक प्राणि-मात्र में समदर्शन रखने का उपदेश देता है, क्या वह भी इन अबलाओं के लिए समदर्शन का सिद्धान्त उपयुक्त नहीं समझता ? क्या इन वेदान्ती महात्माओं की दृष्टि में इन अबलाओं का स्थान चींटी और ब्रह्मा के बीच की सृष्टि में कहीं भी नहीं है ? जो अधिकार छोटे से छोटे पशु-पक्षी और कीट तक को प्राप्त हैं, वे भी इनसे छीन लिए जायँ; और वे महात्मा लोग फिर भी पुरुषों को समदर्शी और आत्मौपम्य बुद्धि रखने का उपदेश कर, उन्हें ब्रह्म-निष्ठ

बनाने का प्रयत्न करें। क्या इन श्रुति, स्मृति, उपनिषद् और श्रीभगवद्गीता में इसी प्रकार की साम्य बुद्धि का प्रतिपादन है, जिससे भाई तो खूब माल उड़ाए और बहिन भूख से मारी-मारी भटकती फिरे ? क्या अष्टादश पुराणों में व्यास जी महाराज के "परोपकारं पुण्याय पापाय पर पीडनम्" का यही मतलब है कि एक ही शरीर के दाहिने अङ्ग को तो खूब खिला-पिलाकर मोटा-ताजा किया जाय; और बाएँ को भूख से मार कर तथा ताड़ना दे कर कृश बनाया जाय ? परन्तु आज तो इसी तरह का परोपकार और समदर्शन हो रहा है; और जो संन्यासी लोग निस्वार्थ और निर्भय एवं पक्षपात-रहित होने का दावा करते हैं, वे इन अत्याचारों के विरुद्ध एक शब्द भी उच्चारण नहीं करते। यही नहीं, किन्तु उलटे उनकी पुष्टि करते हैं; और जिन गृहस्थियों के घर में स्त्रियों पर ये अत्याचार प्रसिद्ध रूप में हो रहे हैं, उनके यहाँ भिक्षा लेने में उनको कुछ भी ग्लानि नहीं होती, वे गृहस्थ लोग बड़े सत्सङ्गी और सदाचारी समझे जाते हैं। यद्यपि धर्मशास्त्र का कथन है कि जिस घर में स्त्रियाँ दुखी होती हैं, उस घर में देवता निवास नहीं करते, इस पर भी अधिकतर संन्यासी लोग स्त्री-जाति को घोर निन्दित, हीन एवं पाप-योनि बता कर पुरुष-जाति में उनके प्रति घृणा उत्पन्न करते रहते हैं; और अनेक पुरुषों को स्त्रियों के दोष दिखा-दिखा कर घर-बार छुड़ा संन्यासी बना देते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि उनकी स्त्रियाँ अनाथ होने से अरक्षित हो जाती हैं; और वे कच्चे नव-संन्यासी इन्द्रियों का

निग्रह करने में असमर्थ हो अन्य गृहस्थियों की स्त्रियों से कुकर्म करते हैं।

इस प्रकार सब वर्ण और आश्रमों ने प्राचीन धर्मशास्त्र की मर्यादाओं का परिवर्त्तन कर अपने-अपने मन के अनुकूल प्राचीन शास्त्रों के विरुद्ध नवीन मर्यादाएँ बाँध लीं हैं; और इन मर्यादाओं से चलने वाले समाज में बराबर आदर-सत्कार पाते हैं; परन्तु स्त्रियों के सुख-दुख की ओर कोई भी कुछ ख़्याल नहीं करता। यदि कोई कभी साहस कर इस विषय पर कोई सवाल करता है, तो वही प्राचीन धर्मशास्त्र के दो-चार श्लोकों के अर्थों की खींचातानी कर प्रमाण दे देते हैं—सवाल काट देते हैं। निर्णय हो जाता है कि इनके विषय में ईश्वर की यही अटल आज्ञा है, उसमें कुछ भी परिवर्त्तन होना महा पाप है। पुरुष विवाहिता स्त्री की मौजूदगी में भी चाहे जितनी स्त्रियों का धर्म भ्रष्ट करे, वह धर्माचार्य एवं विद्वद्वर्य ही बना रहेगा; चाहे वह कैसा ही वेश्यागामी, दुराचारी, झूठा एवं फ़रेबी हो वह "जातिरत्न" "कुल-भूषण" आदि की उपाधियों से शोभित ही रहता है। वह जितनी अधिक विधवाओं को बिगाड़ता है, उतनी ही अधिक कीर्ति पाता है। विधवा स्त्री को स्वयं बिगाड़ कर उसको दुराचारिणी और कुलकलङ्किनी भी आप ही बताता है; और विधवा-विवाह एवं नियोग का विरोध कर धर्मध्वजी बनने की वाहवाही भी लूटता है (देखिए मनोरमा का बयान)।

पुरुष विधर्मी वेश्याओं को रखैल रख कर धन और धर्म को बर्बाद करता है, अपनी पतिव्रता स्त्री के ज़ेवर उतार कर वेश्या को दे देता है। यदि स्त्री ज़ेवर देने में आना-कानी करती है या वेश्या को छोड़ने की प्रार्थना करती है, तो उसको मारता-पीटता है। यहाँ तक कि इस अत्याचार से स्त्री की हत्या भी हो जाती है। फिर भी पुरुष के धर्मात्मापन में कुछ भी कमी नहीं आती। हाय, कैसा एकतरफ़ा धर्म है कि अपनी पशुवृत्तियों का पोषण करने के लिए चाहे-जैसे अत्याचार-युक्त नियम बना कर उन्हें धर्म निश्चय कर लिया जाय; और इन अबोल तथा अबोध अबलाओं के जन्म-सिद्ध अधिकारों का गला घोंटने में कुछ भी त्रास न खाकर पशुओं से भी गई-गुजरी दशा में रखना ही धर्म समझा जाय। ऊपर से तुर्रा यह कि आप ही इन पर ज़ुल्म करके कलङ्कित करे और फिर बदनामी भी उन्हीं के सिर मढ़े।

कुल-धर्म—क्या पुरुष विधवा स्त्रियों को जान-बूझ कर बिगाड़ते और बदनाम करते हैं?

क्षमा—जी हाँ, हिन्दू-गृहस्थ की स्त्री चाहे कितनी ही निधन तथा हीन जाति की और आपद्-ग्रसित क्यों न हो—चाहे वह दुश्चरित्रा ही क्यों न हो तो भी वह अपनी तरफ़ से अग्रसर होकर किसी पुरुष के साथ कभी छेड़-छाड़ नहीं करती। भले ही वह पुरुष कितना ही धनी, प्रतिष्ठित, चतुर बलवान्, बुद्धिमान्, रूपवान्, प्रभावशाली और चपल क्यों न हो; और चाहे धर्म तथा कुल की मर्यादा से समाज में कितना ही ऊँचा क्यों न हो; परन्तु पुरुष यदि इन सब

गुणों से सम्पन्न हो और स्त्री केवल रूपवती ही हो, तो भी पुरुष उसके साथ मौक़ा मिलने पर छेड़-छाड़ करने में कुछ लज्जित नहीं होता, और पाप-दृष्टि तो उसके मन में प्रायः बनी ही रहती है। अस्तु, विधवा स्त्रियाँ जितनी बिगड़ती हैं, वे सब पुरुषों ही के अत्याचार से। यद्यपि स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा कई गुना अधिक काम-देव कहा जाता है; और उसको रोकने तथा शान्त करने का उनके पास ज़रा सा भी साधन नहीं होता; प्रत्युत उसे बढ़ाने वाले संसार के सब सामान मौजूद रहते हैं; तो भी वे अपनी स्वाभाविक सहनशीलता और लज्जा के कारण अपने मन की इच्छा प्रकट करके कदापि निर्लज्जता नहीं दिखातीं। पुरुषों के अनेक विवाहित तथा वेश्याएँ आदि स्त्रियाँ भोगने के लिए मौजूद होते हुए भी वे बेचारी विधवाओं के साथ छेड़-छाड़ कर के उनके दबे हुए काम को सुलगा कर उनका सर्वनाश कर डालते हैं; और जब उनके गर्भ रह जाता है, तो उसे घोर दुख-सागर में गोता देकर कुलटा होने का कलङ्क लगाते हैं; और आप बड़े धर्मात्मा, धर्माचार्य-शिरोमणि, धर्म की मूर्ति, परोपकारी और पुण्यात्मा ही बने रहते हैं। वे बेचारी असहाय, अनाथ अबलाएँ अपने खोटे नसीबों पर रोती हुई छिपे-छिपे गर्भपात के प्रयत्न कर महा विपत्ति उठाती हैं; और कभी-कभी उसमें प्राण भी दे बैठतीं है, आत्म-हत्या भी कर लेती है। फिर भी मुँह से चूँ तक नहीं निकालतीं; क्योंकि उनको जन्म से ही यह दृढ़ विश्वास करा दिया जाता है कि तुम्हारे लिए ईश्वर ने दुख ही बनाया है। उन्हें किसी

प्रकार की शिक्षादि नहीं दी जाती, न कोई उनको अपने आपे का ज्ञान ही सुझाया जाता है। अतएव वे इसी अन्ध-विश्वास एवं अज्ञानान्धकार में पड़ी हुई अपना यह लोक और परलोक दोनों बिगाड़ती हैं।

जाति-धर्म—अव तो स्त्रियों की शिक्षा का प्रबन्ध हो गया है और कन्या पाठशालाएँ भी खुल गई हैं।

क्षमा—जी हाँ, ये कन्या-पाठशालाएँ और विदेशी ढङ्ग की स्त्री-शिक्षा अग्नि में घृत की तरह दुराचारों को बढ़ाने में सहायक होती हैं। इस ढङ्ग की अधिकांश पाठशालाओं में पढ़ाया क्या जाता है? वही गद्य-पद्य लिखना-पढ़ना तथा कुछ हिसाब। इसके सिवाय किसी तरह की धर्म-शिक्षा, कर्त्तव्य-शिक्षा या सदाचार-शिक्षा का कुछ भी प्रबन्ध नहीं। नतीजा यह होता है कि अनेक प्रकार के चरित्र बिगाड़ने वाले क़िस्से और कहानियाँ तथा प्रेम के उपन्यास और सामाजिक दुश्चरित्रों के वर्णन एवं इश्क़ की कविताएँ पढ़ने में ये लोग समय बिताती हैं और अपने मन को चञ्चल तथा कलुषित करती हैं (सुशीला के बयान देखिए)। उनकी विषय-वासनाएँ बहुत बढ़ जाती हैं; और कुकर्म करने के साधनों और उपायों को सोचने और उनको काम में लाने में प्रवीण हो जाती हैं। कहीं-कहीं पाठशाला की शिक्षिकाएँ हीन-आचरणों की युवतियाँ होती हैं, जो अपने प्रेमियों के साथ पत्र-व्यवहार करती रहती हैं; और उनके दुष्ट-चरित्र के पत्र-व्यवहार आदि की शिक्षा बालिकाएँ भी प्राप्त करती हैं। नतीजा यह होता है कि बाल्यावस्था

के संस्कार युवा होने पर विकसित होकर बहुत शोचनीय रूप धारण करते हैं; और दुर्भाग्यवश विधवा हो जाने पर तो उनका परिणाम घोर भयङ्करता को पहुँच जाता है। सुख, शान्ति और सदाचार में जीवन बिताने वालों के लिए साक्षर होना जितना लाभदायक होता है, उतना ही विपत्ति आने से दुराचार में पड़ जाने पर वह महा हानिकारक हो जाता है; और उस दशा में "साक्षर" शब्द उलट कर "राक्षस" का काम देने लगता है।

इससे मेरा यह प्रयोजन नहीं है कि स्त्रियों को लिखना-पढ़ना न सिखाना चाहिए। मैं तो स्त्रियों का लिखना-पढ़ना अत्यन्त आवश्यक समझती हूँ; परन्तु लिखने-पढ़ने के साथ उनको सदाचार, धर्म और गृहस्थी की सुशिक्षा उससे भी अधिक आवश्यक है। स्त्री-जाति का और ख़ास कर विधवाओं का दुःख केवल वर्तमान ढङ्ग की शिक्षा-प्रणाली से—पढ़ने मात्र से नहीं मिट सकता; उसके लिए पुरुष-समाज को अपनी नीति बदलने की आवश्यकता है। यही मेरे कथन का प्रयोजन है।

जाति-धर्म—इन दिनों जाति-सुधारक संस्थाओं का लोगों में ख़ूब प्रचार हो गया है, जो बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बेजोड़ विवाह आदि कुप्रथाओं को बन्द करने का प्रयत्न कर रही हैं, जिससे भविष्य में विधवाओं की संख्या नहीं बढ़ेगी और जो विधवाएँ वर्तमान में हैं, उनके लिए विधवा-आश्रम आदि द्वारा इनको सुरक्षित रखने के प्रबन्ध कर रहे हैं। इससे सिद्ध होता है कि समाज के बुद्धिमान् लोग विधवा-विवाह एवं नियोग को हितकारी और उपयुक्त

न समझ कर उपरोक्त उपायों द्वारा ही इनके कष्ट निवृत करना श्रेयस्कर समझते हैं। ऐसी दशा में आपका विधवा-विवाह और नियोग का प्रतिपादन करना और उस पर ज़ोर देना उचित प्रतीत नहीं होता।

रमा—महाराज! क्या आप समझते हैं कि बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह आदि बन्द हो जायँगे? कदापि नहीं। ये सभा-संस्थाएँ केवल प्रस्ताव ही पास कर सकती हैं, उनके अनुसार कार्य कुछ भी नहीं कर सकतीं। इसलिए यद्यपि बहुत सी सभाओं ने बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह रोकने के प्रस्ताव पास करके अपने जाने सफलता प्राप्त कर ली; परन्तु वे कुरीतियाँ अभी तक कुछ भी नहीं रुकीं—ज्यों की त्यों मौजूद हैं। अभी तक दो-दो चार-चार वर्ष की लड़कियों के विवाह उसी तरह हो रहे हैं; और दस-ग्यारह वर्ष तो लड़कियों के विवाह की परम सीमा ही है। चाहे ये सभाएँ कितने ही प्रस्ताव पास क्यों न कर लें, उनका फल कुछ भी न होगा; क्योंकि प्रचलित रिवाजों में परिवर्त्तन करना केवल पुरुषों के हाथ में है; और जो रिवाजें पुरुषों के लिए कष्टदायक एवं असुविधाजनक हों या उनके स्वार्थ में बाधा देती है, उनको वे स्वयं ही बदल लेंगे; किन्तु जिन रिवाजों से प्रत्यक्ष में उनको कोई कष्ट न हो; भला उनको परिवर्त्तन करने का वे परिश्रम क्यों करने लगे। जब एक साथ दो-चार विवाह करने से ख़र्च की किफ़ायत होती है, तो चार वर्ष और आठ दस वर्ष की लड़कियों का एक ही लग्न में विवाह करने में उनके नज़दीक क्या हानि

है। अगर उनमें से कोई पीछे विधवा हो जाय, तो फूटे उसके कर्म ! अस्तु—

जिन रिवाजों के परिवर्त्तन से पुरुषों के स्वार्थ में ज़रा भी हानि पहुँचने की सम्भावना प्रतीत होती है, उनमें ये सभाएँ कदापि परिवर्त्तन नहीं कर सकतीं। थोड़ी देर के लिए मान भी लें कि ये लोग इन सभाओं के प्रस्ताव के अनुसार बर्ताव करने लगे, तो भी क्या होगा ? बड़ी से बड़ी हिन्दू-सभा ने लड़की की विवाह के योग्य उमर बारह वर्ष निश्चित की है; और इससे आगे इस समाज में वर्त्तमान समय में बढ़ भी नहीं सकती; क्योंकि इस समाज के रहन-सहन, रीति-रिवाज और आहार-विहार की परिस्थिति इस ढङ्ग की है कि बालक-बालिकाओं की छोटी अवस्था में ही पशु-व्यवहार की तरफ़ प्रवृति हो जाती है। बचपन ही में वे इसी प्रवृत्ति के खेल खेलती हैं (राधा का बयान देखिये)। घर में अपने बड़ों तथा अन्य लोगों के इसी तरह के व्यवहार-देखती हैं और कुसङ्ग के कारण इसी विषय की बातें सुनती हैं; अतएव ज्यों ही युवावस्था के आगमन के चिह्न आरम्भ होते हैं, त्योंही इन लोगों में कुचेष्टाएँ होने लगती हैं; और यदि बारह-तेरह वर्ष से अधिक बालिका और सत्रह-अठारह वर्ष से अधिक बालक कुवाँरा रक्खा जाय तो उसके दुश्चरित्र होने की आशङ्का होने लग जाती है। ऐसी स्थिति में बारह वर्ष से ऊपर की कन्या को अविवाहित रखने का कोई साहस नहीं कर सकता। अस्तु। सभा-सोसाइटियाँ यदि बाल-विवाह बन्द करने में

सफलता प्राप्त कर भी सकें, तो वे ग्यारह-बारह वर्ष से कम उमर के ही बाल-विवाह बन्द करा सकेंगी, इससे अधिक नहीं।

बाल-विवाह की प्रथा भारत में मुसलमानों का राज्य होने पर उनके अत्याचारों तथा उनके सहवास से अनेक हिन्दुओं के भी भाव दूषित हो जाने के कारण प्रचलित की गई थी और वे ही कारण अभी तक मौजूद ही नहीं, किन्तु विशेप प्रबलता पकड़ रहे हैं; क्योंकि हिन्दू-स्त्रियों पर मुसलमानों का अत्याचार अब भी जारी है; और हिन्दू लोग उनकी रक्षा करने में अधिक निर्बल हो गए हैं। विधर्मियों और विदेशियों के सहवास से बालक-बालिकाओं में विलासिता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, अतएव युवा अवस्था प्राप्त बालिकाएँ यदि अविवाहित रक्खी जायँ, तो कुवाँरियों पर अत्याचार होने लग जायँगे, जिससे समाज की और भी अधिक दुर्दशा होगी; जैसी कि उन समाजों की हो रही है, जिनमें युवतियाँ क्वाँरी रहती हैं। अस्तु—

बारह-तेरह वर्ष से ऊपर की कन्याओं का अविवाहित रहना अशक्य है। अतएव बारह वर्ष से अधिक उमर की स्त्रियों के विधवा होने की जोखिम तो कभी मिट ही नहीं सकती। यदि लड़के को अठारह वर्ष की उमर तक अविवाहित रक्खा जाय, तो उसका भी ब्रह्मचर्य अखण्डित रहना निश्चित नहीं हो सकता। क्योंकि समाज की वर्त्तमान परिस्थिति में ब्रह्मचर्य के खण्डित होने के अप्राकृतिक और प्राकृतिक अनेक प्रकार के साधन प्रचलित हैं; और जिन लोगों ने इस विषय में जाँच की है, वे इस

बात को स्वीकार करते हैं, जिसके प्रमाण-भूत अनेक पुस्तक भी मौजूद हैं। कहने का प्रयोजन यह है कि जब तक समाज की वर्त्तमान स्थिति बनी रहेगी, बाल-विवाह का रुकना और ब्रह्मचर्य की रक्षा होना असम्भव है। साथ ही सब समाज की परिस्थिति को बदलना वर्त्तमान समय में असम्भव नहीं तो महान् कठिन अवश्य है। इसी तरह वृद्ध-विवाह भी नहीं रुक सकते।

विवाह के सम्बन्ध में वृद्धावस्था केवल वर्षों के ही लिहाज़ से नहीं; किन्तु शारीरिक बल के लिहाज़ से अवस्था का निर्णय होना चाहिए। जिसके शरीर में बल हो, वह यदि पचास वर्ष की अवस्था में भी विवाह करे, तो उसके अनेक सन्तान हो जाती हैं; परन्तु निर्बल शरीर वाला पुरुष पचीस वर्ष की आयु में विवाह-योग्य नहीं रहता। समाज की वर्त्तमान स्थिति के अनुसार जब बीस वर्ष की आयु में धातु क्षीण होकर शरीर निर्बल और शिथिल हो जाता है, तो वह वृद्धों की गणना में आना चाहिए या युवाओं की? सभाएँ विवाह-योग्य आयु पैंतीस और चालीस वर्ष के अन्दर की निश्चय करती हैं; और उपरोक्त कथनानुसार जब पचीस-तीस वर्ष के पुरुष को ही वृद्धावस्था धर दबाती है, तो वृद्ध-विवाह रुक ही कैसे सकता है? सभाओं या सामाजिक नियमों से वृद्ध-विवाह कभी न रुकेंगे; क्योंकि वृद्ध-विवाह धनियों के होते हैं। धन पर पुरुष का स्वतन्त्र अधिकार है। वह चाहे जैसे उसको खर्च कर सकता है; और धनका लोभ किसी से छुड़ा देना असम्भव है! यदि समाज वृद्ध-विवाह करने वाले को बहिष्कृत करेगा, तो

समाज के दो टुकड़े भले ही हो जायँ, परन्तु वृद्ध-विवाह सर्वथा नहीं रुक सकते। यदि कुछ वृद्ध-पुरुष समाज के भय से विवाह न भी करें, तो वे व्यभिचार करेंगे; क्योंकि जिनके शरीर में शक्ति है, धन है तथा स्वाधीनता है, वे इन्द्रिय-निग्रह से रहें, यह आशा करना दुराशा मात्र है। ऐसी स्थिति में समाज में व्यभिचार और उच्छृङ्खलता और भी अधिक बढ़ेगी। यदि वृद्धों का कुमारियों से विवाह न होना ही अभीष्ट हो, तो उसका एक मात्र उपाय यही है कि उनके लिए विधवाओं के साथ पुनर्विवाह या नियोग करने का विधान किया जाय; नहीं तो यदि जबरदस्ती उनको रँडुवा रखने का उद्योग किया जायगा, तो उसका नतीजा भी उतना ही भयङ्कर होगा, जितना कि विधवाओं के आजन्म विधवा रखने का हो रहा है। कहने का सारांश यह है कि बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह रोकने के आन्दोलन से विधवा होना बन्द नहीं हो सकता। पिछली कई पुश्तों से आई हुई माता-पिता के शरीर की निर्बलता और उससे उत्पन्न होने वाले रोग-दोष वर्त्तमान सन्तान के शरीर में मौजूद हैं। कलकत्ता, बम्बई आदि नगरों में आयु को क्षय करने वाले रहन-सहन, खान-पान और दुर्व्यसन अनेक प्रकार की बीमारियाँ पैदा कर रहे हैं; और हैजा प्लेग, इनफ्लुएञ्जा, निमोनिया आदि महा भयानक रोग इन लोगों को अपना शिकार बनाए बैठे हैं। इनके अतिरिक्त अन्य आकस्मिक दुर्घटनाएँ भी वर्त्तमान समय में कम नहीं होतीं। अतएव यदि यह मान भी लिया जाय कि बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह आदि रुक जायँगे तथा

बालकों का ब्रह्मचर्य अखण्डित रख लिया जायगा, तो भी उपर्युक्त कारणों से कम उमर की मृत्यु-संख्या सर्वथा बन्द नहीं हो सकती। विधवाओं का क्लेश मिटाने के लिए केवल बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह रोकने का प्रयत्न करना एक भयङ्कर अग्नि-काण्ड होने के समय उसके बुझाने के लिए तीन सौ फ़ीट गहरा कुँआ खोद कर पानी निकालने का प्रयत्न करना है। जब तक तीन सौ फ़ीट ज़मीन खोद, फिर उस कुएँ को पुख्ता बाँध कर पानी निकाले, तब तक वह प्रचण्ड अग्नि-काण्ड सब संसार का प्रलय कर डालेगी। इसी तरह बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह को रोक कर उससे होने वाली भलाई की प्रतीक्षा में प्रति दिन बढ़ती हुई विधवाओं की दुःख-भरी आहों की ज्वालाग्नि इस समाज का भी प्रलय कर डालेगी। वास्तव में बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह का रोकना बहुत अच्छा और जाति-हितकर सुधार है और वह अवश्य होना चाहिए; परन्तु विधवाओं के सम्बन्ध की जटिल समस्याओं को हल करने में केवल यही सर्वथा पर्याप्त नहीं है।

शेष रही विधवा-आश्रमों की व्यवस्था, सो विधवाएँ भेड़, बकरी, कुत्ते आदि जानवर नहीं हैं कि इनको किसी चहारदीवारी में बन्द रख कर उत्पात से रोका जाए। विधवा स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह प्राकृतिक नियमों में बँधी हुई ज्ञानवान् एवं बुद्धिमान् निर्दोष प्राणी हैं और निरुपद्रवी भी हैं। इनको किसी स्थान में बन्द कर सांसारिक सुखों से वञ्चित रखने का कोई न्याय-सङ्गत प्रयोजन समझ में नहीं आता। अगर इनको व्यभिचार से बचाने

ही के लिए विधवा-आश्रम की आवश्यकता हो, तो मैं समझती हूँ कि उन दुष्ट अत्याचारी एवं व्यभिचारी पुरुषों को एकत्र कर किसी चौभीते में बन्द कर रखना चाहिए, जो इन बेचारियों का सतीत्व नष्ट कर जीवन भ्रष्ट करते हैं, न कि इन निर्दोष अबलाओं को। इन दुराचारियों को रँडुआ-आश्रम में बन्द किए जाने से इन अबलाओं की स्वयं रक्षा हो जाएगी और विधवा-आश्रम खोलने का परिश्रम भी न करना पड़ेगा।

क्या आवश्यकता है कि विधवाओं को उनके शारीरिक वेगों को शान्त करने के लिए पुनर्विवाह एवं नियोग करने का अवसर न देकर विधवा-आश्रमों में बन्द किया जाय? और रँडुए खुले विचरते हुए क्वारी बालिकाओं से विवाह कर उनको विधवा बनाते रहें। उनके लिए रँडुआ-आश्रम खोल कर उनमें इनको क्यों न ठूँस दिया जाय?

जाति-धर्म—देवी, जो विधवाएँ दीन एवं अनाथ होती हैं, उनके उदर-पोषण के लिए एवं धर्म से सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए विधवा-आश्रम खोले जाते हैं, न कि उनको क़ैद रखने के लिए।

क्षमा—महाराज, अपना उदर तो कीड़े-मकोड़े भी भर लेते हैं, तो क्या दो हाथ और दो पैर वाली स्त्रियाँ अपना उदर भरने में असमर्थ रहेंगी? ईश्वरने जिसे चोंच दी है, उसे चून ज़रूर देता है। चाहे भूख से भले ही मर जाय; परन्तु उदर के लिए हिन्दू-विधवा अपना धर्म कभी नहीं बेचती। यह स्त्री-जाति पर एक बड़ा लाञ्छन

लगाना है कि विधवा स्त्रियाँ भूख के कारण कुकर्म करती हैं। पुरुषों की कुटिलता तथा मिथ्याभिमान है कि वे स्त्रियों को इतना हीन बता कर आप उनका संरक्षण करने का ढोंग रचते हैं। जो समय इनकी रक्षा करने का होता है, उसमें तो अपना कर्त्तव्य पालन नहीं करते और विधवा होने पर इनको बन्द करने का प्रबन्ध करते हैं। उच्च हिन्दू-कुल में उत्पन्न हुई ऐसी कोई भी स्त्री न मिलेगी, जिसने केवल भूख के कारण सतीत्व बेचा हो। हाँ, काम के वेग से सताई हुई तथा अपने स्वजनों के अत्याचार से पीड़ित हुई कई विधवा स्त्रियाँ व्यभिचारियों के अनेक प्रकार के भोग-विलासादि के प्रलोभनों में फँस कर धर्म बिगाड़ देती हैं। वे विधवा-आश्रमों में बन्द होकर यावज्जीवन ब्रह्मचर्य पालन करती हुई आयु बिताना कभी पसन्द नहीं करेंगी। विधवा-आश्रमों में उनकी भूख की ज्वाला शान्त हो भी जायगी, तो भी उनके काम की ज्वाला ज्यों की त्यों बनी ही रहेगी; बल्कि और अधिक बढ़ेगी; क्योंकि भूखे मरने से इन्द्रियाँ शिथिल होती हैं। अकाल के समय जन्म-संख्या बहुत कम हो जाया करती है; परन्तु खाने को भर पेट मिल जाता है, तब इन्द्रियों में अधिक जाग्रति होती है। काम का वेग भूख के वेग से अधिक प्रचण्ड होता है। मेरे इस कथन से विधवा-आश्रमों तथा वनिता-विश्रामों की आवश्यकता तथा उपयोगिता कम करने का प्रयोजन नहीं है; किन्तु मैं इन संस्थाओं को अनाथ, असहाय, अत्याचार-पीड़ित दीन अबलाओं के आश्रय तथा रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक समझती हूँ। मेरा कहना यह है कि विधवाओं के

कष्ट का प्रश्न इन आश्रमों के स्थापित होने से ही कदापि हल न हो सकता। जो विधवाएँ धनाढ्य है तथा जिनके पास खाने के पर्याप्त हैं वे विधवा-आश्रमों में कदापि भर्ती न होंगी। जब तक एक पुरुष के साथ विधिपूर्वक स्थायी सम्बन्ध करवाने का सुप्रबन्ध न किया जायगा, तब तक विधवाओं को वास्तविक सुख कदापि नहीं मिल सकता। जानवर-खानों के पिंजड़ों में भी पशु-पक्षियों के जोड़े रक्खे जाते हैं। फिर विधवाओं को पुरुषों के बिना प्रकृति के विरुद्ध आश्रमों में घेरे रखने से उसमें कभी सफलता नहीं हो सकती। परदों के अन्दर पहरे लगाकर रक्खी हुई बड़े-बड़े रईसों की स्त्रियाँ तक पुरुषों के सहवास से नहीं बच सकतीं, तो साधारण प्रबन्ध के विधवा-आश्रमों में जहाँ कि अधिकतर प्रबन्ध-कर्ता पुरुष ही होते हैं, विधवाएँ अखण्ड ब्रह्मचारिणी बनी रहेंगी, इसका भी कोई निश्चय नहीं। सारांश यह कि विधवा-आश्रमों से विधवाओं की दुखों और अत्याचारों से मुक्ति नहीं हो सकती।

विधवाओं पर होने वाले अत्याचार और कष्ट पुनर्विवाह और नियोग की सुव्यवस्थाएँ होने ही से मिट सकते हैं, अन्यथा नहीं। जब तक ये सुव्यवस्थाएँ न कर दी जायँ, तब तक विधवाओं से विवश होकर किए जाने वाले कुकर्मों तथा हत्याओं के दोष के भागी पुरुष ही समझे जाने चाहिए, स्त्रियाँ कदापि नहीं ; और इन अपराधों का दण्ड भी पुरुषों को ही दिया जाना चाहिए, स्त्रियों को नहीं !

कुल-धर्म—यदि पुनर्विवाह और नियोग ही इन कुकर्मों को मिटाने के उपाय हैं, तो सभाएँ यह व्यवस्था क्यों नहीं करतीं ?

क्षमा—महाराज, ये सभाएँ सब पुरुषों ही की हैं, स्त्रियों की एक भी नहीं। न तो पुरुष स्त्रियों को इस योग्य बनाते हैं कि वे एकत्र होकर अपनी भलाई का विचार करें और न स्वयं वे स्त्रियों के दुखों के निवारणार्थ ही वास्तविक चिन्ता करते हैं। ये लोग तो अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए तथा अपनी असुविधा दूर करने के लिए और सभ्य-समाज में कुछ नाम पैदा करने के लिहाज से सभाओं में एकत्र हो, व्याख्यानबाजी कर लेते हैं और खर्च की बचत आदि का कुछ प्रबन्ध भी कर लेते हैं। विदेशी और विधर्मी लोगों को यह दिखलाने के लिए कि हम अपनी स्त्रियों को सुधारने का प्रयत्न भी करते हैं, बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह रोकने तथा विधवा-आश्रम खोलने और लड़कियों को शिक्षा देने आदि के निरर्थक और केवल थोथे दिखावे मात्र के प्रस्ताव पास कर देते हैं। वास्तव में किसी के दिल के अन्दर चोट तो होती नहीं। "जाके पाँव न फटी बेवाई, सो क्या जाने पीर पराई"—बाँझ स्त्री जन... की वेदना को नहीं समझ सकती, इसी तरह इन लोगों के म... में विधवाओं के दुख का असर कैसे हो सकता है? हाँ, यदि ... चार सहृदय सज्जनों के दिल में इन पर कुछ करुणा आती भी ... तो उनमें आत्म-बल नहीं कि सब समाज के सम्मुख बेधड़क इ... पक्ष लेकर अपना कर्त्तव्य पालन करें। सभा वालों को सिर्फ़ ... ख्याल रहता है कि वहाँ कोई विवाद खड़ा न हो और यह तम... निर्विघ्न समाप्त हो जाय; ताकि संसार के सम्मुख सभा... सफलता की दुन्दुभी पीटी जाय। इसलिए वे ऐसे पुरुषों को

उपस्थित नहीं होने देते, जो एकत्र हुए स्वार्थी लोगों के सम्मुख इन अबलाओं का दुखड़ा रोएँ। वास्तव में ये सभाएँ सच्ची जाति-हितकारी संस्थाएँ नहीं होते; किन्तु वर्त्तमान समय के अनुसार सुधरे हुए लोगों के स्वार्थ-साधन और कीर्ति-सम्पादन के लिए ढकोसला हैं।

जाति-धर्म—इन लोगों का कथन है कि पुनर्विवाह और नियोग के प्रचार होने से समाज में अनेक प्रकार की बुराइयाँ उत्पन्न हो जायँगी, जिससे उसकी उन्नति के बदले अधःपतन होगा; क्योंकि स्त्रियों के दिल में पति-भक्ति, पति-प्रेम बिलकुल न रहेगा, जिससे गृहस्थाश्रम बिगड़ जायगा और स्त्रियाँ स्वतन्त्र हो जायँगी, पति-परित्यक्त होने लगेंगे और व्यभिचार बढ़ेगा।

क्षमा—जो लोग अत्यन्त स्वार्थी हैं, उनको दूसरों के उचित अधिकार देने में भी अपने स्वार्थों की हानि दिखाई देती है। विधवा-विवाह और नियोग का प्रचार होने से स्त्रियों में पति-प्रेम और पति-भक्ति घटने का इनको भय है; परन्तु क्या वे लोग यह दावा करते हैं कि वर्त्तमान समय में उनके प्रति स्त्रियों का सच्चा प्रेम और सच्ची भक्ति है? कदापि नहीं। जो मनुष्य दूसरों पर अत्याचार है, क्या वह उनसे सच्चे प्रेम और भक्ति की आशा है? सच्चा प्रेम उन्हीं में हो सकता है, जिनका एक समान हो और जो एक-दूसरे के सुख-दुख सुख-दुख समझें; मरने-जीने में साथ देने को सच्ची भक्ति उसी के प्रति होती है, जो अपने और दया का बर्ताव रखता हो। यहाँ

पुरुष निरङ्कुश राजा हैं और स्त्रियाँ वन्दीगृह की क़ैदी। पुरुष को दुख पड़े। तो स्त्रियों को विवश होकर दुखी होना पड़े; और स्त्रियाँ दुखी हों, तो पुरुष मौज उड़ाते फिरें। पुरुष यदि बीमार हो, तो स्त्री को उसकी टहल करने में खाना तक भी नसीब नहीं होता; और स्त्री यदि बीमार पड़े, तो पुरुष एक के बदले अनेक स्त्रियाँ भोगे और उसके मरने की बाट देखते हुए नई दुल्हिन व्याहने को उत्साहित हो। यदि पुरुष मर जाय, तो स्त्री जन्म भर अपने नसीब को रोती और ईश्वर को गालियाँ देती हुई घर के एक कोने में क़ैदी की तरह जीवन व्यतीत करे; और स्त्री मर जाय तो उसके मृत-संस्कार समाप्त होने के पहले ही विवाह-सगाई के ठहराव होने लग जायँ। इस तरह की परिस्थिति में कहाँ का प्रेम, कहाँ की भक्ति? यह जो दिखावे का प्रेम और पति-भक्ति प्रतीत होती है, वह अधिकतर भय और स्वार्थ के कारण बनावटी ढोंग मात्र है। यदि स्त्री पति की आज्ञा में न चले, तो डण्डे खाय और प्रेम न रक्खे तो सब विषय-भोगों से वञ्चित हो जाय और तुरन्त ही दूसरी सौत आ जाय। सम्भव है कि विषय-भोगादि वा इच्छित वस्तुओं के प्राप्त होने के लोभ के कारण तत्कालिक प्रेम पैदा हो जाय; परन्तु यह स्वार्थ से भरा हुआ प्रेम तभी तक रहता है, जब तक स्वार्थ प्राप्त होता रहे। जहाँ स्वार्थ गया, प्रेम भी टूटा। इस प्रेम के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह विवाहित पति से ही हो; किन्तु जार के साथ भी स्वार्थ का प्रेम, उतना ही हो सकता है।

जब पति का प्रेम स्त्री के साथ स्वार्थ का ही होता है अर्थात् वह रूप-यौवन आदि गुणों से सम्पन्न हो और उसकी आज्ञा में चलती हो। तो पति का उसके साथ प्रेम होता है, जब रूप-यौवन नहीं रहता और वह उसके अनुकूल बर्ताव नहीं करती, तो सब प्रेम काफूर हो जाता है और स्त्री के मरने पर तो पति में प्रेम-भाव का लेश मात्र भी नहीं रहता, तब सम्भव नहीं कि स्त्री का पति के प्रति सच्चा तथा निस्वार्थ प्रेम हो, यह बात प्रकृति के प्रतिकूल है। भगवान् भी अपने श्रीमुख से कहते हैं :—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

इस दशा में साधारण स्त्रियों उस तरह का बर्ताव करें, तो आश्चर्य ही क्या है ? यदि स्त्रियों का पति के प्रति सच्चा और निस्वार्थ प्रेम होता। तो गहने-कपड़े आदि शृङ्गार की वस्तुओं में और अन्य सामाजिक कुप्रथाओं एवं विलासिता की सामग्रियों में हैसियत से बाहर खर्च करने के लिए वे पुरुषों को कदापि मजबूर न करती, जैसा कि आजकल कर रही हैं। उनको यह बात फ़ौरन मालूम हो जाती कि हमारी इन आवश्यकताओं के कारण पुरुषों को बहुत तङ्ग होना और दुःख उठाना पड़ता है, अतएव वे अपने प्रेम पात्रों को कभी इस तरह का दुःख न देतीं; और अपने पति के प्रति सच्चे प्रेम के वश होकर इन आवश्यकताओं को घोर पाप समझ कर स्वयं उनसे घृणा कर लेतीं। यदि पुरुष स्त्रियों के प्रति सद्व्यवहार करके उनका सच्चा प्रेम प्राप्त कर लेते, तो स्त्रियाँ स्वयं ही इनके साथ सहानुभूति रखतीं और दुखी न करतीं।

इससे सिद्ध होता है कि वर्त्तमान काल में स्त्री-पुरुषों में परस्पर सच्चा प्रेम एवं भक्ति नहीं हैं; परन्तु यदि पुनर्विवाह और नियोग की प्रथा हो जाय, तो पुरुष स्त्रियों की क़द्र करना सीख जायँ। फिर दोनों तरफ़ एक सा व्यवहार होने से आपस में सच्चा प्रेम होने लग जाय, एवं पुरुषों के सद्व्यवहार होने से स्त्रियाँ उनकी वास्तविक भक्ति करने लगें।

सगाई-विवाह के समय गहने अधिकाधिक चढ़ाने की जो कुप्रथा है और विवाह के बाद भी स्त्रियों के दिल में गहने की अधिक लालसा बनी रहती है, इसका एक कारण यह भी है कि पति के मर जाने पर वे गहने स्त्री के पास रहने से वह धन से सुखी रहेगी। इससे सिद्ध होता है कि वर्त्तमान स्थिति में पति से भी अधिक प्रेम की सामग्री गहने हैं। यदि पुनर्विवाह और नियोग की प्रथा हो जाय, तो गहनों की अधिकाधिक लालसा न रहे और गहने पति से अधिक प्रिय न लगें; क्योंकि जिस पति की स्त्री रहेगी, वह गहनों आदि की कमी न रक्खेगा और स्त्रियों के मन में पतियों के मरने की सम्भावना के ये अमाङ्गलिक विचार पैदा होने की भी आवश्यकता न रहेगी।

अब दूसरा भय गृहस्थाश्रम बिगड़ने का है। इस पर प्रश्न उठता है कि क्या वर्त्तमान समय में इस समाज का गृहस्थाश्रम वास्तव में सुख-शान्तिमय और सुधरा हुआ है? युवावस्था-सम्पन्न, वैधव्य-दुःख से कातर बहू-बेटियाँ जिस घर में दिन-रात रोती-बिलखती आयु का एक-एक दिन युग के समान व्यतीत करें, क्या वह

सुख-शान्तिमय गृहस्थ की गणना में आने योग्य कहा जा सकता है ? जिस घर में दुश्चरित्र स्त्री-पुरुष बालक-बालिकाओं को भ्रष्ट करते रहें, क्या वह सद्‌गृहस्थ कहला सकता है ? जिस घर में विधवा बहिनें, बहुएँ और भावजों के साथ निष्ठुर व्यवहार होता है और उनके खाने-पीने के प्रबन्ध के लिए अदालतों में मुक़दमे लड़े जाते हैं, क्या वह सच्चा सद्‌गृहस्थ होने का दावा रख सकता है ? जो, घर विधवा स्त्रियों के कारण कलह का क्षेत्र बना रहता है तथा जिस घर को स्त्रियों का तिरस्कार होने के कारण देवता भी छोड़ देते हैं, क्या वह घर उच्च वर्ण के हिन्दुओं का सद्‌गृहस्थ समझा जा सकता है ? कहने का प्रयोजन यह है कि स्त्रियों पर इस तरह के अत्याचार होने के कारण वर्त्तमान समय में इनके गृहस्थाश्रम की वास्तविक व्यवस्था बिगड़ कर घोर दुःखमय हो रही है ; और पुनर्विवाह और नियोग की प्रथा जारी होने से बिगड़ने के बदले उलटे सुधर जायगी, विधवाओं के दुख मिटने के साथ-साथ गृहस्थ सुख-शान्तिमय हो जायगा। अस्तु, इन लोगों के बिगड़े हुए गृहस्थ को सुखमय बनाने का यदि कोई उपाय है, तो वह विधवाओं का पुनर्विवाह और नियोग ही है। जिन लोगों में पुनर्विवाह अथवा नियोग की प्रथा प्रचलित है, वास्तव में उन्हीं समाजों में पति-पत्नी का सच्चा प्रेम और गृहस्थाश्रम का सच्चा सुख है। भारतवर्ष को छोड़ अन्य सब देशों में विधवा-विवाह प्रचलित है ; परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उन लोगों में सच्चा प्रेम नहीं है या वे सद्‌गृहस्थ नहीं हैं। हिन्दुओं की अपेक्षा

उन लोगों में वास्तविक एवं निस्वार्थ प्रेम बहुत अधिक देखने में आता है और उनकी गृहस्थी इतनी मज़बूत है कि उसी मज़बूती के कारण वे अन्य जातियों पर अधिकार जमाए हुए हैं और हिन्दू लोग गृहस्थी की कमज़ोरी के कारण इतने कमज़ोर हो गए हैं कि पराधीनता की बेड़ियों से छुटकारा ही नहीं पा सकते; और जब तक गृहस्थी की यह दुरावस्था रहेगी, पराधीनता से छुटकारा पाना असम्भव ही है। गृहस्थी में आधा हिस्सा पुरुष का और आधा स्त्री का होता है। जिस समाज में दोनों भाग बलवान् होते हैं और एक-दूसरे के प्रति अपना कर्त्तव्य उचित रूप से पालन करते हैं, वही दुनिया में ठहर सकता है; परन्तु जिस समाज का आधा अङ्ग अत्याचार सहते-सहते निकम्मा हो जाय, वह लम्बी मुद्दत तक जीवित नहीं रह सकता। अस्तु, पश्चिमीय देशों के लोग, जिनमें पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित है, गृहस्थी के दोनों अङ्गों के अपने-अपने कर्त्तव्यों को उचित रूप से पालन करने के कारण ही सबल बने हुए हैं; और संसार पर शासन करते हुए वृद्धि पा रहे हैं। इसके विपरीत हिन्दू लोग पुनर्विवाह न होने के कारण अपनी श्रेष्ठता का घमण्ड रखते हुए शनैः शनैः नीचे गिरते जा रहे हैं। यदि यही दशा रही, तो समय पाकर अपना नाम-निशान तक खो बैठेंगे। पश्चिमीय देश वाले ही क्यों, हिन्दुस्तान में रहने वाले मुसलमानों की तरफ़ देखिए। जिनमें पुनर्विवाह होता है, उन मियाँ-बीवी में ख़ूब दोस्ती रहती है और उनकी गृहस्थी इतनी मज़बूत है कि वे हिन्दुओं को सदा दबाते रहते हैं। हिन्दुओं की अगणित

स्त्रियों पर मुसलमानों के अत्याचार होते हैं, जिनसे हिन्दू लोग ज़रा भी विचलित नहीं होते; परन्तु मुसलमान-स्त्री पर कोई हिन्दू आँख उठा कर भी नहीं देख सकता। यदि कोई देख ले तो सब मुसलमान फ़ौरन मरने-मारने को तैयार हो जाते हैं। इसी से दोनों की गृहस्थी की तुलना हो सकती है।

हिन्दुओं को ही लीजिए। जिन शूद्र वर्ण के लोगों में नियोग की प्रथा प्रचलित है, उनकी गृहस्थी द्विजातियों की अपेक्षा अधिक सुख-शान्तिमय और सुदृढ़ है, यह प्रत्यक्ष देखने में आता है। उनमें पति-पत्नी के बीच (चाहे वे प्रथम विवाह के हों, चाहे नियोग) इतना गहरा प्रेम होता है कि यदि पति से किसी के साथ लड़ाई हो जाय तो स्त्री पति की मदद के लिए अपनी जान तक देने को तैयार हो जायगी। द्विजातियों की स्त्रियों में यह साहस दिखाई नहीं देता। इन सब बातों से प्रमाणित होता है कि पुनर्विवाह और नियोग से पति-पत्नी का प्रेम एवं गृहस्थी का सुख कम नहीं होता, प्रत्युत अधिक होता है। यह भ्रम भी मिथ्या है कि पुनर्विवाह और नियोग से स्त्रियाँ स्वतन्त्र हो जायँगी। ब्राह्मण और वैश्यों की स्त्रियाँ वर्त्तमान समय में सुख के समय तो ज़रूर परतन्त्र हैं, परन्तु दुख के समय स्वतन्त्र ही हैं। पति की मौजूदगी में तो वे पति के आधीन रहती हैं, परन्तु पति के मर जाने के बाद वे किस के आधीन रहें? सुरक्षित रखने वाला आश्रय न रहने पर उनको लाचार होकर स्वतन्त्र होना पड़ता है और अरक्षित दशा में वह स्वाधीनता उन्हें घोर दुःख-सागर में डाल देती है। यदि पुनर्विवाह

अथवा नियोग हो जाय, तो यह दुखदायी स्वतन्त्रता न रहे; और पति की रक्षा में रहने से उसे किसी प्रकार की आपत्ति का सामना न करना पड़े। सारांश यह कि पुनर्विवाह और नियोग से स्त्रियाँ स्वतन्त्र नहीं होतीं; किन्तु वे पुरुषों की आधीनता एवं रक्षा में रहती हैं। मैं स्त्रियों की स्वतन्त्रता के पक्ष में नहीं हूँ; क्योंकि वर्त्तमान समय में स्त्रियों का अरक्षित दशा में स्वाधीन रहना मैं घोर हानिकारक एवं दुखदायी समझती हूँ।

पश्चिमीय देशों में जो स्त्री-स्वातन्त्र्य है, वह पुनर्विवाह के कारण नहीं है। उस समाज में स्त्रियों के स्वतन्त्र रहने की रिवाज है, जिसे मैं कई अंशों में हानिकारक एवं दुखदायी समझती हूँ। हिन्दुस्तान में स्त्री-स्वातन्त्र्य की रिवाज नहीं है और जिन जातियों में पुनर्विवाह और नियोग होता है, उनकी स्त्रियाँ भी स्वतन्त्र नहीं हैं।

पुरुषों का यह भय भी मिथ्या है कि पुनर्विवाह और नियोग की प्रथा होने पर स्त्रियाँ पति का परित्याग करेंगी। जब समाज में यह नियम होगा कि विधवा होने पर ही पुनर्विवाह या नियोग कर सकें—पति के जीवित होने पर नहीं, तो वे पति का परित्याग कर किस समाज में रह सकेंगी। यदि वे पति का परित्याग कर समाज से बहिष्कृत होना स्वीकार करें, तो इस समय भी प्रथम विवाहित पति को छोड़ कर अन्य समाज में जाने से उन्हें कौन रोक सकता है? क्या ऐसा करने वाली उद्दण्ड प्रकृति की दुश्चरित्रा स्त्रियाँ आज नहीं हैं? जिस स्त्री में जरा भी समझ है, वह पति के जीवित

रहते उसके परित्याग करने का विचार कदापि न करेगी। जि
समाजों में स्त्रियाँ पति का परित्याग करती हैं, उनमें पति-परित्य
के नियम बने हुए हैं; और उन नियमों के अनुसार ही परित्याग क
सकती हैं, अन्य रीति से नहीं। परन्तु जिस समाज में जीवित प
के परित्याग का नियम ही नहीं, उसके लिए यह मिथ्या आश
उठाना केवल विडम्बना ही है। यहाँ यह शङ्का हो सकती है
जब पति के साथ किसी की नहीं बनेगी, तो वह पति की हत्या क
मनमाना पुनर्विवाह करने को तैयार होगी। परन्तु अच्छी त
विचार करने पर यह शङ्का भी निर्मूल सिद्ध हो जायगी; क्यों
यदि ऐसी बात होती, तो जिन समाजों में पुनर्विवाह और नियो
की प्रथा प्रचलित है, उनमें अगणित पति-हत्याओं की दुर्घटना
होती रहतीं; परन्तु ऐसा देखने में नहीं आता। हिन्दुओं में भी पुरु
के लिए पुनर्विवाह खुला है। अतएव अनबन होने ही से यदि ए
दूसरे को मार देता, तो पुरुष अपनी स्त्रियों को मार कर मनमान
दूसरी स्त्री विवाह लेते; परन्तु पुरुषों के हाथ स्त्रियों की हत्या हो
के समाचार विरले ही सुनने में आते हैं। नर-हत्या करना ऐसा घो
राक्षसी कर्म है कि सिवाय पिशाच-वृत्ति के पुरुष के दूसरा कोई नह
कर सकता। फिर एक चींटी तक को मारने में महापातक होने क
विश्वास जिनमें परम्परा से चला आता है, ऐसी कोमल हृदय
हिन्दू-नारियाँ पैशाचिक कर्म कदापि नहीं कर सकतीं। यदि किस
की राक्षसीय वृत्ति ही हो, तो वह अब भी वैसा बीभत्स कर्म क
सकती है।

शेष रहा व्यभिचार का प्रश्न ! सो उसे रोकने ही के लिए तो पुनर्विवाह और नियोग की व्यवस्था की आवश्यकता है। अभियुक्त स्त्रियों के बयानों से प्रकट हो गया है कि वर्त्तमान समय में प्रकट एवं गुप्त रूप से व्यभिचार बेहद बढ़ रहा है। इससे अधिक और क्या बढ़ सकता है ? इस व्यभिचार-वृद्धि का कारण विशेषकर बाल-विधवाएँ हैं; क्योंकि वे काम से पीड़ित होकर निस्सहायावस्था में स्वयं व्यभिचार करने को बाध्य होती हैं; और अपनी सहायता के लिए सधवाओं को मिला कर उनको भी कुमार्ग में ले जाती हैं; ताकि वे उनका भेद प्रकट करके बदनाम न कर सकें (राधा का बयान देखिए)। यदि विधवाओं के लिए पुनर्विवाह एवं नियोग की व्यवस्था हो जाय, तो वे स्वयं तो व्यभिचार से बचेंगी ही; साथ ही उनके द्वारा सधवाओं का भ्रष्ट होना भी बन्द हो जायगा। विधवाओं का पुनर्विवाह और नियोग न होने से व्यभिचार बढ़ने का एक और कारण है। जाति में पुरुष और स्त्री प्रायः बराबर संख्या ही में उत्पन्न होते हैं और मरते हैं। फिर जब स्त्री के मरने पर रँडुआ तो अपना पुनर्विवाह क्वाँरी कन्या से कर लेता है और पुरुष के मरने पर विधवा स्त्री पुनर्विवाह नहीं कर सकती, तब विधवाओं की संख्या के अनुमान से ही अविवाहित पुरुष बचते हैं; जिनको इन रँडुओं के दुबारा विवाह करने के कारण एक बार भी विवाह करना नसीब नहीं होता। इन क्वाँरे लोगों से बहुत व्यभिचार बढ़ता है। ये लोग केवल विधवाओं और सधवाओं को ही बिगाड़ कर शान्त नहीं होते; बल्कि विजातीय और विधर्मी स्त्रियों से भी

सहवास कर धन, धर्म और कुल-मर्यादा को नष्ट करते हुए जाति में दृश्य और अदृश्य रूप से अनाचार फैलाते हैं। यदि विधवाओं के पुनर्विवाह और नियोग होने लग जायँ, तो जो पुरुष अविवाहित रहते हैं, वे सब गृहस्थ बन जायँ और उनके द्वारा होने वाला व्यभिचार बन्द हो जाय। समाज उनसे होने वाली धन-धर्म और मर्यादा की हानियों से बचे।

पश्चिमीय लोगों में जो व्यभिचार की मात्रा बढ़ी हुई दिखाई देती है, उसका कारण उनकी अत्यन्त विलास-प्रियता है, न कि पुनर्विवाह। इस पुनर्विवाह और नियोग से तो व्यभिचार कम होता है, बढ़ता नहीं। हिन्दुस्तान में जिन जातियों में पुनर्विवाह और नियोग की प्रथा जारी है, उनमें आम तौर से व्यभिचार की मात्रा बहुत ही कम देखने में आती है। बड़े-बड़े शहरों में नीच जाति के लोगों में जो व्यभिचार की मात्रा बढ़ी हुई दिखाई देती है, उसका कारण नियोग आदि की प्रथा नहीं, बल्कि उसका कारण यह है कि दुष्ट वृत्तियों के कारण उनका आचार-व्यवहार बहुत नीचे दरजे का है। अतएव उनका उदाहरण शिष्ट-सामाज के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता।

कुल-धर्म—यदि पुनर्विवाह और नियोग की प्रथा प्रचलित हो जायगी, तो सन्तान वाली स्त्रियाँ भी उन्हें करने लग जायँगी, जिससे समाज में बहुत गड़बड़ी मचेगी।

क्षमा—मर्यादा बाँधते समय समाज की व्यवस्था का अच्छी तरह विचार करके ही मर्यादाएँ बाँधी जायँगी और उन्हीं के

अनुसार सबको चलना होगा। वर्त्तमान समय में जन्म भर विधवा रहने की ही प्रथा है, तो उसी के अनुसार स्त्रियाँ चल रही हैं, तब फिर जब इनके सुख और सुभीते की मर्यादाएँ बँधेंगी। तो उनके अनुसार न चलने की आशङ्का करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता। यदि सन्तान वाली स्त्रियों के नियोग की व्यवस्था की जायगी, तो साथ ही साथ बालकों के सम्बन्ध की व्यवस्थाएँ भी अवश्य करनी होंगी। जिन जातियों में पुनर्विवाह और नियोग की प्रथाएँ हैं, उनमें भी पहले पति की सन्तानों के विषय की व्यवस्थाएँ बँधी हुई हैं और धर्मशास्त्र में भी ऐसी सन्तानों के विषय में व्यवस्थाएँ मौजूद ही हैं। अतएव इस विषय में कुछ भी अड़चन न पड़ सकेगी।

जाति-धर्म—हिन्दू-धर्म के अनुसार पति-पत्नी का सम्बन्ध केवल इस जन्म का ही नहीं होता; बल्कि जन्म-जन्मान्तरों तक उनका सम्बन्ध बना रहता है। पुनर्विवाह और नियोग होने से यह सम्बन्ध किस तरह बना रहेगा?

क्षमा—महाराज, क्षमा करें। यह बात सुन कर मुझे बड़ी हँसी आती है। पति-पत्नी का जन्म-जन्मान्तरों का बन्धन केवल स्त्रियों के लिए ही है या पुरुषों के लिए भी? जब स्त्री मरती है, तब तो पुरुष अनेक स्त्रियों से विवाह कर लेता है; फिर किस-किस स्त्री से उसका जन्म-जन्मान्तरों का सम्बन्ध समझा जायगा? क्या पहले मरने वाली स्त्री दूसरे लोक में जाकर कुमारी अवस्था में बैठी हुई उसकी बाट देखती रहेगी कि वह मर कर आए तो उससे विवाह करे। इसी तरह यदि पति बाल्यावस्था

मर जाय, तो विधवा के वृद्धावस्था प्राप्त कर मरने तक क्या ति दूसरे लोक में बैठा उसकी बाट देखता रहेगा ? क्या इस ोक के पति-पत्नी दोनों ही का दूसरे लोक में एक ही योनि में न्म लेने का निश्चय है ? और यदि मान भी लिया जाय कि दोनों ो एकही योनि प्राप्त होगी, तो क्या पहले का गया हुआ पुरुष इतना ड़ा न हो जायगा कि पीछे से जाने वाले का उससे जोड़ ही न मिले। दि दूसरे लोक में यहाँ की तरह वृद्ध-विवाह की प्रथा का होना भी मान लें, तो पुरुष पहले जाय, तब तो वह वहाँ वृद्ध होकर पीछे से जाने वाली कन्या को पकड़ भी ले; परन्तु यदि स्त्री पहले गई, तो पीछे से जाने वाला पुरुष वहाँ बहुत छोटा होगा; और बुढ़िया के साथ उसका विवाह कदापि न हो सकेगा। इसके अतिरिक्त कर्म के क़ानून के अनुसार भी पति-पत्नी के जन्म-जन्मान्तरों के सम्बन्ध की बात ठीक सिद्ध नहीं होती। यदि पति के कर्म बहुत पापमय हैं; और पत्नी के पुण्यमय, तो ऐसी दशा में उनका संयोग कैसे बना रहेगा। पति किसी पाप-योनि में जायगा और पत्नी पुण्य-लोक में। अतः पति-पत्नी के अखण्ड सम्बन्ध की बात मनुष्यों ने केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि के विचार से स्त्रियों पर अत्याचार करने ही के लिए कल्पित कर ली है; और बेचारी भोली-भाली स्त्रियों को उस पर विश्वास करा दिया है। पुरुष स्वयं इस बात पर कुछ भी ध्यान नहीं देते। यदि ध्यान देते तो एक स्त्री के मरने पर अनेक के साथ विवाह कदापि न करते। यदि पति-पत्नी के अखण्ड सम्बन्ध की बात वास्तव में सत्य होती, तो न तो

पुरुष दूसरी स्त्री से और न स्त्री अन्य पुरुष से ही सहवास करने योग्य रहती।

जाति-धर्म—आप पुनर्विवाह और नियोग के लिए इतना ज़ोर देती हो; परन्तु विधवा स्त्रियाँ स्वयं तो इसके लिए कुछ भी चेष्टा नहीं करतीं। इससे विदित होता है कि वे इस प्रथा को पसन्द नहीं करतीं।

क्षमा—नहीं महाराज, यह बात ऐसी नहीं है। स्त्रियों के दिल में यह बात पूरी तरह से जमा दी गई है कि उनके लिए ईश्वर ने वह व्यवस्था ही नहीं की। इसलिए उनको यह ख़्याल ही नहीं पैदा होता, बल्कि यही निश्चय रहता है कि हमारे लिए विधवा रहना अनिवार्य है। जिस तरह मृत्यु होने के बाद फिर कोई जिन्दा नहीं हो सकता, यह सब को दृढ़ विश्वास होता है, इसलिए मरे हुए को जिलाने का कोई प्रयत्न नहीं करता, यही हाल स्त्रियों का है। यदि ज़माने की हवा लग जाने के कारण किसी का यह अन्ध-विश्वास टूटा भी, तो वह यह समझ कर चुप रहती है कि यदि मुँह से इस विषय की बात निकाली, तो लोग मुझे दुराचारिणी कह कर हँसेंगे और निन्दा तथा घृणा करेंगे; और समाज में निर्वाह होना कठिन हो जायगा। परन्तु यदि कोई सहृदय पुरुष उनको आश्वासन देकर तथा उनका विश्वास-पात्र बन कर, गुप्त रूप से वार्तालाप कर, पुनर्विवाह और नियोग को धर्म-विहित होने का विश्वास दिला उनके दिल के वास्तविक भाव पूछे, तो वे ज़रूर कह देंगी कि वर्त्तमान स्थिति में पुनर्विवाह और नियोग

करना जरूरी है और समाज को अधोगति से बचाने का यही उपाय है।

मेरे इतने कथन का प्रयोजन यह है कि जो-जो दोषारोपण इन स्त्रियों पर किए गए हैं, उन अपराधों की अपराधिनी वे नहीं हैं; सब अपराध पुरुषों के हैं। यदि पुरुष अपने कर्त्तव्य उचित रूप से पालन करते, स्त्रियों के साथ उचित व्यवहार करते, इनके जन्म-सिद्ध अधिकार न छीनते और विधवाओं के पुनर्विवाह एवं नियोग की व्यवस्था कर देते तथा इनकी रक्षा एवं पालन यथोचित रूप से करते, तो उनको इस तरह के पाप-कर्म करने के लिए कदापि बाध्य न होना पड़ता; परन्तु पुरुषों के कर्त्तव्य पालन न करने से तथा उनकी विपरीत करतूत से इन अबलाओं को पाप-कर्म करने के लिए बाध्य होना पड़ा, इसलिए इन सब अपराधों का दण्ड पुरुषों को ही मिलना चाहिए। स्त्रियाँ इस विषय में सर्वथा निर्दोष हैं। इतना ही नहीं, पुरुषों ने अपनी करतूत से स्त्रियों का यह लोक और परलोक दोनों बिगाड़ा है, इसलिए इसका भी उन्हें उचित दण्ड मिलना चाहिए। अधिक दण्ड के भागी धर्माचार्य, पण्डित, विद्वान् और समाज के नेता हैं; क्योंकि समाज को सुव्यवस्थित रखने का भार इन्हीं लोगों पर है और फिर दूसरे साधारण लोगों को अपनी-अपनी करतूतों का दण्ड मिलना चाहिए।

महाराज, मैं दावे के साथ कहती हूँ कि हिन्दू-स्त्री के समान सहनशील और सरल हृदय की स्त्री दुनिया में अन्य किसी जाति

में नहीं है। संसार में अपमान और तिरस्कार से बुरी कोई चीज़ नहीं है। अपमान से मृत्यु भी अच्छी समझी जाती है। कहावत है कि अपमान के साथ यदि कोई अमृत पिलाए, तो वह भी विष के तुल्य है! सब देशों और सब काल में अगणित पुरुष अपमान सहन न करने के कारण घर-द्वार, राज-पाट और संसार तक छोड़ गए और छोड़ जाते हैं, जिनके इतिहास प्राचीन वेद-पुराण इतिहासों से लेकर वर्त्तमान समय में भी पाए जाते हैं। पशु-पत्ती भी अपमान सहन नहीं कर सकते। बाज़े-बाज़े तो वे भी अपमान के कारण मर जाते हैं। यहाँ तक कि जो संन्यासी; महात्मा "लोक मानापमानयो स्तुल्यं तुल्यं मित्रारि पक्षयोः" "तुल्य निन्दात्म संस्तुतिः" आदि वचनों को अपना मूल मन्त्र समझते हैं, वे भी जहाँ तिरस्कार हो, वहाँ नहीं जाते—जहाँ प्रेम-सहित आदर हो वहीं जाते हैं। अपने गेरुए भेष की निन्दा सुनना इन्हें भी नागवार गुज़रता है; और अपने से द्वेष करने वालों से उपेक्षा करते हैं। परन्तु इस हिन्दू-जाति की स्त्रियाँ—ख़ास कर विधवाएँ अपने ही आत्मीयों से इतनी भारी अपमानित और बात-बात में, ठौर-ठौर पर, आठों पहर असह्य रूप से तिरस्कृत होकर भी चुपचाप सब सहन करती हैं। सवेरे उठते ही यदि विधवा के दर्शन हो जायँ, तो अपशकुन समझा जाता है। किसी माङ्गलिक काम में यदि विधवा सम्मुख आ जाय, तो अमङ्गल माना जाता है। वह सदा सर्वदा निकम्मी और फ़ालतू चीज़ समझी जाती है। इतने पर भी न तो उसका बदला लेने का इनके दिल में कभी भाव उत्पन्न होता है; और न

इस समाज से किनाराकश ही करने का। जो पुरुष-समाज इनसे इतना द्वेष करता है कि इनके जीवित रहने से दुख और मर जाने से सुख मानता है, उसका द्वेष-भाव भूल कर वह उनसे प्रेम-भाव रखती है; और उनकी सेवा-सुश्रूषा करती हुई उनका अमङ्गल कभी चिन्तन नहीं करतीं—सदा उनका शुभ ही मनाती हैं; और जिन कथा-उपदेशों में स्त्री-जाति की घोर निन्दा ही नहीं, किन्तु स्त्री पाप मूर्ति है; नारी नरक का कुँआ है; मल की खान है; संसार में जितने दुर्गुण हैं, सब स्त्रियों में हैं, इनके सङ्ग से ही मनुष्य डूबता है आदि-आदि अनेक प्रकार की गालियाँ निकाली जाती हैं, उन कथा-उपदेशों को ये बड़े चाव से सुनती हैं और उनसे नाराज़ नहीं होतीं। इससे बढ़कर क्षमा, सहनशीलता, उदारता और तप क्या हो सकता है।

संसार में सब शिष्ट-समाज में रिवाज है कि कोई किसी के मुँह पर किसी तरह का कुवाक्य नहीं कहता और हिन्दू-धर्म का तो सिद्धान्त ही है कि मन, वाणी और कर्म से किसी का जी न दुखाए, कठोर शब्द न कहे, अपमान न करे, सत्य प्रिय और हित वचन बोले। परन्तु ये लोग शास्त्र और शिष्टाचार के विरुद्ध स्त्रियों के प्रति ऐसे ही व्यवहार करते हैं और ऐसा करते समय यह भूल जाते हैं कि जिनके सम्बन्ध में हम ये बातें कहते हैं, उन्हीं के मल से हम उत्पन्न हुए हैं, उन्होंने ही हमको पाल कर बड़ा किया है, उनकी ही बदौलत हम इतने बड़े हो गए कि आज हम उनको तिरस्कार कर अपनी कृतघ्नता प्रकट करते हैं। इतना सब कुछ होने पर भी यह इन हिन्दू-स्त्रियों

ही की सहनशीलता और सरलता है कि वे इन व्यवहारों से कुछ भी विचलित नहीं होतीं। यदि ऐसी स्त्रियाँ इस कृतघ्न और हृदय-शून्य जाति में न होकर किसी अन्य शिष्ट-जाति में होती, तो इनकी उचित क़द्र होती और वह जाति अपने को धन्य समझती। यदि अन्य जातियों की स्त्रियाँ इस जाति में उत्पन्न होतीं, तो वे एक दिन के लिए भी इतना अत्याचार सहन न कर सकतीं और इनको छोड़ कर अन्य सुखदायक सहृदय-समाज में तुरन्त चली जातीं।

भगवन्! इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए तथा स्त्रियों के इन विशेष गुणों की तरफ़ विचार कर, उनका इन्साफ़ होना चाहिए।

जब क्षमा देवी अपना वक्तव्य समाप्त कर, अपने आसन पर बैठ गईं, तो धर्मराज ने अन्य सब देवी-देवताओं को लक्ष्य कर कहा—आप लोगों ने क्षमा देवी का महत्वपूर्ण भाषण सुना ही है। इस विषय में आप लोगों में से किसी को कुछ कहना है?

देवी-देवतागण—भगवन्! क्षमादेवी ने जो कुछ कहा है, वह बहुत ही न्याय और युक्ति-सङ्गत है, इसमें कोई सन्देह नहीं; परन्तु स्त्रियों ने जो पाप-कर्म किए हैं, उनके लिए दण्ड से बिलकुल मुक्त होना उचित न होगा; क्योंकि वे लोग भी बुद्धियुक्त प्राणी हैं, पाप-कर्म करते समय उनको यह ज्ञान तो अवश्य रहना चाहिए कि इसका फल अवश्य खोटा होगा। क्षमादेवी के कथनानुसार अधिक दण्ड के भागी पुरुष ही हैं, जिनमें कि धर्माचार्य, पण्डित,

इस समाज से किनाराकश ही करने का। जो पुरुष-समाज इनसे इतना द्वेष करता है कि इनके जीवित रहने से दुख और मर जाने से सुख मानता है, उसका द्वेष-भाव भूल कर वह उनसे प्रेम-भाव रखती है; और उनकी सेवा-सुश्रूषा करती हुई उनका अमङ्गल कभी चिन्तन नहीं करतीं—सदा उनका शुभ ही मनाती हैं; और जिन कथा-उपदेशों में स्त्री-जाति की घोर निन्दा ही नहीं, किन्तु स्त्री पाप मूर्ति है; नारी नरक का कुँआ है; मल की खान है; संसार में जितने दुर्गुण हैं, सब स्त्रियों में हैं, इनके सङ्ग से ही मनुष्य डूबता है आदि-आदि अनेक प्रकार की गालियाँ निकाली जाती हैं, उन कथा-उपदेशों को ये बड़े चाव से सुनती हैं और उनसे नाराज़ नहीं होतीं। इससे बढ़कर क्षमा, सहनशीलता, उदारता और तप क्या हो सकता है।

संसार में सब शिष्ट-समाज में रिवाज है कि कोई किसी के मुँह पर किसी तरह का कुवाक्य नहीं कहता और हिन्दू-धर्म का तो सिद्धान्त ही है कि मन, वाणी और कर्म से किसी का जी न दुखाए, कठोर शब्द न कहे, अपमान न करे, सत्य प्रिय और हित वचन बोले। परन्तु ये लोग शास्त्र और शिष्टाचार के विरुद्ध स्त्रियों के प्रति ऐसे ही व्यवहार करते हैं और ऐसा करते समय यह भूल जाते हैं कि जिनके सम्बन्ध में हम ये बातें कहते हैं, उन्हीं के मल से हम उत्पन्न हुए हैं, उन्होंने ही हमको पाल कर बड़ा किया है, उनकी ही बदौलत हम इतने बड़े हो गए कि आज हम उनको तिरस्कार कर अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इतना सब कुछ होने पर भी यह इन हिन्दू-स्त्रियों

लाख योनि भोग चुकें, तब फिर इनको स्त्री की योनि दी जाय। तब उस समय ये जैसी करनी करेंगी, वैसा फल पाएँगी। चौरासी लाख योनि भुगताने में इस बात की विशेष रूप से व्यवस्था की जाय कि जिन-जिन पुरुषों ने इनके साथ अत्याचार किए हैं उनका बदला वे उनके साथ जिस योनि में वे जायँ, वहाँ चुकाएँ।

अपराधी स्त्रियाँ—भगवन् (धर्मराज के सम्मुख बहुत ही आर्त स्वर से हाथ जोड़ कर गर्दन झुकाए) हम प्रार्थना करती हैं कि चौरासी लाख दुखमयी योनि भुगतने के बाद जब स्त्री-योनि हमको मिले, तो फिर इस दुष्ट-समाज में हमारा जन्म न हो, ऐसी दया अवश्य की जाय। हमको और भयङ्कर दण्ड का इतना भय नहीं लगता, जितना कि इस महा पापी समाज में जन्म लेने का।

धर्मराज—इस समाज से तुम इतना क्यों डरती हो? जिस समाज में इतना अन्याय और दुराचार बढ़ा हुआ है, क्या तुम समझती हो कि वह समाज अधिक दिन तक क़ायम रह सकेगा? नहीं। पुण्यात्मा जीव तो इस समाज में कोई जन्म नहीं लेगा और वर्तमान में जो जीव इस समाज में हैं, वे अपने कुकर्मों के कारण प्रलय-काल तक नरकों में तथा वृक्षादि मूढ़-योनियों में अपने किए का फल भोगेंगे। बाक़ी थोड़े पुण्य तथा अधिक पाप वाले जीव इस समाज में जन्म लेंगे। वे या तो गर्भ-दुःख सह कर जन्मते [illegible] मर जायँगे या बाल्यावस्था वाले रोगों को भोग कर, युवा होने [illegible]ले ही चल बसेंगे। अतः जब तक तुम चौरासी लाख [illegible]गत कर स्त्री-शरीर धारण करने योग्य होगी, इससे

इसके अतिरिक्त इस समाज के साधारण पुरुष ने जो-जो व्यक्तिगत अन्याय, अत्याचार एवं कुकर्म इन स्त्रियों के साथ किए हैं, उनको अपनी-अपनी करनी के अनुसार यथा-योग्य दण्ड दिया जाय।

शेष रहा इन स्त्रियों के विषय का प्रश्न। सो इनके किए हुए ये पाप यद्यपि अधिकतर शारीरिक ही हैं और उन पापों का फल प्रायः उसी पाञ्चभौतिक शरीर में कामादिक वेगों को शान्त न कर सकने तथा भ्रूण-हत्या के समय होने वाले शारीरिक दारुण वेदनाओं तथा अत्याचारियों द्वारा पीटे जाने एवं अन्य प्रकार से सताए जाने आदि के रूप में तथा सदा रोते-कलपते रहने से भोग चुकी हैं; तथापि ये भी बुद्धियुक्त प्राणी हैं और पुण्य तथा पाप-कर्मों को पहचानने का ज्ञान रखती हैं, फिर भी इन्होंने उन कुव्यवस्थाओं को हटाने के लिए कुछ भी चेष्टा न की और न कोई पुरुषों के सम्मुख कभी कोई एतराज़ किया, बल्कि इन व्यवस्थाओं के अनुसार बर्तने का झूठा ढोंग करते हुए ऊपर से सती-साध्वी धर्मचारिणी बनते हुए परदे के अन्दर छिप कर कुकर्म करती रहीं। इसलिए ये लोग भी सर्वथा निर्दोष नहीं समझी जा सकतीं। बुद्धि-हीन पशुओं की तरह येन-केन उपाय से शरीर के विषय-भोगादि की तृप्ति करने में ही जन्म भर आसक्त रहीं; इसलिए इनको अच्छी गति नहीं मिल सकती, अपितु ये दण्ड ही की अधिकारिणी हैं। अतएव इन सबको फिर चौरासी लाख दुःख-योनि भुगतने के लिए भेज दिया जाय; और जब ये चौरासी

विद्याविनोद-ग्रन्थमाला की विख्यात पुस्तकें

प्रेम-प्रमोद

[ले० श्री० प्रेमचन्द जी]

यह बात बड़े-बड़े विद्वानों और अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने एक स्वर से स्वीकार कर ली है कि श्री० प्रेमचन्द जी की सर्वोत्कृष्ट सामाजिक रचनाएँ "चाँद" ही में प्रकाशित हुई हैं। प्रेमचन्द जी का हिन्दी-साहित्य में क्या स्थान है, सो हमें बतलाना न होगा। आपकी रचनाएँ बड़े-बड़े विद्वान तक बड़े चाव और आदर से पढ़ते हैं। हिन्दी-संसार में मनोविज्ञान का जितना अच्छा अध्ययन प्रेमचन्द जी ने किया है, वैसा किसी ने नहीं किया। यही कारण है कि आपकी कहानियों और उपन्यासों को पढ़ने से जादू का सा असर पड़ता है। बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष, सभी आपकी रचनाओं को बड़े प्रेम से पढ़ते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में प्रेमचन्द जी की उन सभी कहानियों का संग्रह किया गया है, जो "चाँद" में पिछले तीन-चार वर्षों में प्रकाशित हुई हैं। इसमें कुछ नई कहानियाँ भी जोड़ दी गई हैं, जिनसे पुस्तक का महत्त्व और भी बढ़ गया है। प्रकाशित कहानियों का भी फिर से सम्पादन किया गया है। प्रत्येक घर में इस पुस्तक की कम से कम एक प्रति होनी चाहिए। जब कभी कार्य की अधिकता से जी ऊब जाय, एक कहानी पढ़ लीजिए; सारी थकान दूर हो जायगी और तबियत एक बार फड़क उठेगी!

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

लेना ग्राहकों की इच्छा पर निर्भर है ; परन्तु आगे निकलने वाले ग्रन्थ उन्हें लेने पड़ते हैं।

४—वर्ष भर में कम से कम बारह रुपयों के मूल्य के (कमीशन काट कर) नवीन ग्रन्थ प्रत्येक स्थायी-ग्राहक को लेने पड़ते हैं। बारह रुपये से अधिक मूल्य की पुस्तकें, यदि एक वर्ष में निकलें, तो १२) रुपये की किताबें लेकर शेष ग्रन्थों के लेने से ग्राहक, यदि वे चाहें, तो इन्कार कर सकते हैं।

५—किसी उचित कारण के बिना, यदि किसी पुस्तक की वी० पी० वापस आती है, तो उसका डाक-ख़र्च आदि ग्राहक को देना पड़ता है। वी० पी० वापस करने वालों का नाम ग्राहक-श्रेणी से अलग कर दिया जाता है।

६—'प्रवेश-फ़ीस' के आठ आने पेशगी मनीऑर्डर से भेजने चाहिए।

७—स्थायी-ग्राहक पुस्तकों की चाहे जितनी प्रतियाँ, चाहे जितनी बार, पौनी क़ीमत में मँगा सकते हैं।

८—स्थायी-ग्राहकों को अपनी पुस्तकों के अलावा हम सभी हिन्दी-पुस्तकों पर, जो हमारे यहाँ विक्रयार्थ प्रस्तुत रहती हैं, एक आना फ़ी रुपया कमीशन भी देते हैं।

पत्र-व्यवहार करने का पता :—

व्यवस्थापिका—

'चाँद' कार्यालय, २८ एल्गिन रोड, इलाहाबाद

का पुनर्विवाह उपर्युक्त हेतुओं से उचित है या अनुचित ? (५) वेदों से विधवा-विवाह की सिद्धि। (६) स्मृतियों की सम्मति। (७) पुराणों की साक्षी। (८) अङ्गरेज़ी-क़ानून (English Law) की आज्ञा। (९) अन्य युक्तियाँ। (१०) विधवा-विवाह के विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर:—(अ) क्या स्वामी दयानन्द विधवा-विवाह के विरुद्ध हैं ? (आ) विधवाएँ और उनके कर्म तथा ईश्वर-इच्छा; (इ) पुरुषों के दोष स्त्रियों को अनुकरणीय नहीं; (ई) कलियुग और विधवा-विवाह; (उ) कन्यादान विषयक आक्षेप; (ऊ) गोत्र-विषयक प्रश्न; (ऋ) कन्यादान होने पर विवाह वर्जित है; (ॠ) बाल-विवाह रोकना चाहिए, न कि विधवा-विवाह की प्रथा चलाना; (ऌ) विधवा-विवाह लोक-व्यवहार के विरुद्ध है; (ॡ) क्या हम आर्य-समाजी हैं, जो विधवा-विवाह में योग दें ? (११) विधवा-विवाह के न होने से हानियाँ:—

(क) व्यभिचार का आधिक्य; (ख) वेश्याओं की वृद्धि; (ग) भ्रूण-हत्या तथा बाल-हत्या; (घ) अन्य क्रूरताएँ; (ङ) जाति का ह्रास; और (१२) विधवाओं का कच्चा चिट्ठा।

इस पुस्तक में बारह अध्याय हैं, जिनमें क्रमशः उपर्युक्त विषयों की आलोचना बड़े ही ओजस्वी एवं मार्मिक ढङ्ग से की गई है। कई तिरङ्गे और सादे चित्र भी हैं।

इस मोटी-ताज़ी सचित्र और सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ३) रु० है ; पर स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात् २।) रु० में दी जावेगी।

शान्ता

[ले० श्री० रामकिशोर जी मालवीय, सहकारी-सम्पादक 'अभ्युदय']

इस पुस्तक में देश-भक्ति और समाज-सेवा का सजीव वर्णन किया गया है। देश की वर्तमान अवस्था में हमें कौन-कौन सामाजिक सुधार करने की परमावश्यकता है, और वे सुधार किस प्रकार किए जा सकते हैं आदि आवश्यक एवं उपयोगी विषयों का लेखक ने बड़ी योग्यता के साथ दिग्दर्शन कराया है। उपन्यास होते हुए भी, यह पुस्तक एक व्याख्यान है और इसके पढ़ने से देश की वास्तविक स्थिति आँखों के सामने चित्रित हो जाती है। शान्ता और गङ्गाराम का शुद्ध और आदर्श प्रेम देख-कर हृदय गद्गद् हो जाता है। इनमें इस दम्पति का सत्चरित्र और समाज-सेवा की लगन का भाव ऐसी उत्तमता से वर्णन किया गया है कि पुस्तक छोड़ने की इच्छा नहीं होती। साथ ही साथ हिन्दू-समाज के अत्याचार और षड्यन्त्र से शान्ता का उद्धार देख-कर

उसके साहस, धैर्य और स्वार्थ-त्याग की प्रशंसा करते ही बनती है। पुस्तक बालक-बालिकाएँ, स्त्री-पुरुष सभी के लिए शिक्षाप्रद है। छपाई-सफ़ाई अत्युत्तम और पृष्ठ-संख्या १२५ होने पर भी इसका मूल्य ॥।) बारह आने है। स्थायी-ग्राहकों से ॥-) ही लिए जाते हैं।

*

उमासुन्दरी

[ले० श्रीमती शैलकुमारी देवी]

इस उपन्यास की लेखिका छपरा से निकलने वाले 'महिला-दर्पण' की सञ्चालिका हैं। इस पुस्तक में पुरुष-समाज की विषय-वासना, अन्याय तथा भारतीय रमणियों के स्वार्थ-त्याग और पातिव्रत्य का ऐसा सुन्दर और मनोहर वर्णन किया गया है कि पढ़ते ही बनता है। सुन्दरी सुशीला का अपने पति सतीश पर अगाध प्रेम एवं विश्वास, उसके विपरीत सतीश बाबू का उमा-सुन्दरी नामक युवती पर मुग्ध हो जाना; उमासुन्दरी का अनुचित सम्बन्ध होते हुए भी सतीश को कुमार्ग से बचाना और उपदेश दे कर उसे सन्मार्ग पर लाना आदि सुन्दर और शिक्षाप्रद घटनाओं को पढ़कर हृदय उमड़ पड़ता है। इतना ही नहीं, इसमें हिन्दू-समाज की स्वार्थपरता, काम-लोलुपता विषय-वासना तथा

अनेक कुरीतियों का हृदय-विदारक वर्णन किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह शिक्षाप्रद उपन्यास भारतीय महिलाओं के ही लिए नहीं; वरन् समस्त हिन्दू-समाज के लिए बहुत उपकारी सिद्ध होगा। पुस्तक बहुत ही सरल और रोचक भाषा में लिखी गई है। छपाई-सफ़ाई सब सुन्दर है। इस पर भी इस अत्युत्तम पुस्तक का मूल्य केवल ॥|) आने है। स्थायी ग्राहकों को ॥-) में ही दी जाती है

मानिक-मन्दिर

[ले० श्री० मदारीलाल जी गुप्त]

इस रत्न की विमल ज्योति में, आप सरल भाषा और रोचक-शैली में अनूठे भावों के अच्छे, मनोहर और विचित्र दृश्य देख सकेंगे! मानिक का असीम साहस देख कर आप स्तम्भित रह जायँगे! मानिक का अपूर्व चातुर्य आपको मुग्ध कर लेगा! मानिक के अद्‌भुत कार्य-कलाप पर आपका हृदय बाँसों उछलने लगेगा। मानिक के अप्रतिम कृत्यों से आपको ज्ञात हो जायगा कि उसका हृदय कायर नहीं था! अत्याचार सह कर वह चुपचाप बैठ रहने वाली स्त्री न थी। अपने शत्रुओं से बदला लेने का उसने भरसक प्रयत्न किया और कृतकार्य हुई!

इस पुस्तक में एक ख़ास विशेषता यह है कि समाज में फैली हुई लगभग सभी बुराइयाँ आपके आँखों के आगे नाचने लगेंगी। दो तिरङ्गे और चार सादे चित्रों से सुसज्जित लगभग २५० पृष्ठ की इस सुन्दर पुस्तक का मूल्य केवल १॥); स्थायी ग्राहकों से १=); पहिला संस्करण केवल २ मास में हाथों-हाथ बिक गया था। यही पुस्तक की उत्तमता का सबसे भारी प्रमाण है। नवीन संस्करण अभी प्रकाशित हुआ है।

मनोरञ्जक कहानियाँ

[ले० श्री०, अध्यापक जहूरबख़्श जी, "हिन्दी-कोविद"]

श्री० ज़हूरबख़्श जी की लेखन-शैली बड़ी ही रोचक और मधुर है। आपने बालकों की प्रकृति का अच्छा अध्ययन भी किया है। आपने यह पुस्तक बहुत दिनों के कठिन परिश्रम के बाद लिखी है। इस पुस्तक में कुल १७ छोटी-छोटी शिक्षाप्रद, रोचक और सुन्दर हवाई कहानियाँ हैं, जिन्हें बालक-बालिकाएँ बड़े मनोयोग से सुनेंगे। बड़े-बूढ़ों का भी इससे यथेष्ट मनोरञ्जन हो सकता है।

पृष्ठ-संख्या २०० से अधिक, छपाई-सफ़ाई अच्छी है। इस

और पुस्तक सचित्र प्रकाशित हुई है; फिर भी मूल्य वही रक्खा गया है—१); स्थायी ग्राहकों से ॥|) मात्र।

मनोरमा

[ले० श्रीयुत चण्डीप्रसाद जी, बी० ए०, 'हृदयेश']

यह उपन्यास निःसन्देह हिन्दू-समाज में क्रान्ति उत्पन्न कर देगा। समाज का नग्न चित्र जिस योग्यता से इस पुस्तक में अङ्कित किया गया है, हम दावे के साथ कह सकते हैं कि वैसा एक भी उपन्यास अब तक हिन्दी-संसार में नहीं निकला है। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के भयङ्कर दुष्परिणामों के अलावा भारतीय हिन्दू-विधवाओं का जीवन जैसा आदर्श और उच्च दिखलाया गया है, वह बड़ा ही स्वाभाविक है।

इस पुस्तक के लेखक हिन्दी-संसार के रत्न हैं, अतएव भाषा के सम्बन्ध में कुछ भी कहना वृथा है! पुस्तक की भाषा इतनी सरल, रोचक और हृदयग्राही है कि, उठा कर कोई इसे छोड़ नहीं सकेगा। इस पुस्तक की छपाई-सफ़ाई देखने ही योग्य है। पुस्तक सजिल्द निकाली गई है। मूल्य केवल २॥) रु०, स्थायी-

ग्राहकों से १॥।=) मात्र ! पहिला संस्करण केवल ४ मास में बिक चुका है, नवीन संस्करण छप रहा है ।

※

मनोहर ऐतिहासिक कहानियाँ

[ले० श्री० अध्यापक जहूरबख़्श जी, "हिन्दी-कोविद"]

इस पुस्तक में पूर्वीय और पाश्चात्य, हिंदू और मुसलमान स्त्री-पुरुष सभी के आदर्श छोटी-छोटी कहानियों द्वारा उपस्थित किए गए हैं, जिससे बालक-बालिकाओं के हृदय पर छोटेपन ही से दयालुता, परोपकारिता, मित्रता, सच्चाई और पवित्रता आदि सद्गुणों के बीज को अङ्कुरित करके उनके नैतिक जीवन को महान पवित्र और उज्ज्वल बनाया जा सके ।

इस पुस्तक की सभी कहानियाँ शिक्षाप्रद और ऐसी हैं कि उनसे बालक-बालिकाएँ, स्त्री-पुरुष सभी लाभ उठा सकते हैं । लेखक ने बालकों की प्रकृति का भली-भाँति अध्ययन करके इस पुस्तक को लिखा है । इससे अनुमान किया जा सकता है कि पुस्तक कैसी और कितनी उपयोगी होगी । हमें आशा है, देश-वासी इस पुस्तक को अपनाकर हमारे उद्देश्य को सफल करेंगे ।

पुस्तक की छपाई-सफ़ाई देखने योग्य है । २५० पृष्ठ की समस्त

कपड़े की जिल्द सहित पुस्तक का मूल्य केवल १॥) रु०; स्थायी ग्राहकों से १=) मात्र! आज ही एक प्रति मँगा लीजिए! नवीन संस्करण छप रहा है।

ग्रह का फेर

[ले० श्री० योगेन्द्रनाथ चौधरी, एम० ए०]

इस पुस्तक की विशेषता लेखक के नाम ही से प्रकट हो जाती है। यह बङ्गला के एक प्रसिद्ध उपन्यास का अनुवाद है। लड़के-लड़कियों की शादी-विवाह में असावधानी करने से जो भयङ्कर परिणाम होता है, उसका इसमें अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। इसके अतिरिक्त यह बात भी इसमें अङ्कित की गई है कि अनाथ हिन्दू-बालिकाएँ किस प्रकार ठुकराई जाती हैं और उन्हें किस प्रकार ईसाई अपने चङ्गुल में फँसाते हैं। पुस्तक पढ़ने से पाठकों को जो आनन्द आता है, वह अकथनीय है। छपाई-सफ़ाई सब सुन्दर होते हुए भी पुस्तक का मूल्य केवल आठ आने तथा स्थायी ग्राहकों से छः आने मात्र! नवीन संस्करण प्रेस में है।

आशा पर पानी

[लेखक श्री० जगदीश झा, 'विमल']

यह एक शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास है। मनुष्य के जीवन में सुख-दुख का दौरा किस प्रकार होता है, विपत्ति के समय मनुष्य को कैसी-कैसी कठिनाइयाँ सहनी पड़ती हैं, किस प्रकार घर की फूट के कारण परस्पर वैमनस्य हो जाता है और उसका कैसा दुखदाई परिणाम होता है, यह सब बातें आपको इस उपन्यास में मिलेंगी। इसमें क्षमा-शीलता, स्वार्थ-त्याग और परोपकार का अच्छा चित्र खींचा गया है। एक बार अवश्य पढ़िए। छपाई-सफाई उत्तम है। मूल्य केवल आठ आने; स्थायी ग्राहकों से छः आने मात्र! नवीन संस्करण छप रहा है।

देवदास

[ले० श्री० शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय]

देवदास को उपन्यास न कह कर यदि विविध अवस्थाओं के मानवी हृद्गत भावों का जीता-जागता चित्र कहें तो विशेष सार्थक होगा। देवदास पर पार्वती का अगाध प्रेम तथा धनी और निर्धन के कुटिल प्रश्न के कारण पार्वती का देवदास के साथ विवाह न

होने पर भी उसका देवदास पर अपने पति से अधिक दावा देखकर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है ! पार्वती के वियोग के कारण देवदास का विक्षिप्तावस्था में करुणाजनक पतन पढ़कर हृदय व्याकुल हो जाता है। सच्चे प्रेम के अद्भुत प्रभाव के कारण चन्द्रमुखी नाम की एक पतिता वेश्या को, धर्ममय जीवन को अपनाते देख कर चमत्कृत हो जाना पड़ता है। अधिक प्रशंसा कर कागज़ काला करने से कोई लाभ नहीं। पुस्तक पढ़ने ही से सच्चा आनन्द मिलेगा और उसका महत्व मालूम होगा। पुस्तक की भाषा भी सरल, ललित और मुहावरेदार लिखी गई है। पौने दो-सौ पृष्ठ की इस उत्तम पुस्तक का मूल्य केवल १) रु० है; पर ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात् ॥।) में ही दी जाती है। नवीन संस्करण छप रहा है।

*

राष्ट्रीय गान

[चुने हुए वीर रस पूर्ण गानों का अपूर्व संग्रह]

यह पुस्तक चौथी बार छप कर तैयार हुई है। इसी से इसकी लोकप्रियता का अनुमान हो सकता है। इसमें वीर-रस में सने हुए देश-भक्तिपूर्ण सुन्दर गानों का अपूर्व संग्रह है; जिन्हें पढ़ कर आपका दिल फड़क उठेगा। यह गाने हारमोनियम पर भी गाने

शामिल हैं और हर समय भी गुनगुनाए जा सकते हैं। शादी-विवाह के अवसर पर तथा साधारण गाने-बजाने के समय यदि गाए जाँय तो सुनने वाले प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते! यह गाने बालक-बालिकाओं को कण्ठस्थ कराने के योग्य भी हैं। ५६ पृष्ठ की पुस्तक का दाम केवल चार आना!! सौ पुस्तकें एक साथ मँगाने से २०) रु०। एक पुस्तक वी० पी० द्वारा नहीं भेजी जाती। एक पुस्तक मँगाने के लिए।=) का टिकट भेजना चाहिए।

सुखाराम

[ले० श्री० मदारीलाल जी गुप्त]

इस महत्वपूर्ण उपन्यास में वृद्ध-विवाह के दुष्परिणाम बड़ी योग्यता से दिखलाए गए हैं! श्रीराम का माया के फन्दे में फँस कर अपनी कन्या का विवाह दीनानाथ नाम के वृद्ध ज़मींदार से करना, पुरोहित जी की स्वार्थपरायणता, जवानी के चमत्कार में रुक्मा (कन्या का नाम है) का डगमगा जाना। अपने पति के भाई सखाराम पर मुग्ध होना, सखाराम की सच्चरित्रता, दीनानाथ का पश्चात्ताप, तारा नाम की युवती बालिका का स्वदेश-प्रेम, सखाराम की प्रेरणा और समाज-सेवा और अन्त में रुक्मा का अन्त, उसकी देश-भक्ति और सेवा, दीनानाथ, सखाराम, श्रीराम, तारा

और उसके सुयोग्य पिता का वैराग्य लेकर समाज-सेवा करना, सब की आँखें खुलना, तारा का स्त्रियों की उन्नति के लिए उत्साहित करना आदि-आदि अनेक रोचक विषयों का प्रतिपादन बड़ी योग्यता से किया गया है। पुस्तक इतनी रोचक है कि उठा कर छोड़ने को दिल नहीं चाहता।

टाइटिल पेज पर वृद्ध-विवाह का एक तिरङ्गा चित्र भी दिया गया है। पृष्ठ-संख्या २००, काग़ज़ बहुत सुन्दर २८ पाउण्ड का, छपाई-सफ़ाई सब सुन्दर होते हुए भी मूल्य केवल एक रुपया रक्खा गया है; पर स्थायी ग्राहकों को पुस्तक पौने मूल्य अर्थात् केवल बारह आने में ही दी जाती है। पुस्तक दूसरी बार छप रही है।

प्राणनाथ

[ले० श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल-एल० बी०]

श्रीवास्तव महोदय का परिचय हिन्दी-संसार को कराना लेखक का अपमान करना है। पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि हास्य-रस के नामी लेखक होने के अलावा श्रीवास्तव महोदय कट्टर समाज-सुधारक भी हैं। "लम्बी दाढ़ी" आदि अनेक पुस्तकों में भी लेखक ने सामाजिक कुरीतियों का नङ्गा चित्र जनता के सामने रक्खा है।

इस वर्तमान पुस्तक (प्राणनाथ) में भी समाज में होने वाले अनेक अन्याय, अत्याचार लेखक ने बड़ी योग्यता से अङ्कित किए हैं। स्त्री-शिक्षा और सामाजिक सुधारों से परिपूर्ण होने के कारण यह एक अनूठा उपन्यास है। चार भागों के इस सुन्दर रेशमी जिल्द से मण्डित, स्वर्णाक्षरों से अङ्कित उपन्यास का मूल्य केवल २॥।) (दो रुपये बारह आने) कहीं रक्खा गया है। काग़ज़ और छपाई आदि बहुत सुन्दर है। फिर भी स्थायी ग्राहकों को पुस्तक पौने मूल्य अर्थात् २-) में मिलेगी। शीघ्र स्थायी ग्राहकों में नाम लिखा लीजिए !! नवीन संस्करण अभी प्रकाशित हुआ है।

पाक-चन्द्रिका

[सम्पादिका श्रीमती विद्यावती जी सहगल]

यह पुस्तक हमने विशेष कर हिन्दी जानने वाली महिलाओं के लाभार्थ प्रकाशित की है। इस पुस्तक में प्रत्येक अन्न तथा मसालों के गुण और अवगुण वर्णन करने के अतिरिक्त, पाक-सम्बन्धी सभी वस्तुओं का सविस्तार सरल भाषा में वर्णन किया गया है। प्रत्येक चीज़ के बनाने की विधि सविस्तार और सरल भाषा में दी गई है। इस पुस्तक से थोड़ी भी हिन्दी जानने वाली कन्याएँ

भरपूर लाभ उठा सकती हैं। मन चाहा पदार्थ पुस्तक सामने रख कर आसानी से तैयार किया जा सकता है। दाल, चावल, रोटी, पुलाव, मीठे, नमकीन चावल, भाँति-भाँति के शाक, सब तरह की मिठाइयाँ, नमकीन, बङ्गला-मिठाई, पकवान, सैकड़ों तरह की चटनी रायते, अचार-मुरब्बे आदि बनाने की विधि बड़ी उत्तमता से इस पुस्तक में लिखी गई है। प्रत्येक महिला को यह पुस्तक सदैव पास रखनी चाहिए। लगभग ८०० पृष्ठ की सुन्दर सजिल्द पुस्तक की क़ीमत केवल ५) रु० । स्थायी ग्राहकों से ३॥) रु० ।

सती-दाह

[ले० श्री० शिवसहाय जी चतुर्वेदी]

हिन्दी में 'सती' विषय की यह पहली ही पुस्तक है। 'सती-प्रथा' का इतिहास इस पुस्तक में बड़ी उत्तमता से सप्रमाण अङ्कित किया गया है। इसके अतिरिक्त 'सती-प्रथा' द्वारा होने वाले अनर्थ आदि का दिग्दर्शन भी कराया गया है। इस पुस्तक को पढ़ने से हृदय में करुणा का स्रोत उमड़ आता है। पुस्तक-लेखन की प्रणाली और भाषा इतनी उत्तम और प्रभावोत्पादक है कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह पुस्तक प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी को पढ़नी चाहिए। २०० पृष्ठ की सचित्र और उत्तम सजिल्द

पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रु०; पर, स्थायी ग्राहकों से १॥=) ही लिया जायगा !

मनमोदक

[सम्पादक प्रेमचन्द जी]

यह पुस्तक बालक-बालिकाओं के लिए खिलौना है। जैसा पुस्तक का नाम है, वैसा ही इसमें गुण है। इसमें लगभग ४५ मनोरञ्जक कहानियाँ और एक से एक बढ़ कर ४० हास्य-प्रद चुटकुले हैं। एक कहानी बालकों को सुनाइए, वे हँसी के मारे लोट-पोट हो जाँयगे। यही नहीं कि उनसे मनोरञ्जन ही होता हो; वरन् उनसे बालकों के ज्ञान और बुद्धि की वृद्धि के अतिरिक्त, हिन्दी-उर्दू के व्याकरण-सम्बन्धी जरूरी नियम भी याद हो जाते हैं। इस पुस्तक को बालकों को सुनाने से 'आम के आम और गुठलियों के दाम' वाली कहावत चरितार्थ होती है। छपाई-सफ़ाई सुन्दर, १६० पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक की क़ीमत केवल बारह आने, स्थायी-ग्राहकों से ॥-) आने !

विद्याविनोद-ग्रन्थमाला की विख्यात पुस्तकें

गल्प-विनोद

[ले० श्रीमती शारदाकुमारी देवी, भूतपूर्व सम्पादिका 'महिला-दर्पण']

इस सुन्दर पुस्तक में देवी जी की समय-समय पर लिखी हुई कहानियों का अपूर्व संग्रह है। सभी कहानियाँ रोचक और शिक्षा-प्रद हैं। इनमें सामाजिक कुरीतियों का खाका खींचा गया है। छोटी-छोटी कहानियों के प्रेमी पाठकों को अवश्य पढ़ना चाहिए। पृष्ठ-संख्या १८०; मोटे ३५ पाउण्ड के काग़ज़ पर छपी हुई पुस्तक का मूल्य केवल १) रु० । स्थायी ग्राहकों से ॥।) मात्र। दूसरी बार छप रही है।

मेहरुन्निसा

[अनुवादक श्री० मंगलप्रसाद जी विश्वकर्मा विशारद]

भारत-सम्राट् जहाँगीर की असीम क्षमताशालिनी सम्राज्ञी नूरजहाँ का नाम कौन नहीं जानता? भारतवर्ष के इतिहास में उसकी अक्षय कीर्ति-गाथा ज्वलन्त अक्षरों में आज भी देदीप्यमान हो रही है। इसी सम्राज्ञी का पुराना नाम मेहरुन्निसा था जहाँगीर उसके अपूर्व लावण्य पर मुग्ध हो गया और उसने येन-केन-प्रकारेण उसके पति शेरखाँ को मरवा डाला।

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

आत्माभिमानिनी वैधव्य-दुख-कातरा, प्रताड़िता, रूपसी मेहरुन्निसा का यह करुण-रस-पूर्ण चित्र एक बार दिल को दहला देता है। इसके पश्चात् यह उद्भ्रान्त-चित्ता मेहरुन्निसा सम्राट् की प्रेयसी और श्रेयसी बनकर किस प्रकार नूरजहाँ के नाम से भारत की सम्राज्ञी बनी—ये सब घटनाएँ इस उपाख्यान में बड़े ही कवित्वपूर्ण शब्दों में वर्णित हैं। प्रत्येक रमणी को इस रमणी-रत्न का चरित्र पढ़कर अपूर्व लाभ उठाना चाहिए। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

स्मृति-कुञ्ज

[ले० "एक निर्वासित मेजुएट"]

नायक और नायिका के पत्रों के रूप में यह एक दुःखान्त कहानी है। प्रणय-पथ में निराशा के मार्मिक प्रतिघातों से उत्पन्न मानव-हृदय में जो-जो कल्पनाएँ उठती हैं और उठ-उठ कर चिन्ता-लोक के अस्फुट साम्राज्य में विलीन हो जाती हैं—वे इस पुस्तक में भली-भाँति व्यक्त की गई हैं। हृदय के अन्तःप्रदेश में प्रणय का उद्भव, उसका विकास और उसकी अविरत आराधना की अनन्त तथा अविच्छिन्न साधना में मनुष्य कहाँ तक अपने

जीवन के सारे सुखों की आहुति कर सकता है, ये बातें इस पुस्तक में एक अत्यन्त रोचक और चित्ताकर्षक रूप से वर्णन की गई हैं। जीवन-संग्राम की जटिल समस्याओं में मानवी उत्कण्ठाएँ किस प्रकार विधि के कठोर विधान से एक अनन्त अन्धकार में अन्तर्हित हो जाती हैं एवं चित्त की सारी सञ्चित आशाएँ किस प्रकार निराशा के भयानक गह्वर में पतित हो जाती हैं—इनका जो हृदय-विदारक वर्णन इस पुस्तक में किया गया है, वह सर्वथा मौलिक एवं नवीन है। आशा, निराशा, सुख-दुख, साधन, उत्सर्ग एवं उच्चतम आराधना का सात्विक चित्र पुस्तक पढ़ते ही कल्पना की सजीव प्रतिमा में चारों ओर दीख पड़ने लगता है। फिर भी यह पुस्तक मौलिक और हिन्दी-संसार के लिए नवीन उपहार है। वह एक अनन्त रोदन का अनन्त सङ्गीत है, जो प्रायः प्रत्येक भावुक हृदय में व्यक्त अथवा अव्यक्त रूप से एक बार उत्थित होकर या तो आजीवन बजता रहता है अथवा कुछ काल पर्यन्त बजकर पुनः विस्मृति के विशाल साम्राज्य में अन्तरिक्ष हो जाता है। इस पुस्तक में व्यक्त वाणी की अनुपम विलीनता एवं अव्यक्त स्वरों के उच्चतम सङ्गीत का एक हृदयग्राही मिश्रण है। पुस्तक हाथ में लेते ही आप इसे बिना पढ़े नहीं छोड़ सकते। हिन्दी-संसार में यह पुस्तक एक क्रान्ति उपस्थित कर देगी। पुस्तक छप रही है। मूल्य लगभग ३) होगा।

हो गया। उसके अन्तिम पत्र प्रणय की स्मृति और उन्माद की विस्मृति की सम्मिलित अवस्थाओं में लिखे गए हैं। जो हो, उन पत्रों में जिन भावों की प्रतिमूर्ति की गई है, वे विशाल और महान् हैं। उन पत्रों के प्रत्येक शब्द से एक वेदना उठती है, उस वेदना में मानव-जीवन का नीरव रोदन प्रतिध्वनित होता है; और उस प्रतिध्वनि में अनन्त का अव्यक्त सङ्गीत प्रतिपादित होने लगता है। यह एक अनुपम पुस्तक है। मूल्य लगभग ३) रु० !

निर्मला

[ले० सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्रीयुत प्रेमचन्द जी]

इस मौलिक उपन्यास में लब्धप्रतिष्ठ लेखक ने समाज में बहुलता से होने वाले वृद्ध-विवाहों के भयङ्कर परिणामों का एक वीभत्स एवं रोमाञ्चकारी दृश्य समुपस्थित किया है। जीर्ण-कार्य वृद्ध अपनी उन्मत्त काम-पिपासा के वशीभूत होकर किस प्रकार प्रचुर धन-व्यय करते हैं, किस प्रकार वे अपनी वामाङ्गना षोड़शी नवयुवती नवल लावण्य सम्पन्ना के कोमल अरुण वर्ण अधरों का सुधारस शोषण करने की उद्भ्रान्त चेष्टा में अपना विष उसमें प्रविष्ट करके, उस युवती का नाश करते हैं, किस प्रकार गृहस्थी के परम पुनीत प्राङ्गण में कौरव-काण्ड प्रारम्भ हो जाता है, और किस प्रकार ये वृद्ध अपने साथ ही साथ दूसरों को लेकर

डूब मरते हैं, किस प्रकार उद्भ्रान्ति की प्रमत्त सुखद कल्पना में उनका अवशेष ध्वंस हो जाता है—यह सब इस उपन्यास में बड़े मार्मिक ढंग से अङ्कित किया गया है। 'चाँद' के अनेक मर्मज्ञ पाठकों के निरन्तर अनुरोध से यह पुस्तकाकार में प्रकाशित किया गया है। प्रचार की दृष्टि से इसका मूल्य लगभग २॥) रु० रक्खा जायगा। शीघ्रता कीजिए। विलम्ब करने से पछताना पड़ेगा।

गुदगुदी

[ले० श्री० जी० पी० श्रीवास्तव बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

पुस्तक का विषय नाम ही से प्रगट है। इसमें श्रीवास्तव जी के विनोदपूर्ण चुटकुलों का सुन्दर संग्रह है। एक चुटकुला पढ़िए—हँसते-हँसते पेट में बल पड़ जायँगे, यही इस पुस्तक का संक्षिप्त परिचय है। मूल्य केवल ॥) स्थायी-ग्राहकों से ।=)

घरेलू चिकित्सा

[ले० अनेक सुविख्यात डॉक्टर, वैद्य और हकीम.]

इस पुस्तक में 'चाँद' में प्रकाशित घरेलू दवाइयों का अपूर्व संग्रह है। धेले-पैसे की दवाइयों से ही कठिन से कठिन रोगों का इलाज किया जा सकता है। स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े सभी के लिए पुस्तक समान-रूप से उपयोगी है। मूल्य केवल ॥) स्थायी-ग्राहकों से ।=)